

बुन्देली बसन
२००५

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली बसन्त

अंक 6 वर्ष 6 17 फरवरी 2005

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१२९०, २४१४२९

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

४/२, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : (०७६८२) २४४१३३

सह संपादक :

डॉ. के. एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २०३६२८

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४३०६६

(घनश्याम सिंह) 23/2/2005

23-2-05

23.2.05

R.C, Gwalior

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२२२

♦ संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

♦ **आवरण चित्र आकल्पन :**

राजेन्द्र अग्रवाल, छतरपुर (म.प्र.)

♦ **छाया चित्र :**

आर.के. स्टूडियो, छतरपुर

♦ सहयोग राशि :

१००/– (एक सौ रुपये)

♦ **संगणकीय अक्षर संयोजन :**

जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर

♦ **मुद्रक :**

जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,

छतरपुर (म.प्र.) ☎: (०७६८२) २४८६८६

♦ बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

♦ विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रम

भाषा साहित्य एवं आलोचना –

संस्कृति –

इतिहास एवं पुरातत्व –

बुन्देली काव्य –

बुन्देली गद्य –

अन्य –

संपादकीय -

लोक में जीवन से भागने की नहीं बल्कि उससे संघर्ष करने की प्रवृत्ति होती है। लोक जीवन में अनेक बाधाएँ आती है किन्तु लोक उससे हँसते-हँसते मुठभेड़ करता आगे बढ़ता है। इसके पीछे हजारों बरसों की लोक जीवन की वह तपस्या होती है जो अनुभव आधारित उदात्त मूल्यों से परिपूरित होती है। लोक जीवन में आस्था रखकर उसमें प्रेम, करुणा, त्याग, ईमानदारी तथा कर्मशीलता जैसे भावों को पुष्पित व पल्लवित करता है। इनसे लोकमूल्य स्थापित होता है। लोकमूल्यों की शिक्षा हमें लोक प्रचलित गीतों, कथाओं तथा गाथाओं में दृष्टव्य होती है। बुन्देलखण्ड अँचल को ही देखें तो यहाँ इन्हीं लोकमूल्यों की बदौलत हरदौल व्यक्ति से देवता बन जाते हैं। उनका त्याग, जीवन के प्रति ईमानदारी तथा उत्कृष्ट प्रेम अनुकरणीय बन गया। इसके बाद के कालखण्ड में झाँसी की रानी, बखतबली शाह तथा जैतपुर की रानी जैसे चरितों ने लोक को प्रभावित किया। लोक-मानस लोकमूल्यों के आधार पर आचरण को अंगीकार करता है। लोक आचरण में लोक उपयोगितावाद की अपनी अलग भूमिका होती है। लोक उस मूल्य, जीवन पद्धति तथा आचरण को तत्काल आत्मसात कर लेता है जो उसके जीवन में उपयोगी व लाभदायक होता है। उदाहरण के लिए बुन्देलखण्ड जनजीवन में परिवर्तित वेशभूषा को ही ले लें। यहाँ अब पुरुष परदनिया-पंचा के स्थान पर पजामा-पेंट व लड़कियाँ अंगोछा के स्थान पर सलवार-कुर्ता या फिराक पहने दिखाई दे रही है। इसके पीछे कपड़े का कम लगना तथा पहनने-उतारने की सुगमता ने इसे लोक में स्वीकृत करा दिया जबकि अनेक कवियों ने इस पहनावे पर व्यंग्य किये। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आज जो लोकाचरण परिवर्तित हो रहा है, वह उपयोगिता के आधार पर बदल रहा है। इसे हम पूँजीवाद का प्रभाव मान सकते हैं। लोक में पूंजीवादी प्रवृत्तियों ने मीडिया के माध्यम से मायावी दुनिया रच दी है, जिसके जाल में फैसकर जन छटपटा भी रहा है। बढ़ती भौतिकता-घटती मूल्य धार्मिता लोक को परिवर्तित करने महत्वपूर्ण भूमिका में है। आज बुन्देलखण्ड में भी भौतिक संसाधनों के बढ़ने से भौतिक जीवन स्तर में सुधार हुआ है किन्तु मानवीय मूल्यों में गिरावट भी तेजी से दिखाई दी है। इससे चिन्तित होकर आज का बुन्देली कवि इसीलिए इस पर लेखनी चला रहा है। इस अंक में ऐसी अनेक रचनाएं हैं। आज लड़कियों की भ्रूण हत्या का चलन तेजी से बढ़ा है इस पर 'बाबुल बिन अपराध न मार' मार्मिक कविता है। राजनीति की विष बेल से अन्याय-अनाचार बढ़ रहा है इस पर 'काय कका जू कैंसी कई' तथा 'बड़ी पोल है' कविताएँ प्रकाश डालती है। समाज में पनप रही दोहरी मानसिकता पर साकेत सुमन चतुर्वेदी के दोहे प्रहार करते हैं। आम आदमी के कष्टों को 'कैसें काटों जौ जड़कारौ' तथा 'अब तो ईखों छोड़ौं सैया' व्यक्त करती हैं। इस प्रकार की रचनायें लोक में जीवन के प्रति गहरी आस्थाओं तथा प्रतिगामी ताकतों के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा देती है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से लोक अँचलों की परम्पराओं, ऐतिहासिक घटनाओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर सीधा प्रभाव पड़ रहा है। नई पीढ़ी को इससे परिचित कराने के मकसद से इस अंक में छत्रसाल, हरदौल, रायप्रवीन, हरीराम व्यास, ओरछा की कवियत्रियों पर केन्द्रित आलेख हैं। ऐतिहासिकता से परिचित कराने हेतु नरवर गढ़ तथा दतिया का सिलहखाना आदि लेखक है। स्वास्थ्य परम्पराओं तथा विलुप्त परम्पराओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। इसके साथ में बुन्देली साहित्य में विधागत समृद्धता लाने की दृष्टि से गद्य, गज़ल, दोहो, कहानियाँ तथा लघुकथाओं को समाहित किया गया है। आज मेरी समझ में सबसे जरूरी कार्य लोकमुख में व्याप्त साहित्य व भाषा के संरक्षण का है क्योंकि पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी उम्र पूरी कर संसार से विदा ले रहे हैं और उनके साथ ढेर सारा साहित्य भी जा रहा है। कारण स्पष्ट है कि नई पीढ़ी इस वाचिक परम्परा में आगे वाहक नहीं बन रही है। इसलिए लोकमुख में सुरक्षित लोकगीतों, गाथाओं, कहावतों–मुहावरों, कथाओं, नाट्यों तथा शब्दावली को संरक्षित करने की महती आवश्यकता है आज जीवन शैली बदलने के साथ पुरानी जीवन पद्धति की पूरी शब्दावली विलुप्त हो रही है उदाहरण के लिए खेती–किसानी को ही ले लें। खेती के पारम्परिक तरीके बदल रहे हैं उसके स्थान पर नए तरीके व नए शब्द आ रहे हैं। अब हल–बखर, बैलगाड़ी आदि के स्थान पर मात्र ट्रैक्टर आ गया है। जिससे मुठिया, अकुरिया, परेथा, जुआँरीं, भौंरा, पाँस तथा धुरा आदि शब्द विलुप्तता की कगार पर आकर कल्टीवेटर, ट्राली, टायर, हेंडिल तथा थ्रेसर जैसे अंग्रेजी के शब्दों ने पैठ बनाई है।

बुन्देलखण्ड के सभी विद्वजनों, रचनाकारों तथा युवाओं से मेरा विनम्र अनुरोध है कि वे इस विलुप्त हो रही शब्दावली तथा लोक साहित्य की विधाओं को यथाशक्ति–यथा संभव संकलित करने का महती काम करें, तो बहुत बड़ा कार्य इस अंचल की परम्पराओं को बचाने का होगा। इस संरक्षण–संकलन के साथ लोक में व्याप्त अन्याय, गरीबी, विषमता, तथा अशिक्षा के खात्मे हेतु प्राणपण से जुटना होगा तो हम सही मायने में इस माटी की सेवा करते हुए साहित्य को जनोपयोगी बना सकेंगे।

विगत एक वर्ष में हमारे चार रचनाकार साथियों का आकस्मिक निधन हुआ जिससे 'बुन्देली बसन्त' परिवार को तो अपूरणीय क्षति हुई ही है साथ में बुन्देली का भी नुकसान हुआ है। डॉ. घनश्याम कश्यप, ग्वालियर ने 'ईसुरी की फागों' का संकलन कर उनका अर्थ लिखकर प्रकाशित कराया जो सदैव शोधार्थियों को प्रकाश देता रहेगा। श्री कृष्णानंद हुण्डैत, ललितपुर की अंतिम 'बुन्देली कथा' बुन्देली–बसन्त में छपी, उन्होंने बुन्देली गद्य को समृद्ध किया। श्री रमेश शंकर सक्सेना, बल्देवगढ़ उन अध्येताओं में से थे जो सीधे ग्राम स्तर से सामग्री उठकर एक नए ढंग से उसे प्रस्तुत करते थे। उनके लेख हम प्रतिवर्ष प्रकाशित करते रहे हैं। इस वर्ष उनका अभाव पीड़ादायक है। श्री महेन्द्र कुमार 'मानव' ने बुन्देलखण्ड में पत्रकारिता का सूत्रपात किया तथा इसकी भलाई हेतु सदैव चिन्तित रहे। इन सबके निधन पर हम गहन शोक व्यक्त करते हैं।

बहादुर सिंह परमार

आचार्य केशवदास के समकालीन ओरछा राज्य के कवि

- हरिविष्णु अवस्थी

देश के मध्य में स्थित बुन्देलखण्ड नामक भू–भाग में चंदेल शासन के पराभव के साथ बुन्देला नामक एक नई राजसत्ता का उदय हुआ। बुन्देलों के पूर्वजों ने महोनी में अपना पहला ठिकाना बनाया। धीरे–धीरे राज्य विस्तार के क्रम में उनकी राजधानी गढ़–कुंडार हुई। इसी वंश के प्रतापी नरेश महाराजा रुद्रप्रताप (१५०१–३१ ई.) ने कुंडार के स्थान पर ओरछा को अपनी राजधानी बनाया। तभी से बुन्देलों के इस सर्व प्राचीन राज्य को ओरछा राज्य के रूप में ख्याति प्राप्त हुई।

आचार्य केशवदास के पितामह कृष्णदत्त राणा संग्राम सिंह मेवाड़ के यहाँ से निराश्रित होने पर मेवाड़ से ओरछा आ गये।

पुत्र भए हरिनाथ के कृस्नदत्त शुभ वेष।
सभा सहिसंग्राम की जीती गढ़ा अशेष।।१३।।
तिनकौ वृति पुरान की दीन्ही राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र।।१४।।
तिनको मधुकरशाहनृप बहुत करयो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र सुभ प्रगटे बुद्धि निधान।।१५।।
बालकते मधुशाह नृप जिन पै सुन्यो पुरान।
तिनके सोदर द्वय भए केसवदास कल्यान।।१६।।[१]

तत्कालीन ओरछाधीश रुद्रप्रताप ने कृस्नदत्त को, पुरान बाचक के सम्माननीय पद पर नियुक्त कर राज्याश्रय प्रदान किया। कृस्नदत्त के पुत्र काशीनाथ को भी अपने पिता के पश्चात् मधुकरशाह महाराज ने वही सम्मान पूर्ण पद प्रदान किया। काशीनाथ के ज्येष्ठ पुत्र बलभद्र मझले केसवदास एवं छोटे पुत्र कल्यान हुए।

कृस्नदत्त के पौत्र एवं काशीनाथ के पुत्रों का जन्म संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों की कुल परम्परा में हुआ था। अतः उनकी शिक्षा–दीक्षा भी संस्कृत में ही हुई। वे संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ अध्येता सिद्ध हुए। संस्कृत साहित्य के प्रकांड पण्डित होने के नाते इन भाइयों की शास्त्रीय पद्धति से साहित्य का प्रचार–प्रसार जन सामान्य की भाषा में करने की इच्छा बलवती हो उठी। अपने संस्कृत भाषा–साहित्य के अपरमित संचित परिज्ञान को हिन्दी भाषा के सांचे में ढालकर तत्कालीन जनता की अभिरुचि के अनुकूल बना दिया।[२]

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तिहि कुल केसवदास।।१७।।[३]

केसवदास जी के ज्येष्ठ भ्राता जिनका जन्म संवत् १६०० वि. (१५४३ ई.) माना जाता है, ने सर्व प्रथम हिन्दी भाषा में साहित्य सृजन का जोखिम उठाया। उन्होंने १. गोवर्द्धन सतसई की टीका २. हनुमन्नाटक का अनुवाद ३. बलभद्री व्याकरण ४. दूषण विचार ५. भागवत भाष्य ६. सिखनख या सिखनख श्रृंगार और ७. रस विलास ग्रंथों की रचना की।

बलभद्र कृत 'सिखनख' का प्रकाशन सन् १८८४ ई. में काशी के भारत जीवन प्रेस से प्रथमबार हुआ था, किन्तु इस संस्करण की प्रतियाँ अब उपलब्ध नहीं है। अहिन्दी भाषी हिन्दी के विज्ञान डॉ. सज्जनराम कैणी ने उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर सिखनख का सम्पादन कर उसे सन् १९८० ई. में हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद से प्रकाशित कराया। शिखनख का कचवर्णन दृष्टव्य है –

मरकत सूत किधौ पन्नग के पूत किधौ
राजत अद्भूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल गुनग्राम सोभित सरस श्याम,
काम मृग कानन कि कुइ के कुमार हैं।
कोप की किरन जलनील की जरी के तंतु,
उपमा अनंत चारु चँवर सिंगार हैं।
कारे सटकारे भीजे सौ धा सो सुगंधवास
'बलभद्र' ऐसे नव नबला के वार हैं।।१।।

मोहणोत चन्द्रसेनकृत टीका –

मरकत सोनील मनि ताको सूत सो तार है, कै पनग जे सर्प ताके पूत जे लरके है, कै तमराज जे अंधकार ताके तार से अद्भूत राजत जे सोभत है। मखतूल जे श्याम रेशम ताकी गुन जे डोरी तिनको ग्राम के समूह हैं, कै मदन के कामदेव रूप म्रिग जे हरन ताकौ कानन जे बन सोई स्याम जे कारो सरस जे अधिक शोभित हैं, कैं कुहू जे अमावस ताके पुत्र हैं कोप जे सूर्य ताकी किरन जे मोघ हैं, कै जल की नील है, देहरी दीपति अर्थ ते नीली जरी कै तांते हैं उपमा अनंत है ए सिंगार रस को चँवर चारु जै सुन्दर है कारे सटकारे जे लांबे सौधा सौं भीजे सुगंध वासै है हे कवि ऐसे नव नबला जे नई नायका वाके बार जे केस ऐसे शोभायमान हैं।[४]

बलभद्र के आश्रयदाता महाराजा मधुकर शाह भी कवि थे। उनकी एक रचना प्रस्तुत है –

भक्त बिन किन अपमान सहौ।
कहा–कहा न असधान कीन्हौं हर खल धर्म रहौ।।
अधमराज मधुमाथे लै रथ सो जड़ भरथ न हौ।
मत्त सभा कौरवन बिदुर सों कहा कहा न कहौ।।
पट झटकत द्रोपदी न मटकी हरि कौ सरण चहौ।।
सरणागत आरत गजपति कौ आपुन चक्र गहौ।।

हा हरनाथ पुकारत आरत कौन ओर निबहौ।
व्यास वचन सुन मधुकरशाहे भकतन शरण लहौ।। [५]

''ओड़छो वृन्दावन सौ गाँव'' तो उनकी बहुप्रसिद्ध रचना है।

हिन्दी काव्य के नक्षत्र आचार्य केशवदास को जन्म देकर न केवल बुन्देलखण्ड की धरती गौरवान्वित हुई है अपितु उनकी कालजयी कृतियों के कारण समग्र राष्ट्र गौरव का अनुभव कर रहा है। वस्तुत: केशवदास भक्ति और रीति परम्परा के संधिकाल के महान कवियों में परिगणित होते हैं और अपनी शास्त्र निष्ठा प्रतिभा और कविता के प्रति कलात्मक दृष्टि को महत्वपूर्ण स्थान देने वाले कवियों में वे निश्चय ही अप्रतिम और बेजोड़ हैं। [६]

केशव की कृतियों से तो हिन्दी संसार भली–भांति परिचित है। किसी ने उन्हें कठिन काव्य का प्रेत कहा तो किसी ने कहा ''देवो न चाहै विदाई नरेश! तो पूंछत केशव की कविताई।' यह बात ता निर्विवाद है कि केशव की कविता को समझ पाना हर पढ़े–लिखे व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। इसका मुख्य कारण उनके काव्य में प्रयुक्त विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया जाना है। केशव के काव्य पर कुछ कहना मुझ अकिंचन का प्रयास मात्र घृष्टता ही होगी।

मधुकर शाह महाराज के पुत्र रामशाह भी कवि थे। बानगी देखें –

प्रभू जू मोहि अपनो कर जानो।
रामशाह मधुकर को बेटा ता नाते मोहि मानो।
जयपुर नृपति परीक्षा कारण रूप कपट को ठानो।।
जो प्रण पूरों होय न मेरौ तुरतहि दै हैं तानो।
देव दरश मोहि बाँके बिहारी लखै जो सकल जहानो।। [७]

ओरछेश रामशाह के भाई एवं ओरछा राज्य के कार्यवाहक नरेश इन्द्रजीत 'धीरज नरिन्द' उपमान से रचना करते थे। आपने भर्तहरिकृत वैराग्य शतक का पद्यानुवाद किया। एक स्फुट रचना अवलोकनीय है –

चहचही चटकीली चुनि–चुनि चातुरी सों
चौखी चारु चाँदनी की रंगी रंग गहरे।
कंचन किनारी तापै लागी छोर लौ है खुली
दामिनी सी गोरे गात प्यारी सारी फहरे।।
इन्द्रजीत धनुप सौ कही न परत छवि,
आनन झलक चहु ओर ऐसी छहरे।
गहगही पंचरंग महमही सोंधे सनी।
लहलही लसैं ये लहरिया कीं लहरे।। [८]

ओरछेश रामसाह के एक और भाई होरल देव भी कवि थे, जिन्होंने 'प्रीति जग्य' ग्रंथ की रचना की। [९]

कार्यवाहक ओरछेश इन्द्रजीत की प्रेयसी प्रवीणराय की काव्य प्रतिभा का वर्णन केसवदास के शब्दों में –

नाचति गावति पढ़ति सब सबै बजावतिबीन।
तिनमें करत कवित्त इक राय प्रवीण प्रवीन।। [१०]

यथा नाम तथा गुण: की युक्ति को चरितार्थ करने वाली बहुमुखी प्रतिभा की धनी राय प्रवीण की कीर्ति जब सम्राट अकबर के पास पहुँची तो उसने राय प्रवीण को अपने दरबार में उपस्थित कराने का आदेश ओरछेश को दे डाला। यह कार्यवाहक ओरछेश इन्द्रजीत की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। ओरछेश की न नुकुर के कारण राज्य पर भारी जुर्माना किया गया। परिस्थिति की गंभीरता पर विचार कर राय प्रवीण ने ही इस दिशा में पहल की। उसने इन्द्रजीत से निवेदन किया–

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज सांसन मैं सिगरी मति खोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि, हिये न लजौं लजिहै सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ को पथ, चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामैं रहे प्रभु की प्रभुता, अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।। [११]

पातुर, गणिका या वेश्या के रूप में इतिहासकारों एवं साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत राय प्रवीण अपने हृदय सम्राट इन्द्रजीत के प्रति उतनी ही समर्पित थी, जितनी कोई परिणीता पत्नी होती है। गहन विचार–विमर्श पश्चात् राय प्रवीण को आचार्य केशवदास के साथ अकबर के शाही दरबार में भेजने का निर्णय ले लिया गया।

दरबार में उपस्थित राय प्रवीण एवं अकबर के मध्य जो प्रश्नोत्तर हुए दृष्टव्य हैं –

अकबर –जुबन चलत तिय–देह ते, चटकि चलत केहि हेत?
राय प्रवीण – मनमथ वारि मराल को सैंति सिहारो लेत।
अकबर –ऊँचे हवै सुरवस किये सम हवै नर बस कीन।
प्रवीण –अब पताल बस करन को ढरकि पयानो लीन।। [१२]

सम्राट अकबर राय प्रवीण की कवित्त शक्ति के समक्ष हतप्रभ हो गया। अवसर प्राप्त होते ही राय प्रवीण ने मर्मभेदी बात भी कह डाली –

विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भरवत हैं, बारी बायस स्वान।।

अकबर को मन मारकर राय प्रवीण को ओरछा लौटाने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रवीण राय का कोई काव्य संग्रह उपलब्ध नहीं है। उसके कुछ स्फुट छंद ही यत्र–तत्र पढ़ने को मिलते हैं। यथा –

छूटी लटैं अलबेली सी चाल, भरे मुख पान खरी कटि छीनी।
चोरि नगारा उधारे उरोजन, मो तन हेरि रही जो प्रवीनी।।
बात निसंक कहै अति मोहिसों, मोहिं सों प्रीति निरंतर कीनी।
छाड़ि महानिधि लोगन की, हित मेरे सों क्यों बिसरै रसभीनी।।

तथा –

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार,
अमल अंगोछे आछेमन से सुधारिहौं
देहौं न पलक एक, लागन पलकपर,
मिलि अभिराम अछीतपनि उतारिहौं।

कहत 'प्रवीन राय' अपनी न ठौर पाय,
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारि हौं।
जबही मिलेंगे मोहि इन्द्रजीत प्रान प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोहीसौं निहारिहौं।[१३]

केसवदास जी के अनुज कल्याण मिश्र भी कवि थे। एक छंद प्रस्तुत है –

नैन जग राते माते प्रेममय देखियत,
आनन जम्हात ठौर ठौरन खगात है,
कजरा कुटिल लागे अधरनि ओर–कोर,
सकुच सरम नही सोहैं सोहैं खात हैं।
केशव 'कल्यान' प्रानपति जनि पाए जाहु,
नेक पहिचानी सब हो तिहारी बात है
छील–छील बतियाँ न छैलवर बोलो कहूँ,
करके छिपाए ते छिपाकर छिपात है।[१४]

बलभद्र के पुत्र बालकृष्ण मिश्र ने रस चंद्रिका नामक ग्रंथ की रचना की। एक।

छंद – मूढ़ बुद्धि परिहरिय होय पर दुःख दयामय,
रमित जोग रस माहि दमित मनवचक्रम निरभय।
भक्ति हेतु निज राम रचेउ जे परम सुखद नर
रिसि न होय जनु कबहि तिहूंपुर ऊपर सुन्दर।
सुभ ज्ञान ध्यान बैरागरत तोष जोर तृष्णाहि सिखित,
तिन तीन पांच पटवस करिये सुभ मूरति नरमय लिखित।
पंडित चित लाखि दौर करत उर भरम सफर भर,
जगत बसीकर अजि दमित रति–पति कर गत सर।
ललित खंजगति सुढ़र सहिर अंजन पिय मनहर,
मरम भेद कहं सदर नहिन त्रिभुवन समता कर।
अति रूप रासि गुन सफल धर नर मोहनमय मंत्र पर,
बदत 'बाल कवि' रसिक वर पंकज दल सम नयन वर॥[१५]

कवि अमरेश मूलतः मोठ (झाँसी) के निवासी थे। वे ओरछा के राज्याश्रित कवि थे। यथा –

मानुस कहाय हिय हिम्मत विहाय नित,
करै हाय हाय न सुहाय पन ताका है;
ऐसे बन्दे बद सों सलाह न अछात मन,
प्रेम के नसे का कीना कब हीं न साका।
कहैं 'अमरेश' जे है साहब सहूर नर,
पूरन प्रताप मता जिनकी सभा का है;
एक दिन फाँका एक होत है न फाका एक,
दिन है जफा का एक सफमसाका है।[१६]

परमेश बंदीजन मूलतः ओरछा के ही एंव केसवदास के समकालीन थे। नेत्रों में नबाब का रूपक दृष्टव्य है –

सोजनी चिकन की बिछाये डोरैं लाल–लाल
तकिया महातम के शोभा दरबार हैं;
चंचल चितौन अर्ज बेगि–बेगि आवै जाय
बरुनी दुआर आगे टाढ़ै चौबदार हैं।
बकसी दिवान दोऊ कोयें कान लागत हैं;
अंजन के दसखत सों सिद्ध कारबार है।
लाज औ सकुच ये हजूर में खबास खासे,
प्यारी तेरे नैन री नबाब नामदार हैं।।१।।
कोयन की कुरसी पर करके कुमाच बैठी,
बरुनी बरीक बीर विलसि निवेरे हैं;
पूतरी प्रवीन तेई पातुरैं बिलोकियत,
पलकन प्यादन के पेखियत फेरे हैं।
चारु अंचलाई चोबदार हैं हमेस बेस,
कहै 'परमेश' दीठ भौंहन के डेरे हैं;
आब महताब भरें किस्मत किताब भरे,
मानत न दाब ये नवाब नैन तेरे हैं।।२।।
कैसे रूप सागर में पूरयो है कमल कहो,
जैसे अरविन्द मृग मीन भये चेरे हैं;
कैसे अरविन्द मृग मीन भये चेरे कहो,
जैसे सुआनन पै दृगन किये डेरे हैं।
कैसे सुआनन पै दृगन किये डेरे कहो,
जैसे नदनन्दन निहरि आय नेरे हैं;
कैसे नदनन्दन निहारे 'परमेस' यह,
जैसे आबदार यह नवाब नैन तेरे हैं।।३।।
कारे अनियारे आछे जलज प्रभा से तारे,
सुन्दर सँवारे छवि कमल घनेरे हैं;
खंजन सुबेस मनरंजन दिगंजन ये,
मीन गति छीनत मृगा हू भये चेरे हैं।
कहै 'परमेस' चपलाई चंचलाई भरे,
सान धरे तीक्ष्ण विराजैं सु तरेरे हैं;
लाज भरे सैन सुख दैन अनुराग भरे,
मुख महताब से नवाब नैन तेरे हैं।।४।।
लाल–लाल डोरैं राजै तीक्षन कटाक्षवान
भृकुटी कमान सी हरित मन मेरे हैं;
कैधौं अनियारे चटकारे सुखकारे भरि,
अति हितकारे नन्दलाल मन चेरे हैं।
मन 'परमेश' कजरारे अति सान धारे
अंजन बिराजै ऐन मैन छवि घेरे हैं;
लाज भरे सैन सुख दैन अनुराग भरे,
मुख महताब से नबाब नैन तेरे हैं।।५।।[१७]

खेमदास या खेम भी ओरछा के ही केसव के समकालीन थे –

विलुलित कर पल्लव मृदु बेनु,
हर्षित हुँकृत आवत धेनु।
कोटि मदन द्युति श्याम शरीर,
विपति कल्पतरु जमुना तीर।

दच्छिन चरन चरन पर धरें,
वाम अंस भ्रू कुण्डल करे।
बरुह चंद वन धातु प्रवाल,
मनि मुक्ता गुंजाफल माल।
देखन चलहु 'खेम' नंदलाल,
ललित त्रिभंजी मदन गुपाल।[१८]

पखते सुनार तो केसवदास जी के मित्र भी थे। उन्होंनें दशावतार कथा और रामरहस्य कलेवा की रचना की। वानगीं प्रस्तुत है –

फैलि रहो विरहा चहु ओर ते,
भाजिबे को कोउ पार न पावै।
जानत हौ परवन्त सबै तुम,
जाल को मीन कहाँ लगि धावै।
चाहैं कछूक सँदेसो कह्यो,
सु तो जी मह आवत जीभ न आवै।
ऊधौ जू वा मधुसूदन सों,
कहियो जो कछू तुम्हें राम कहावै।[१९]

पतिराम सुनार ओरछा निवासी एवं केशवदास के अति निकट थे।

एक समै सब गोपिकुमार पै, खेलत अधिक राति बिहानी;
हौं हूँ गई दुरिबे को जहाँ सु दुरयो तहाँ मोहन हो अभिमानी।
ये पतिराम लखे जब ते, तब ते पल एक नही हहरानी;
भागि अटाते गईं सिगरी यों घटा से मनो विजुरी विझुकानी।[२०]

गुलाब कवि ओरछा केशव के समकालीन थे। एक वानगी –

नेत्रवर्णन – वानी भवानी के न रानी के सुरेसहु के,
आसुरी सुरी के है न फनी भामिनी के हैं,
रंभा के सुकेसी के न किन्नरी नरी नहु के,
मैनका तिलोत्तमा व बृह्म रमनी के है।
सुकवि गुलाब मंजु धोखा के घृताची के न
और उरबसी के न ससि भगिनी के हैं;
मैनधरनी के है न ऐसे हरनी के हैं
जैसे नैन नीके वृषभान नंदिनी के हैं।[२१]

गदाधर भट्ट ओरछा के राज्याश्रित कवि थे। रचना की वानगी प्रस्तुत है –

रक्त पीत सित असित लसत अम्बुज वन शोभा।
टोल–टोल मद लोल भ्रमत मधुरकर मधु लोभा।।
सारस अरुकलहंस कोक कोलाहल कारी।
पुलिन पवित्र विचित्र रचित सुन्दर मनहारी।।[२२]

केसवकाल में साहित्य सृजन अपने चरम पर था। केसवकालीन कुछ इने–गिने कवियों की यह तो मात्र वानगी है। केसव एक व्यक्ति नहीं अपितु संस्था थे। उनके आभा मण्डल से ओरछा राज्य दरबार सदैव ही आलोकित रहता था। केशव जयंती के अवसर पर नमन करते हुए यह पत्र पुष्प उन्हें समर्पित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

१. केशव ग्रंथावली खण्ड १ कवि प्रिया कवि वंश वर्णन पृ. १००
२. पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड ३ पृष्ठ ४१९
३. मध्यकालीन साहित्य संदर्भ डॉ. किशोरी लाल अभि० ग्रंथ पृ. ५२८
४. हिन्दी की नखशिख परम्परा एवं बलभद्रकृत 'सिखनख' पृ० ४५–४६
५. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, गौरी शंकर द्विवेदी पृ. १५७
६. राष्ट्र गौरव (स्मारिका) बुन्देली वाँकुरे साहित्य अंक पृ. ११४
७. भैया कपूर चंद पोतदार अभिनंदन ग्रंथ, सप्तम खण्ड, डॉ. बहादुर सिंह परमार पृ. ६८
८. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, स० गौरी शंकर द्विवेदी पृ. २०४
९. भैया कपूर चन्द्र पोतदार, अभि० ग्रंथ, सप्तम खण्ड डॉ० बहादुर सिंह परमार पृ. ६८
१०. केशव ग्रंथावली खण्ड–१ कवि प्रिया नृपवंश वर्णन छंद ५६ पृ. ९८
११. मध्यकालीन साहित्य संदर्भ, डॉ. किशोरी लाल अभि० ग्रंथ पृ. २१९
१२. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, सम्पादक गौरीशंकर द्विवेदी पृ. २४८–४९
१३. मध्यकालीन साहित्य संदर्भ, डॉ. किशोरी लाल अभिनंदनग्रंथ पृ. २२०
१४. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, सम्पादक – गौरीशंकर द्विवेदी पृ. २०६
१५. मध्यकालीन साहित्य संदर्भ – डॉ. किशोरी लाल अभिनदनग्रंथ पृ. ४९६
१६. बुन्देल वैभव प्रथम भाग स० गौरी शंकर द्विवेदी पृ. २१२–१३
१७. वही द्वितीय भाग सम्पादक – गौरीशंकर द्विवेदी पृ. २८६–८७
१८. वही भाग प्रथम सम्पादक – गौरीशंकर द्विवेदी पृ. २३४
१९. मध्यकालीन साहित्य संदर्भ डॉ. किशोरी लाल अभिनदनग्रंथ पृ. ४९६
२०. वही पृ. ४९४
२१. वही पृ. ४९३
२२. बुन्देल वैभव प्रथम भाग सम्पादक – गौरीशंकर द्विवेदी पृ. २११

– अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली दोहे

– साकेत सुमन चतुर्वेदी

कपटी कौआ कर रओ, बेमतलब की काँव।
पाछें गारीं देत है, सामूँ चाटत पाँव।।
बेई मौड़न के बाप हैं, बेई मौड़िन के बाप।।
लैवो समझत पुण्य हैं, दैबो समझत पाप।।।
ना वे गुनिया शबद के, ना अरथऊ कौ ज्ञान।
जानबूझक्कड़ बन रओे, पत राखें भगवान।।
ऐसों मोरों प्यार है, ज्यों कोदों कों प्यॉर।
ओढ़ों खूब बिछाओ तुम, ज्यू चाहों सरकार।।
भले बरैलन खों कढ़ो, बतकारे कों शीत।
गुजिया सी मीठी लगें, मोखों तोरी प्रीत।।
तें जब ऐंगर होत है, सबई कछू आ जात।
तोरे जातन बोई सब, धूरा सों हो जात।।
जग–जुल्मन सें भींजकें मैं गर जाती हाय।
छतरी से वे तन गये मोखों लिओ बचाय।।

– ७२१, चित्रा चौराहा, ऐबटगंज, झांसी, (उ.प्र.)

कलम और करवाल के धनी : महाराजा छत्रसाल

- डॉ. एन.डी. सोनी

बुन्देलखण्ड सूरमाओं की जननी कहा जाता है। यहाँ के बुन्देला नरेशों में अनेक ऐसे सूरमा हुए जिन्होंने तत्कालीन मुगल शासकों को अपनी तलवार के बल पर लोहे के चने चबवा दिये। इन्हीं वीर राजाओं में ऐसे भी अनेक राजा–महाराजा हुए जिनका करवाल (तलवार) और कलम पर समान अधिकार था। वे जिस महारत से तलवार चलाते थे कलम चलाने में भी उनकी वैसी ही गति थी। ऐसे राजाओं में ओरछेश मधुकरशाह का स्थान सर्वोपरि है। इनके अलावा रामशाह, इन्द्रजीत, होरलदेव, विक्रमाजीत सिंह और छत्रसाल के नाम महत्वपूर्ण हैं। मधुकरशाह के पश्चात् ओरछा राज्य का विखण्डन अनेक जागीरों के रूप में हुआ। परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड में अनेक छोटे–बड़े बुन्देला राज्य स्थापित होते गये।

मधुकरशाह के एक पुत्र उदयादित्य को नुना–महेबा (वर्तमान में टीकमगढ़ जिले में स्थित) की जागीर मिली थी। इन्हीं के वंशज छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड से मुगल सत्ता को पलायन करने के लिए बाध्य कर पन्ना नामक एक विशाल राज्य की स्थापना की। छत्रसाल तलवार के धनी होने के साथ ही कलम के भी धनी थे। उन्होंने कवित्त, सवैया, कुण्डलिया, दोहा आदि छन्दों में अनेक ग्रन्थों की रचना की और अनेक कवि राजाओं के काव्याधारित पत्रों का स्वयं कविता में उत्तर दिये जिनकी वानगी आगे पढ़ने को मिलेगी।

महाराजा छत्रसाल का जन्म १७०७ ई. में हुआ था। जहाँ वे स्वयं कवि थे वहीं कवियों का बड़ा सम्मान भी करते थे। डॉ. किशोरी लाल अभिनन्दन ग्रन्थ 'मध्यकालीन साहित्य संदर्भ' में डॉ. प्रकाश द्विवेदी ने अपने लेख में लिखा है कि पन्ना दरबार के राजकवि कविमणि पण्डित कृष्णदास शर्मा ने 'बुन्देलखण्ड के कवि' में उन्हें ८२ कवियों का आश्रयदाता बतलाया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि उन्होंने कितने कवियों को जागीरें दी थी, कितनों को दरबार से आर्थिक तथा उपकरण आदि की सहायता दी थी। वे बड़े उदारवेत्ता थे। वे कवियों के प्रति कितना आंतरिक औदार्यभाव और सम्मान रखते थे यह उनके लिखे सवैये से स्पष्ट हो जाता है –

''आवत आप कृपा करके, छत्रसाल कहें उठि आदर दीजै।
सारद कंठ बसै जिनके, तिनके ढिंग बैठ सुधा रस पीजै।
तार जराय जबा हिर दै, गज–बाजन दै सनमानहि कीजै।
कीरत के विरवा कवि हैं, इनको कबहुँ कुम्हलान न दीजै।''

छत्रसाल ने कवियों को आदर देने की बात केवल कविता में ही नहीं लिखी बल्कि उन्होंने स्वयं भूषण कवि की पालकी को कंधा देकर अपनी मनोभावना प्रकट की थी। पन्ना में छत्रसाल का और सतारा में साहू नरेश का राज्य प्रजा के लिये हितकर था। इन दोनों की वीरता, विनम्रता और प्रजावत्सलता देख कर ही महाकवि भूषण ने लिखा था –

''साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें
भूषन भनत ऐसो दीन–प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।।''

छत्रसाल की बहादुरी और निडरता की जो ख्याति देश में फैली उससे कुछ बुन्देले शासक जलने लगे। ओरछा वालों ने छत्रसाल को एक ताना भरा पत्र लिखा जिसकी काव्य पंक्तियाँ इस प्रकार थीं –

''ओड़छे का अधिराज्य दतिया की राई,
अपने मुँह छत्रसाल बने धना बाई।''

छत्रसाल ने इसका उत्तर स्वयं कविता में दिया –

''सुदामा तन हेरे तब रंक हू तें राव कीनो,
विदुर तन हेरे तब राव कियो चेरे तें।
कुबजा तन हेरे तब सुन्दर सरूप दियो,
द्रोपदी तन हेरे तब चीर बाढ़ो टेरे तें।।
कहत छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिरनाकुश मारो नेक नजरहु के फेरे तें।
एरे गुर ज्ञानी अभिमानी भये होत कहा,
नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे तें।।''

पत्रोत्तर काव्य और फुटकर छन्दों के अलावा छत्रसाल ने कुछ ग्रन्थों की भी रचना की थी। प्रसिद्ध कवि और साहित्यकार वियोगी हरि ने छत्रसाल ग्रन्थावली में उनके ग्रन्थों का सम्पादन किया है। इसी ग्रन्थावली में एक ग्रन्थ हैं 'नीति–मंजरी'। इस ग्रन्थ में छत्रसाल ने नीतिपरक दोहा, सवैया, कुण्डलियाँ और कवित्तों के माध्यम से आगमन को अपने साथ और अनुभवों से अवगत कराया है। जिसके आधार पर वे प्रजावत्सल राजा बने थे। आज के दौर में जब सत्ता के गलियारों में नैतिक पतन की इन्तहा हो रही है, छत्रसाल की नीति परक कवितायें सत्ताधारियों का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। बसर्ते कि वे इन्हें पढ़े और इन पर अमल करें। नीति की एक सहज अभिव्यक्ति इन दोहों में देखिये –

१. छत्रसाल राजान कों, बर्जित सदा अनीति।
द्विरद–दंत की रीति सों, करत न रैयत प्रीति।।
२. रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल तेहि राज कौ, बार न बाँको जाहि।।

३. *बालक ज्यों पालहिं प्रजा, प्रजापाल छत्रसाल।*
ज्यों शिशु–हित अनहित सुहित, करत पिता प्रतिपाल।।

आज लोगों का विश्वास है अनीति की कमाई में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। छत्रसाल ने एक कवित्त में राजा और प्रजा की भलाई के नीति सूत्रों का कैसा सुन्दर संयोजन किया है –

चाहौ धन, धाम, भूमि, भूषन, भलाई भूरि,
सुजस सहूरजुत रैयत कों लालियौ।
तोड़ादार, घोड़ादार वीरनि सों प्रीतिकर,
साहस सों जीति जंग, खेत तें न चालियौ।।
सालियौ उदंडनि कों, दंडिन कों दीजौ दंड,
करिकैं घमंड घाव दीन पै न घालियो।
बिनती छत्रसाल करै होय जो नरेश देस,
रैहै न कलेश लेस, मेरो कह्यो पालियौ।।

प्रकृति हो या पुरुष, देव हो पशु सब साथ चाहते हैं। एक के बिना दूसरे की शोभा नहीं रहती इसकी अनोखी प्रस्तुति इस कवित्त में देखने को मिलती है –

लगन बिराग, बिन, ज्ञान अनुराग बिन,
पुहुप पराग बिन, पाग बिन सर है।
राजधर्म–न्याय बिन, बनिज उपाय बिन,
तुरँग सुतेज बिन, दान बिन कर है।
नारि निज नाह बिन, देस नर नाह बिन,
सुभट सनाह बिन, सीस बिन धर है।
जाग देव–भाग बिन, हाटक सुहाग बिन,
छत्रसाल, ताल बिन राग की न दर है।।

हर मनुष्य का समय सदा एक सा नहीं रहता। सुख–दुख, आपत्ति–विपत्ति जीवन के उतार–चढ़ाव उसकी परीक्षा की घड़ियाँ हैं। परीक्षाओं में विवेक आदमी का सबसे बड़ा सहायक है। अगर सुबुद्धि और करनी साथ दें तो कठिन से कठिन घड़ियाँ आराम से गुजर जाती हैं। यही बात छत्रसाल के यह सवैया कहते हैं –

१. *लाख घटै, कुल–साख न छाँड़िये,*
बस्त्र फटै प्रभु औरहुँ दैहै।
द्रव्य घटै, घटता नहिं कीजिये,
दैहै न कोऊ पै लोक हँसै है।।
भूप छता, जल–राशि कौ पैरिबो,
कौनिहुँ बेर किनारे लगैहै।
हिम्मत छोड़े तें किम्मत जायगी,
जायगो काल, कलंक न जैहै।।

२. *लोक लगे सब बेदनि सों,*
अरु बेद लगे सुभ धर्मन पाहीं।
धर्म लगे सब राजनि सों,
पुनि राज लगे सतमंत्र–कलाहीं।।
मंत्र लगे सुध बुद्धिन सों,
पुनि बुद्धि लगी करनी दृढ़ताहीं।
छत्र नरेस यही पहिंचान,
बिचारि बिबेक बड़ो जग माहीं।।

प्रजातंत्र के इस युग में खेत को बारी ही खाने लगी है। स्वार्थांध सत्ताधारी केवल अपना घर भरने में लगे हैं। राज्य की सम्पत्ति और जनता की रक्षा सत्ताधारी को कैसे करनी चाहिये? निम्नांकित कुण्डलिया यही समझाती है–

माला के सम नृप, छता, सो संपति सुख लेहि।
सतबीजनि रोपहि थलनि, लघुहिं बड़ो करि देहि।।
लघुहिं बड़ो करि देहि, लेहि फूले फल पाके।
फूटै देहि निकासि, मिलहि फूटै बटुधा के।।
नत उन्नत करि देहि, करहि उन्नत कहँ खाली।
कंटक छुद्र निवारि, और सींचहि नृप माली।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाराज छत्रसाल ने विभिन्न प्रकार के छन्दों की रचना कर अपनी काव्य कुशलता का परिचय दिया है। विभिन्न छन्दों और भावों के अनुरूप शब्दावली का चयन उनकी कविता को अधिक प्रभावशाली बनाता है। जिस प्रकार वे परिस्थिति के अनुकूल युद्धकला से बहादुरों का दिल जीतते थे उसी प्रकार बहु आयामी कविता से उन्होंने कला प्रेमियों के हृदयों में अपना स्थान बनाया है। अंत में हम देखें कि किस प्रकार गणित के सूत्र का प्रयोग छत्रसाल ने कविता में करते हुए कितना सुन्दर दोहा लिखा है –

निज स्वारथ सो पाप नहिं, परस्वारथ सो पुन्न।
दिये इकाई सुन्न ज्यों, होत, छता, दसगुन।।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ (म०प्र०)

चौकड़ियाँ

– एल.एम. चौरसिया

तुमखाँ जो आजादी चानें, परहै कष्ट उठाने।
कष्टों की आगी में तनखां, कुन्दन परै बनाने।
घर सैं निकर बायरें आकें, जौंहर पड़ै दिखाने।
साज श्रृंगार छोड़ कै सब संग, कंधा पड़ै लगाने।।

गुइयाँ दब चपकें न रानें, भीख न तनकउ चाने।
कामकाज पड़बे लिखबे में, सबसैं आगें आने।
मेहनत मजदूरी कर जग में, अपनी जगा बनाने।
समझत रहे खिलौना जो कोउ, उनखां मजा चखाने।

आंसे परअसरेउ रैबो, उल्टी सीधी सैबो।
जान मान झूठी बातन पै, हांजू हांजू कैबो।
मन खां मार अनीत अनर्गल, कामन में संग दैबौ।
पीर मिटै पीरा में पीड़ित सीख लेय संग दैबौ।

– सीताराम कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

दुर्लभ पाण्डुलिपि : विजयपाल रासो

– डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव

आल्हखण्ड और परमाल रासो के रचनाकार जगनिक भाट महोबा के चंदेल राजा परमर्दि देव के दरबारी कवि थे। जगनिक महोबा से पहले कन्नौज के राठौर शासकों के दरबार में रहे थे। जगनिक एक सुप्रसिद्ध रचनाकार ही नहीं वरन् युद्ध क्षेत्र में कृपाण–कौशल के धनी भी थे। संधि और विग्रह दोनों ही स्थितियों में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रहती थी। आल्हाखण्ड और परमाल रासो की मूलप्रति आज भी विवादग्रस्त है परन्तु जगनिक की तीसरी काव्यकृति विजयपाल रासो की पाण्डुलिपि यह प्रमाणित करती है कि जगनिक भाट बुन्देली के सशक्त रचनाकार थे।

विजयपाल रासो की हस्तलिखित पाण्डुलिपि लगभग पांच छः वर्ष पूर्व टीकमगढ़ से प्राप्त हुई थी। इस पाण्डुलिपि के उपलब्ध होने का प्रसंग भी दिलचस्प है, गांधी पुस्तकालय सेंवड़ा के पूर्व ग्रन्थपाल स्व. मूलचन्द्र साहू ने एक बार बतलाया कि टीकमगढ़ में एक पाण्डुलिपि रखी है। मैंने यह पाण्डुलिपि देखने की इच्छा व्यक्त की। तब श्री साहू ने अपने किसी रिश्तेदार के माध्यम से वह पाण्डुलिपि सेंवढ़ा मंगवाई। यह पाण्डुलिपि विजयपाल रासो की है। बाद में श्री मूलचन्द्र साहू के निधन हो जाने से यह ज्ञात न हो सका कि यह पाण्डुलिपि टीकमगढ़ में किसके सौजन्य से प्राप्त हुई। पाण्डुलिपि की समाप्ति पुष्पिका में विजय पाल रासो की पाण्डुलिपि का प्रतिलिपिकाल संवत् १९२१ वि. एवं स्थान टीकमगढ़ उल्लेखित है। प्रतिलिपिकार के नाम का उल्लेख इसमें नहीं किया गया है।

आश्चर्य इस बात का है कि बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण साहित्यिक ठिकाने (टीकमगढ़) पर सवा सौ वर्ष से अधिक समय पूर्व विजय पाल रासो की प्रतिलिपि हुई और फिर वह विस्मृति के गर्त में दबकर रह गई। पाण्डुलिपि किसी सुधी शोधकर्त्ता के हाथ नहीं लग सकी, इसी कारण इतनी लम्बी अवधि तक अचर्चित रही। जगनिक और उनकी कृतियों आल्हखण्ड तथा परमाल रासो पर इस बीच चर्चाएं चलीं किन्तु उनकी रचनाओं की खोज के विषय में गंभीर प्रयास नहीं हुए। सन् १९४१ में श्री महेन्द्रपाल सिंह ने एक आलेख में लिखा था कि परमाल रासो के कुछ अंश, दतिया, चरखारी आदि रियासतों में देखे गये हैं।[१]

श्री महेन्द्रपाल सिंह के आलेख से सूचना पाकर भी परमाल रासो के अंश सुरक्षित करने के प्रयास नहीं हुए। परिणाम यह हुआ कि उपेक्षा की शिकार प्राचीन पाण्डुलिपियां समय के प्रभाव से धीरे–धीरे सड़गल कर नष्ट होती चली गई। डॉ. सीता किशोर के साथ प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज करते हुए लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व ग्राम भोवई (दतिया) में एक खण्डित पाण्डुलिपि के पन्ने प्राप्त हुए थे। इनमें से कुछ पन्ने चंद्रबरदाई के पृथ्वीराज रासो के महोबा खंड के हैं और कुछ पन्ने परमाल रासो के अनुमानित हैं। यह अनुमान भाषा, छंद तथा वर्णित प्रसंगों के आधार पर किया गया है।

विजयपाल रासो की उपलब्ध पाण्डुलिपि का आकार दस इंच लम्बा तथा छः इंच चौड़ा है। इसमें कुल २२ पन्ने, तेतालीस पृष्ठ हैं। इस कृति में छंद संख्या कुल १३६ है। विजयपाल रासो बुन्देली की समर्थ रचना है। इसमें व्यवहृत लिपि में 'अ' को 'अ', 'इ' को 'इि', 'ई' को 'ईी', 'घ' को 'घ', 'ध' को 'घ', फ को 'फ्', 'ब' को 'व', 'य' को 'प' और 'व' को 'व़' की तरह लिखा गया है। 'ष' वर्ण के लिए 'ख' व्यवहृत हुआ है। तालव्य 'श' के स्थान पर 'स' का व्यवहार पाया जाता है। विजयपाल रासो में वर्णित घटना की तिथि संवत् ११६२ दी गई है –

"कूल इंद्रधनु रुद्र सुभग संवतसर जानहु"[२]

"उभय सुदिति पुनि संभु अमिति उत्तिम संवतुसर"[३]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में अंकों की बाम गति के नियम अनुसार संवत् ११६२ वि. ही स्पष्ट होता है परन्तु घटना के नायक पृथ्वीराज द्वितीय एवं विजयपाल राठौर दोनों ही इस समय नहीं थे। समयोल्लेख की संवत् संबंधी अन्य परिपाटी का भी कोई संकेत नहीं है। पृथ्वीराज द्वितीय का राजत्वकाल सन् ११६४ से ११६९ ई. तक रहा। पृथ्वीराज द्वितीय के सिंहासनासीन होने के पश्चात् ही यह घटना घटी होगी। अतएव इस रासोकाव्य में वर्णित युद्ध सन् ११६४ ई. तदनुसार संवत् १२२१ विक्रमी में हुआ होगा। विजयपाल रासो में प्रारंभ में गुरु, गणेश और सरस्वती की वंदना है। तत्पश्चात् चंद्रभान राठौर (गोविन्द चंद्र) के पुत्र विजयचंद्र (विजय–पाल) की प्रशस्ति के छंद हैं। विजयपाल की राजधानी कन्नौज की सुख–समृद्धि के सूचक छंदों में भी राजा की प्रशस्ति ही है। विजयपाल रासो में वर्णित युद्ध का कारण बहुत ही नगण्य था। रासो के अनुसार विजयपाल राठौर के सैनिक वन में शिकार खेलने गए थे। वहां अचानक पृथ्वीराज द्वितीय के सैनिकों से मुठभेड़ हो गई। इस झड़प में पृथ्वीराज द्वितीय के कुछ सैनिक मारे गए, कुछ भाग कर पृथ्वीराज के पास पहुँचे। इस घटना से क्रोधित होकर पृथ्वीराज द्वितीय ने कन्नौज पर आक्रमण करने की योजना बनाई। पृथ्वीराज द्वितीय के एक मंत्री और सेनानायक धूसर ने समझाया भी कि इस छोटी सी बात पर युद्ध और रक्तपात उचित नहीं है –

"को जानति किहि खोट भयव वन मांह विरुध्धह।
न कछु बाति परि आप करहु जिन मन चित क्रुध्धह।।"[४]

धूसर की इस समयोचित नीति पूर्ण सलाह का धौकल

तोमर ने विरोध किया। परिणाम स्वरूप पृथ्वीराज ने सेना सजाकर कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर दिया। उधर कन्नौज के राजा विजयपाल राठौर ने भी युद्ध की तैयारी कर ली परन्तु युद्ध टालने के लिए पृथ्वीराज को समझाने हेतु जगनिक कवि को भेजा। कवि जगनिक ने पृथ्वीराज द्वितीय के सैन्य शिविर में पहुंचकर मध्यस्थता कर युद्ध रुकवाने का भरपूर प्रयास किया किन्तु पृथ्वीराज के पक्ष वालों ने जगनिक की कोई बात नहीं मानी। परिणामतः दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज चौहान की भारी पराजय हुई। इसी बीच अजमेर से अखैसिंह तथा अचलेस नाम के दो सरदार पृथ्वीराज द्वितीय के पास आए और उन्हें समझा बुझा कर क्रोध शान्त किया –

''ऐतिक में अजमेर तें, अखैसिंह अचलेस।
आए दोनों सीघ्र सों, जहाँ दिलीस नरेस।।
ते दोनों मिल बुल्लियौ, सुनौ भूप प्रथिपाल।
न कछु बात पर आपनें, करौ कहा ततकाल।।
ताकौ फूल पायौ जितौ, तितौ भयौ जग पेस।
भट कुट्ट लुट्टे नगर, छुट्टे चाहत देस।।[५]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में पृथ्वीराज द्वितीय की भारी हानि हुई थी। योद्धा मारे गए थे। उनके राज्य के नगर लूटे गए थे, यहां तक कि हाथ से राज्य निकल जाने की भी आशंका हो गई थी। पृथ्वीराज की सेना के पराजित होकर लौट जाने पर विजयपाल राठौर के द्वारा विजयोल्लास मनाए जाने और अपने सेनानायकों तथा कवि जगनिक को पुरस्कृत किए जाने का वर्णन रासो के अंतिम छंदों में किया गया है जैसा कि प्रत्येक विजेता द्वारा किया जाता रहा है।

इतिहास के निष्कर्ष पर –

विजयपाल रासो के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। पृथ्वीराज द्वितीय शाकम्भरी की चौहान शाखा के संस्थापक अजयपाल के कुल में चौथी पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे। अपने नाम पर अजयमेरु–अजमेर नगर बसाने वाले अजयराज के पुत्र अर्णोराज थे। अर्णोराज के चार पुत्र थे। बड़ी रानी सुधवा के जगदेव, विग्रहराज और देवदत्त तथा छोटी रानी कांचन देवी से सोमेश्वर उत्पन्न हुए थे।[६] श्री रमेशचन्द्र मजूमदार ने अर्णोराज के पुत्र जगद्देव के नाम का उल्लेख न कर 'अज्ञात नाम' लिखा है तथा इस अज्ञात नाम पुत्र के द्वारा पिता अर्णोराज की हत्या किए जाने का उल्लेख किया है।[७] डॉ. विशुद्धानन्द पाठक ने इसे विस्तार देते हुए लिखा है कि विग्रहराज चतुर्थ का पुत्र अपरगागेय सन् ११६४ ई. के लगभग राज्य–सिंहासन पर बैठा। वह अल्पवयस्क था। सिंहासन पर बैठने के कुछ ही महीने पश्चात् पितृघाती जगद्देव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय अथवा पृथ्वीभट ने उसे मार कर गद्दी छीन ली थी।[८] इससे स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज द्वितीय जगद्देव का पुत्र था और सन् ११६४ ई. में सिंहासन पर काबिज हुआ था। थोड़े समय शासन करने के उपरान्त सन् ११६९ ई. में उसकी मृत्यु हो गई थी। पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका चाचा सोमेश्वर सिंहासनारूढ़ हुआ था। गोर के सुल्तान शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी से टक्कर (सन् ११९१ ई. तराइन) लेने वाले पृथ्वीराज तृतीय इन्हीं सोमेश्वर के पुत्र थे।

विजयपाल राठौर कन्नौज की गाहड़वाल, गहिरवार अथवा कमध्धुज शाखा के थे। गहिरवारों की सत्ता के संस्थापक चंद्रदेव (१०८९–११०४ ई.) थे। चंद्रदेव के मदनपाल (११०४–१११४ ई.) और मदनपाल के पुत्र गोविन्द चंद्र (१११४–११५४ ई.) के तीन पुत्र–आस्फोट चंद्रदेव, राज्यपाल देव तथा विजयचंद्र थे। अपने पराक्रम के बल पर विजयचन्द्र ने अपने पिता और भाइयों को प्रभावित कर शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया था। साहित्यिक ग्रन्थों में विजयचन्द्र को विजयपाल तथा मल्लदेव भी लिखा गया है।[९] विजयपाल इतना शक्तिशाली था कि उसने अनेक राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। काशी तक का क्षेत्र उसके राज्य की सीमाओं में आता था। विजयपाल रासो के अनुसार विजयपाल ने मुस्लिम आक्रान्ताओं से भी अनेक बार युद्ध किए थे। हारुन बजीर तथा सआदत खान पठान विजयपाल राठौर के समक्ष टिक नहीं सके थे।[१०] दिल्ली के अनंगपाल तोमर विजयपाल राठौर के अधीन थे। अनंगपाल तोमर अधीन होते हुए भी कभी–कभी विजयपाल के विरुद्ध भी अभियान कर देते थे। विजयपाल राठौर का राज्यकाल सन् ११५५ से ११६९ ई. तक रहा तथा पृथ्वीराज द्वितीय का शासनकाल दिल्ली में सन् ११६४ से ११६९ ई. तक का है। इसी बीच सन् ११६४ ई. के लगभग विजयपाल राठौर एवं पृथ्वीराज द्वितीय के मध्य युद्ध की यह घटना घटी होगी। उस समय जगनिक कन्नौज दरबार में राजकवि रहे होंगे तथा उन्होंने विजयपाल राठौर की प्रशस्ति में 'विजयपाल रासो' की रचना की होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विजयपाल रासो में वर्णित युद्ध सन् ११६४ ई. तदनुसार संवत् १२२१ वि. में हुआ होगा। जगनिक भाट स्वयं उस युद्ध के प्रत्यक्षदर्शी थे। अतएव उन्होंने उसी समय कभी इस रासो की रचना पूर्ण की होगी।

संदर्भ ग्रंथ :

१. मधुकर, वर्ष १, अंक १२, १६ मार्च १९४१ ई, पृ. ५ ''आल्हा की ऐतिहासिकता और महत्व'' आलेख श्री महेन्द्रपाल सिंह

२. विजय पाल रासो – जगनिक भाट, पाण्डुलिपि, छंद क्र. २४

३. उपरिवत, छंद क्र. ३८

४. विजयपाल रासो – पाण्डुलिपि, छंद क्र. १७

५. उपरिवत, छंद क्र. १२१, १२२, १२३

६. उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास – ले.डॉ. विशुद्धानंद पाठक, नागरीप्रचारिणी काशी, १९७३ ई. पृ. ४६४

७. प्राचीन भारत – ले. रमेश चंद्र मजूमदार, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, नई दिल्ली, १९७३ ई. पृ. २९५–२९६

८. उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास – डॉ. विशुद्धानंद पाठक, पृ. ४७१

९. उपरिवत् – पृ. ३६१, ३६२

१०. विजयपाल रासो – पाण्डुलिपि, छंद क्र. ६८, ६९

– सेंवढ़ा, दतिया, म०प्र०

प्रेम कौ बल

– रवि प्रताप रावत 'ऋषि'

संसार में कोनऊ ऐसौ व्यक्ति या लेखक नईया जो प्रेम के बारे में न जानत होवै। हर लेखक नै प्रेम पै लिखो है। प्रेम एक ऐसी चीज है जौन में शांति भी है औ युद्ध भी है, कमजोरी है तौ बल भी है। प्रेम ई संसार में अमर है औ हमाऐ भारत मेई नईं, बुंदेलखण्ड में भी प्रेम खूब छाओ रात है औ रओ भी है। ई के प्रमान हमें अपनी लोककथन में देखबे मिलत हैं। प्रेम के बल पै आधारित जा किस्सा सब साफ कर देहै –

बड़ी पुरानी बात है। कौनऊं राज्य में एक राजा राज करत हते। राजा बड़े न्याय प्रिय, प्रजाप्रिय, औ युद्धप्रवीन हते। राज्य की जनता उनकौ भौत सम्मान करत हती। उनकौ एक कुंवर हतो जौन की उमर सोलह वर्ष की हती। राजा अपने कुंवर हां भौत चाऊत हते।

राजा के मंत्री कुंवर हां रोज नगर भ्रमण खां लिवा जात हते। पै राजा नै मंत्री से कै दई ती कै कुंवर हां दक्षिण दिशा में छोड़ कें चाय जां लिवा जाओ करे। कुंवर जब भी मंत्री से पूंछे कै दक्षिण दिशा में काऐ नईं लिबा जात, तौ मंत्री कै दैवे कै राजा की आज्ञा नईयां। राजा के कुंवर ई बात से भारी उदास रान लगे। वे रोज घूमवे तौ जाएं पै उनकौ मन न लगै। समय बीतन लगो। कुंवर होत करत बीस बरस के ज्वान हो गए।

एक दिना का भओ कै जब कुंवर घूमन गए सो वे मंत्री से बहानौ करकें बोले – "मंत्री जू, हमें आज दक्षिण दिशा में घूमबे लिवा चलौ।"

"कुंवर साब, राजा साब ने रोकी है कै दक्षिण दिशा में न लिबा जाओ जाए।" मंत्री ने जबाव दओ।

"पै मंत्री जू हम आज पिता जी से पूंछ कैं आए उनने आज्ञा दै दई।"

"अगर ऐसौ है तो चलौ, हमें कोनऊ हैरानी नईयां।"

इतै मंत्री ने हामी भरी और उतै कुंवर कौ घोड़ा दौड़ पड़ो। दक्षिण दिशा की तरफ। जैसई–जैसई घोड़ा आगें बढ़त जाए कुंवर की जिज्ञासा भी बढ़त जाए। तनक देर में घोड़ा हवा सें बातें करत भओ एक बस्ती में पोंच गओ।

बस्ती में चारऊं तरफ संगीत की धुनें औ घुंघरूअन की आवाजें सुनावें। वा बस्ती वैश्यन की हती, ऊ पूरी बस्ती में वैश्याएं रात हतीं। कुंवर ने सोची कै इतै तौ बड़ौ प्यारौ लगत, सो वे बस्ती घूमन लगे। जब कुंवर एक गली में से निकरे सो उनने एक छत पै का देखों कै एक अठारह–उनईस साल की बिटिया जौन एक वेश्या की हती बार (बाल) समार रई। वा देखवे में इतनी नौनी लगत हती कै कुंवर उऐं देखतई रै गए। कुंवर घोड़ा पै सें उतरे औ छत पै पौंच गए। वा बिटिया भी कुंवर हां देखत रै गई। दोई जनन की छिन भर में आंखें चार हो गई। तनक देर में उतई मंत्री पौंच गए। जब उनने कुंवर हां छत पै देखो तौ वे छत पै जाकें कुंवर सें बोले –

"कुंवर साब, अब महलन हां चलबो होए – संजा हो रई है – महाराज प्रतीक्षा में हुऐं।"

तब कुंवर ने उत्तर दओ – "मंत्री जी– अपुन जाकें पिता जी सें कै दईयो कै अब कुंवर हां लौट कैं नईं आऊने। मंत्री जी, अगर पिता जी ई (वेश्या) हां बहू स्वीकार कर लेहें ता हम चले चलबी – अब आप जाऔ।"

मंत्री ने कुंवर हां खूबई मनाओ पै कुंवर हते कै एकई हठ पै अड़ कैं रै गये।

मंत्री महलन पौंचे सो उनने जातनईं राजा हां सबरीं बातें बताई। राजा ने कई कै उनै दक्षिण दिशा में जान काए हां दओ तो। तब मंत्री के समझ में आओ कै कुंवर टिया–बहाने करकें चले गए ते।

राजा ने कुंवर लौ कई संदेश पौंचाए पै कुंवर तौ गए सो खबर लौ न लई। पूरे महलन में मरे कैसौ शोक छा गओ न राजा साजे सें खाऐं पियें न रानी। प्रजा भी राजा के दुख में दुखी रान लगी। उतै कुंवर वेश्या के संगै मस्त हते न घर की चिंता न मताई–बाप की। दिन भर नाच–गाना में मस्त राएं औ रात होवे सो दारू में। ऊ वेश्या के मोह जाल में वे इतने फंस गए कै उनै सब कछु भूल गओ। वा वेश्या भी रुपइया–पइसा की मीत हती सो वा भी कुंवर हां हाथन–हाथ लेत ती। अब कुंवर चाए अपने लरका होवे कौ कर्ज निभाएं चाए नई, पै राजा साब उनलौ समय–समय पै रुपइया–पइसा पौंचा देव करत ते कै कंऊ कुंवर हां कौनऊ कष्ट न होवै।

कुंवर की ई करनी के कारन ऐंगर–पास के राज्यन में भी खूब बदनामी हो गई ती। राजा साब दिन रात चिंता में डूबे राऐं कै कैसे और कौन तरां से कुंवर हां वापस लियाओ जाए।

एक दिना राजा बैठे सोच में डूबे तें कै तबई मंत्री जी आ गए। वे आऊतनई राजा सें बोले –

"महाराज – हमने कुंवर हां सुधारवे की एक विधि सोची।"

"का –?" राजा ने इतनौ सुनौ कै वे उछल पड़े।

"महाराज – काए न कुंवर कौ, ब्याव करा दओ जाए?"

मंत्री ने विधि बताई।

राजा फिन उदास हो गए औ बोले – "मंत्री–, जौन लरका मताई–बाप की खबर–अतर लैबे न आऊत होंवै ऊ ब्याव का

कराहै – और फिन हमाई इतनी बदनामी हो गई है कै कोऊ अपनी बिटिया व्यावे न आहे हमाए लौ...।''

मंत्री ने फिन कई – ''महाराज –, ऊ की चिंता अपुन न करौ रिश्तौ तलाशबो हमाऔ काम आए – अपुन तौ बस्स कौनऊ तरह से कुंवर हां मना लो –।''

अच्छा – एक दफै फिन कोशिस करबी।'' राजा नै एक लम्बी सांस खेंच कैं कई।

राजा नै फिर कैं कुंवर लौ संदेशौ पोंचाओ कै तुमाई मताई कौ मन है कै तुमाऔ व्याव कर दओ जावै, वे अपने जियत बहू हां देखबो चाऊतीं, सो बेटा उनकी जा इच्छा पूरी कर दो।''

कुंवर लौ एक के बाद एक ऐसई तीन–चार संदेशे आए सो कुंवर कौ कछू मन पसीज गओ। पै जब जा बात वेश्या हां पतौ चली ता वा तुनक गई। वा न चाऊत ती कै कुंवर कौ व्याव होवे।

इतै मंत्री जू कुंवर के लानै एक रिश्तौ लै आए ऐंगरई के राज्य के एक राजा की बिटिया जौन देखत में खूब सुंदर औ काम–काज में बड़ी निपुन हती।

कुंवर हां तौ कौनऊ लेवौ–दैवो न हतो कै बिटिया कैसी है, पै जब वेश्या लौ जा बात पौंची कै जी सें कुंवर कौ व्याव हो रओ है वा भौत सुंदर है, तो ऊनै बड़ी कोशिश करी कै कुंवर व्याव के लानै नांई कर देवें।

कुंवर ने वेश्या हां समझाओ – 'देखौ – तुम चिंता न करौ। हम जौ व्याव अपनी माताराम कौ मन राखवे कै लानै भर कर रये...। उतै विदा होकें आहै औ हम तुरतईं तुमाए लौ चले आवी।''

पै वेश्या के मन में तौ लगी ती कै जब वा हमसें ज्यादा सुंदर है ता कुंवर ओई के हो जेहें। वेश्या ने एक चाल सोची औ कुंवर सें बोली –

''कुंवर साब – मैने अबै पंडित जू से पतौ करो है कै तुमाए व्याव में डर है।''

''कैसौ डर ...?''

''पंडित जू कात ते कै अगर अपुन अपनी घरवाली कौ मों देखौ ता अपुन अंदरा हो जैहौ, ईसें अपुन अपनी आंखन में करिया लत्ता बांध लइयो – मैं नई चाहत कै अपुन हां कछु होवै।''

कुंवर ने ऊकी बात पै भरोसौ कर लओ।

जौन दिना कुंवर हां दूला बननै तो सो वे आंखन में लत्ता बांध कैं महलन में आ गए। सबने पूंछी कै आंखे काए बांधे सो कुंवर बोले कै आंखें आई आ हैं। ससरार में सबनै पूछीं तो जेई उतै बता दओ।

पूरी रात नैंग–चार होत रये। सबेरौ भओ सो भांवरे परवे के पांछू विदा हो आई अपने घरै जैसई कुंवर पौंचे से तुरतई वेश्या लौ जान लगे। तौ बहू ने पूछीं कै कां जा रऐ कुंवर बोले – ''हम अपनौ काम देखन जा रए। हम एक जांगा ठेका लैं सो उतै जा रये।''

बहू हां सांची लगी। इतनौ कैबे के बाद कुंवर चले गए।

दिन बीतन लगे। बहू हैरान, कै कुंवर अबै लौ नई लौटे। एक दिना बहू ने सास सें पूछी सो सास ने सब कछू सांची – सांची बता दई। बहू बोली कै ''अपुन चिंता न करौ कुंवर हां हम लौटा कै लिआती।''

बहू जाकें अपने ससुर सें बोलीं – ''पिता जी, अपुन सोसन दूबरे न हो जाऔ..., अब अपने पति हां वापिस लिआवे कौ भार हमाऔ रओ। बस अपुन तौ ओई करौ जो हम कात हैं–। अपनु हमाए लाने ऊ पुरा में रैवे हां एक कोठा दिबा दो औ कछू और सामान दैदो जीमें हम उतै रै सकिए।''

''पै बेटा, तुम उतै कैसें रैहो। ऊ पुरा तौ बड़ो बदनाम है। नई, हम तुम उतै न रान दैबी।''

''अपुन बिलकुल चिन्ता न करौ पिता जी –, प्रेम कौ बल भौत बड़ो होत – अपुन हम पै भरोसौ करौ।''

जब बहू नै ठान लई तौ ससुर ने सोई हामी भर दई।

बहू कै लानैं तुरतईं कोठा लै दओ गओ। राजा की बहूं ऊ पुरा मैं सादा से भेष में रान लगीं।

अब मोंदरां (सुबह) सें बहू दही बेंचवे वाली कौ भेष धर कैं ओई गली सें कड़ीं जौन गली में ऊ वेश्या कौ घर हतो। बहू सज–धज कैं कड़ी औ गली में आवाज लगाई – ''दही लै लो – दही......, ताजौ गईया के दूध कौ दही लै लो।''

कुंवर ओई समय छत पै बैठे ते। कुंवर ने जैसई आवाज सुनी और नैचें देखो सो वे दही वाली हां देखत रै गऐ। फिन उनने दही वाली हां छत पै बुलाओ। दही लओ। दही वाली दही बेंचकें चली गई पै कुंवर ऊऐ तबलौ देखत रऐ जबलौ बा दिखात रई। अब कुंवर रोज ऊं सें दही लेन लगे। एक दिना कुंवर नै ऊ सें पूंछीं – ''काऐ वाई – अपुन कौ नाम का है औ अपुन रैवे बाली कां की आऔ।''

वे बोली – ''हमाऔ, नाव तौ है रूपकली, औ हम रात हैं पांव तरै की सराय में।''

''पांव तरे की सराय? जौ गांव कां है? जौ नाव तौ हमने पैली बेर सुनो...।''

''अपुन सीदे चले जैहो सो राजा के महलन लौ पूंछ लइयो चाए जो कोऊ बता दै है।''

''पै हमाऔ तौ बचपन उतई निकरो, हमने तौ कऊ नई सुना।''

''अपुन जब आहौ सो पतौ लग जैहै – ''

इतनौ कै–कैं वा चल दई। कुंवर सोस में डूब गए

जा बात वेश्या हां पतौ लगी कै कुंवर कौनऊ दही वाली हां चाऊन लगें तौ वा कुंवर से गुस्सां हो गई। ऊनै सोची कै ऐसौ नई कै कुंवर सब रुपइया–पइसा दही वाली पै लुटा देवें। उनै–कुंवर हां रोकवे की भौत कोशिस करी पै कुंवर चल दएं पांव तरे की सराय ढूड़बे।

उनने राज्य भर में सब से पूंछी पै कोऊ हां पतौ न हतो। कै पांवन तरे की सराय कां है। महल लौ पोंचे सो ओई बहू हाथ में आरती कौ थाल लैं ठांड़ी ती। कुंवर नै देखो सो वे सब समझ गए पै एक बात न समझ में आई, बा जा कै पांव तरै की सराय काऐ। उनने रानी से पूंछी सो वे बोलीं –

''अपनु हमाए पति औ हमे जीवन भर अपुन के संगै रानै, अपुन कै पांवन तरैं सो अपुन के पांवन तरैं तौ हमाई सराय भई कै नईं।

ई तरां सैं बहू ने अपनी चतुरई, अपने प्रेम के बल सें कुंवर हां पा लओ। अगर प्रेम सांचौ होए, ऊमैं कौनऊ बनावट और अपवित्रता न होए ता आदमी तौ आदमी भगवान लौ मिल जात। ऐई सें कई गई कै –

''ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होइ।''

– ग्राम व पोस्ट बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली लघु कथा –

नौनी बातें

– डॉ. सुश्री शरद सिंह

सकूल में आदेस आओ के हर कमरा में दीवारन पे बड़े लोगन की कई गई कछु नौनी बातें लिखवाई जाएं। आदेस को पालन करबे के लाने रंग मंगवा लओ गओ संगे एक लिखबे वारो बुला लओ गओ। काम सुरू भओ। कछू दिनां में पूरौ बी हो गओ। सकूल के हेडमास्साब जी ने एक–एक कमरा में जा कें देखो। उनको जी सुख हो गओ। हर कमरा में अच्छी–अच्छी बातें लिखी दिखानीं – 'सदा सच बोलो!', 'ईमानदार बनो!', कभी किसी को धोखा मत दो!'

हेडमास्साब जी सगरे कमरा देख के अपने कमरा में पौंचे सो उन्ने पोंचतई संगे अपने लेखापाल को बुलवाओ।

'साब आपने मोए बुलाओ?' लेखापाल ने हेडमास्साब जी से पूछी।

'हऔ! लिखबे को काम तो पूरौ हो गऔ अब ऊके बिल को का कर रए? ऊकी रसीदें बनवा लईं? बिल बना के भेजबे पे ऊपर से पइसा आहें।' हेडमास्साब जी ने लेखापाल खों सुरता कराई।

'ई सब की चिन्ता आप न करो! हमने सगरी रसीदें बनवा लई हैं, जे देखो!' कैत भए लेखापाल ने रसीदें हेडमास्साब के आंगू मेज पे धर दईं। उन रसीदन में सौ रुपइया के रंग की कीमत चार सौ रुपइया लिखी हती उर एक लिखबे वारे के जांगू चार लिखबे वारन की मजूरी लिखी हती।

– शान्ति विहार, रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

बुन्देली काव्य –

काय ककाजू केंसी कई

– दिनकर राव 'दिनकर'

ऐसें केंसे असुआ पोंछे
गाल हमारे खूबइ लोंचे
हाथों जैसें आगी लई
काय ककाजू केंसी कई।

कहाँ बिला गये मीठे सपने
का सोची का देखो हमने
जन सेवा के इनके बाना
सुख सुविधा के गा रए गाना
कानों जैसें लगी बगई
काय ककाजू केसीं कई।

स्वारथ मुरगा खूब लड़ा रए
मेल जोल को पाठ पढ़ा रए
भेद भाव के बिखरे काँटे
अगड़ा पिछड़ा हम खाँ बाँटे
घाट 'एकता' लगी है कई
काय ककाजू केसीं कई।

भ्रष्टाचार की चली सवारी
नेता, साहब, बाबू, व्यापारी
एक ताल पे नचें बधाई
कौन बरन की विपदा आई।
सेरों बीच फसे लड़ई
काय ककाजू केंसी कई।

बीस को पूरा दस की गैय्या
गाँव गली में ताता थैय्या
को जाने जा कौन की जाई
कहाँ से आई जा मँहगाई
साँस गरे की लगे गरई
काय ककाजू केंसी गई।

पाले पोसे कुँवर संवारे
पढ़े लिखे बेकारी के मारे
जीवन आसा गरे बतासे
सूरत इनकी लगे तपा से
हाथों रोटी हाथ से गई
काय ककाजू केंसी कई।

गाँव शहर में खुली कलारी
'लाल परी' की लीला न्यारी
बेहोश परे गाँधी के नाती
कुत्ता सूघें इनकी छाती
ऐसी केंसी विकास की चादर
विश्वासों के फट गये बादर
मीठी शक्कर लगे करई
काय ककाजू केंसी कई।

– रामपुरा वार्ड, सागर (म.प्र.)

परम पवित्र तीर्थभूमि - कालपी

- डॉ. हरीमोहन पुरवार "बुन्देलरत्न"

कल–कल निनाद करती परम पुण्य सलिला सूर्य पुत्री यमभगनी यमुना के दक्षिणी तट पर २६°–८° अक्षांस तथा ७९°–४५° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित, बुन्देलखण्ड के उत्तरी प्रवेश द्वार के रूप में सुविख्यात कालप्रिय नाथ की परम निर्मल नगरी कालपी एक श्रेष्ठ तीर्थ है।

विश्व प्रकाश कोशकार ने शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, उपाध्याय, मंत्री, अवतार, ऋषि सेवित जल आदि को तीर्थ की संज्ञा देते हुये कहा है –

तीर्थ शास्त्राध्वर क्षेत्रो पायोपाध्याय मन्त्रिषु।
अवतारर्षि जुष्टाम्भः स्त्रीरजः सु च विश्रुतम।।

(थद्विकम् ८)

कालपी क्षेत्र में शास्त्रों के प्रणेता महर्षि वेद व्यास ने जन्म लेकर इस भूमि से दिग दिगन्त तक ज्ञान की निर्झरणी प्रवाहित की है। वायु पुराण १/१/२ में वर्णन मिलता है –

जयति पराशरसूनुः सत्यवती हृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्य कमलगलितं वांगमय मृतं जगतपिवीत।।

अर्थात् व्यास जी पराशर जी के आत्मज थे। उनके मुखारविन्द से निकले वांगमयरूपी अमृत का पान समस्त जगत करता है। वे सत्यवती के हृदय को आनन्दित करने वाले थे। वृहद्धर्म पुराण पूर्व खण्ड १५/२८ में वर्णन मिलता है कि –

पुराण पठनं यत्र यत्र पदमवनानि च।
तच्च तीर्थ समाख्यातं गुरुदेव गृहं तथा।।

अर्थात् जहाँ पुराणों का पठन अथवा कमलवन हो, वह स्थान तथा गुरुगृह और देवालय भी तीर्थ होते हैं।

जहाँ तक कालपी का प्रश्न है वहाँ तो वेदों के विस्तारक व अष्टादश पुराणों के रचयिता वेद व्यास जी ने जन्म ही लिया था। वेद व्यास जी की शिष्य परम्परा भी रही है अतः कालपी गुरुगृह भी हुआ। यहाँ पर बहुतायत में देवालय भी हैं और देवालय क्यों न हों। यहीं पर तो सृष्टि के नियंता भगवान विष्णु ने स्वयं वेद व्यास के रूप में जन्म लेकर इस क्षेत्र को तीर्थराज बनाया है। ब्रह्म पुराण में वर्णन है कि जब अधर्म बढ़ेगा। वेदों का पराभव होगा। उन पर संकट आयेगा। उस समय वेदों का उद्धार करने के लिये व्यास का जन्म होगा। उनका तीर्थ व्यास तीर्थ कहलायेगा। इस तीर्थ का जलपान, पाप रूपी कीचड़ को धोने वाला, मोहरूपी अन्धकार और मद का नाश करने वाला तथा मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है। भगवान विष्णु ने स्वयं वेदव्यास के रूप में व्यास गंगा एवं यमुना के संगम द्वीप पर योजनगन्धा की कोख से जन्म लेकर इस भूमि को तीर्थत्व प्रदान किया है। नारद पुराण पूर्व भाग ६२ के श्लोक संख्या ५४ में वेद व्यास जी को भगवान विष्णु का अवतारी करते हुये स्पष्ट कहा गया है –

भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय पराय च।
कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्ध कल्कि स्वरूपिणे।।

भृगुनन्द, परशुराम, रघुनन्दन, श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास तथा कल्कि आपके ही स्वरूप है, आपको नमस्कार है।

तीर्थ शब्द ती अर्थात् तीन तथा–र्थ अर्थात अर्थ से बना है। अस्तु जहाँ पर तीन की प्राप्ति हो वह स्थान तीर्थ कहलाता है। ये तीन चीजें हैं धर्म, काम और मोक्ष। अर्थ तीर्थ में आने में व्यय होता है तीर्थ की वृत्ति बने तो धर्म होता है और तीर्थ में पहुँचने पर काम और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो तो तीर्थाटन सफल होता है। स्कन्दपुराण काशीपर्व में कहा गया है कि –

काशी–कान्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वाखत्यपि।
मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्यो अत्र मोक्षदाः।।

अर्थात् काशी, कान्ची, माया (लक्ष्मण झूला से कनखल तक) अयोध्या, द्वारका, मथुरा और उज्जैन अवन्ती सप्त मोक्ष पुरियां है। जहाँ पर पहुँचने पर मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु ऊषर क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ भोग एवं मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड पुराणानुसार अपने देश में कुल नौ ऊषर क्षेत्र हैं –

रेणुकः शूकरः काशी काली कालो वटेश्वरौ।
कालन्जरो महाकाल ऊपरा नव कीर्तिताः।।

और इन नौ ऊषरा क्षेत्रों में काल ऊषर नामक क्षेत्र के विषय में कहा गया है –

नवोपराणां मध्ये च काल ऊषर मुत्तमम्

अर्थात् वेदों तथा शास्त्रों से परिचित सभी मुनिजन काल ऊषर को नवों ऊषरों में श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इस काल ऊषर क्षेत्र के विषय में ब्रह्माण्ड पुराण में कालपी माहात्म खण्ड के प्रथम अध्याय में श्लोक संख्या १६ में कहा गया है –

''कालाद्रि पाति कालेशौ यत्र स्वेन महौजसा।
तस्मात्सम्प्रोच्यते सद्भिः कालपीति शुभस्थली।।''

अर्थात जहाँ मृत्यु के स्वामी श्री भगवान विष्णु अपने तेज द्वारा काल से मनुष्यों की रक्षा करते हैं इसी कारण सज्जन पुरुष इस पुण्य भूमि को कालपी कहते हैं।

इस पुण्य भूमि कालपी की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करते हुये आगे श्लोक संख्या २५ में वर्णन मिलता है कि –

योगसिद्धिकरी शश्वद्यत्र सिद्धिप्रदायिनी।

कालिन्द्या दक्षिणेतीरे भाति पुण्यौर्धवद्धिनी।।२५।।

अस्तु जी सदैव योग सिद्धि प्रदान करने वाली तथा अन्य सिद्धियों की प्रदाता है वह पुण्य समूह को बढ़ाने वाली कालपी यमुना नदी के दाहिने किनारे पर शोभित है।

तीर्थ में जाने से मोक्ष तो मिलता ही है परन्तु ऊषर क्षेत्र के तीर्थ में जाने से भोग (काम) और मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड पुराण में स्पष्ट कहा गया है कि –

'ते सर्वे पान्ति यस्यां वै कालपी सा प्रकीर्तिता।

भुक्ति मुक्ति प्रदानृणा महापातक नाशिनी।।१८।।

अर्थात सब (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) जिस स्थान पर रक्षा करते हैं, वह कालपी कहलाती है। यह कालपी मनुष्यों को भोग तथा मुक्ति दोनों प्रदान करने वाली व बड़े–बड़े पापों को नष्ट करने वाली है।

तीर्थ तीन प्रकार के होते हैं। प्रथमत: नित्यतीर्थ जो कि कैलाश, मानसरोवर, काशी, गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी इत्यादि कहलाते हैं। कालपी में सूर्यपुत्री यमुना अपने कल–कल निनाद से सभी के पापों का क्षरण करती है। ऋग्वेद म.१०सू.७५ के मन्त्र ५ में यमुना जी की स्तुति करते हुये अभीष्ट फल प्रदान करने की प्रार्थना करते हुये कहा गया है –

इमं में गंगे यमुने सरस्वती।

शुतुद्रि स्तोमं सचता परूष्ण्या।।

असिकन्या मरूदवृधे वितस्तया।

आर्जीकाये श्रणुहया सुषोमया।।

अर्थात हे गंगे, हे यमुने, हे सरस्वति, हे शुतुद्रि, हे परूष्णि, हे असिन्की सहित मरुदवृधे, हे वितस्ता तथा सुशेमासहित अर्जीकीये, तुम मेरे इस स्त्रोत को भलीभांति सुनो, सेवन करो और मुझे अभीष्ट फल प्रदान कर सफल करो।

कालपी के उत्तर में यमुना नदी पूर्वाभिमुख होकर बहती है। इस कारण से इस स्थान पर सोम से अमृत रूपी मुक्ति प्रदान करने की स्तुति करते हुये ऋक परिशिष्ट में कहा गया है –

यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्रार्थी सरस्वती।

यत्र सोमेश्वरो देव स्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव।।

अर्थात् हे सोम, तुम इन्द्र के पानार्थ रसरूप में प्रकट होओ। जिस स्थान में गंगा यमुना, तथा पूर्वाभिमुख बहने वाली सरस्वती है और जिस स्थान में सोमेश्वर महादेव हैं, वहां आकर तुम मुझे अमृत (मुक्ति) प्रदान करो।

यह यमुना का पवन पवित्र क्षेत्र यमुना क्षेत्र के रूप में सुविख्यात है। श्रीमद् भागवत के ४/८/४२ में नारद जी ध्रुव से कहते हैं –

तत् तात गच्छ भद्र ते यमुनायास्तटं शुचि।

पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यादा हरेः।।

तात तेरा कल्याण हो, अब तू यमुना के तटवर्ती परम पवित्र मधुवन को जा। वहाँ श्री हरि का नित्य निवास रहता है।

ब्रह्माण्ड पुराण के निम्न श्लोक से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है –

कालपी हरिरध्यास्ते काल्प्यां सर्वदा स्वयं।

तत्क्षेत्रवासिनों यान्ति कालादत्र न संशय।।५३।।

अर्थात् काल से रक्षा करने वाले भगवान श्री हरि (विष्णु) सदैव स्वयं कालपी में निवास करते हैं। उस क्षेत्र के रहने वाले मृत्यु से दूर रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

यमुना अन्त: सलिला होकर मानस सरोवर (मानसरोवर) से निकली है। ब्रह्म पुराणानुसार यमुना देव तीर्थ है क्योंकि तीनों लोगों में जो स्वयं प्रकट हुये हैं वे तीर्थ देव तीर्थ कहलाते हैं। ब्रह्मपुराण के १५३ वें अध्याय में भी यमुनेश्वर तीर्थ के विषय में कहा गया है कि यमुनेश्वर तीर्थ के धारापतन में स्नान करने पर मनुष्य स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करता है और प्राण त्यागने वाला विष्णु के धाम को जाता है। ब्रह्माण्ड पुराण में भी कालपी के इस यमुनातीर्थ पर स्नान करने से प्राप्त होने वाले फल की पुष्टि करते हुये वर्णन मिलता है कि –

तज्जनम स्रोतस: प्रान्ते कालिन्धां स्नान्ति ये नरा:।

ते यान्त्यमरसायुज्यं निष्कामाश्चहरे: पदम।।४१।।

अर्थात श्री व्यास जी के जन्म स्थान के निकट बहने वाले सोते (व्यास गंगा) के समीप जो मनुष्य यमुना जी में स्नान करते हैं, वे अविनाशिनी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं तथा निष्काम होकर श्री विष्णु भगवान के पद को पाते हैं।

अस्तु कालपी तो एक नित्य तीर्थ हैं ही साथ ही साथ दूसरे प्रकार का भगवदीय तीर्थ भी है। ये वो तीर्थ होते हैं जहाँ भगवान का अवतार होता है। भक्तों को भगवान के दर्शन प्राप्त होते हैं अथवा भगवान अपनी लीला करते हैं। इस कालपी में तो स्वयं भगवान विष्णु ने वेदव्यास के रूप में अवतार लेकर वेदों का संरक्षण किया है।

इस स्थल पर दान आदि करने में परम लोकों की प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि इस स्थान पर जो गौ दान करता है वह श्रीकृष्ण धाम को जाता है, जो सुवर्ण दान करता है वह सुमेर पर्वत का निवासी होता है तथा देवताओं में भी श्रेष्ठ होता है, जो मनुष्य भूमि दान करता है वह स्वर्ण भूमि का राजा होता है, जो इस स्थान पर वस्त्र दान करता है वह इन्द्रपद को प्राप्त करता है जो अश्व दान करता है वह सूर्यलोक को जाता है, जो हाथी दान करता है वह ऐरावत पर विराजने वाला इन्द्र हो जाता है, जो चांदी का दान करता है वह कैलाशवासी होता है जो आभूषण मणि आदि दान करता है वह कुबेर का आधा आसन छीन लेता है।

अत: यह कालपी भगवदीय तीर्थ भी है। इसके साथ ही साथ तीसरे प्रकार के तीर्थ संत तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ शब्द का अर्थ पवित्र करने वाला है। संत भी मनुष्य को आचरण वाणी से

पवित्र करते हैं। इस कालपी क्षेत्र में संतों का प्रवास भी है। संत पुरुषों के मन में सदैव ईश्वर का निवास रहता है। श्रीमद् भागवत १/१३/१० में धर्मराज युधिष्ठर महात्मा विदुर से कहते हैं –

भवद्विधा भागवस्ता तीर्थभूता: स्वयं प्रभो।
तीर्था कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त: स्थेनं गदाभृता।।

प्रभो! आप जैसे भगवान स्वयं तीर्थ स्वरूप है। क्योंकि आप लोग अपने हृदय में विराजित हैं। भगवान गदाधर के प्रभाव से तीर्थो को भी तीर्थ (पवित्र) बना देते हैं।

इस स्थिति में यदि हम हस्तिनापुर नरेश महाराज शान्तनु और गंगापुत्र देवव्रत का चिन्तन करें तो पायेंगे कि वे तो महान संत थे उन्होंने इस कालपी नगरी में योजनानगन्धा (सत्यवती) के घर पर आकर भीषण प्रतिज्ञा करके भीष्म पितामह की पदवी पाई थी। ऐसे स्थल पर भीष्म पितामह सरीखे सन्तों का भीषण प्रतिज्ञा करना स्वयं क्षेत्र को तीर्थत्व प्रदान करता है।

कालपी नित्यतीर्थ, भगवदीय तीर्थ एवं सन्त तीर्थ तीनों ही है। यहाँ पर सभी तीनों तीर्थ अपने अपने प्रभाव से मनुष्य को मनवांछित फल प्रदान करते हैं।

तीर्थों के महत्व के विषय में अथर्ववेद १८/४/७ में कहा गया है –

''तीर्थौ स्तरन्ति प्रवुतो महीरिति यज्ञ कृत: सुकृतो येन यन्ति''

मनुष्य तीर्थों के सहारे भारी से भारी विपत्तियों को तर जाता है। तीर्थों के सेवन से बड़े–बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े–बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले पुण्यात्मार्जन जिस मार्ग में जाते हैं, तीर्थ स्नायी भी उसी मार्ग से स्वर्ग जाते हैं। महाभारत के वन पर्व ८२/१७ में भी बतलाया गया है –

ऋषीणां परमं गुहयमिदं भरत सत्तम।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।

ऋषियों का यह परम गुहय मत है कि दरिद्र व्यक्ति तीर्थ यात्रा से जो फल पाता है, वह अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा भी दूसरों को सुलभ नहीं।

पदमपुराण के सृष्टि खण्ड में भी कहा गया है कि तीर्थों का दर्शन करना, उनमें स्नान करना, वहां जाकर बार–बार डुबकी लगाना ये सब मनवांछित फल प्रदान करने वाले हैं।

शास्त्रानुसार इन तीर्थ स्थानों पर यात्रा करने से जो फल मिलता है वह बहुत बड़ी–बड़ी दक्षिणा वाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से भी प्राप्त नहीं होता है –

अग्निष्टोमादिभिर्य ज्ञैरिष्ट्वा विपुल दक्षिणै:।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।।

कालपी में दूर–दूर से लोग महापातक नाशिनी यमुना में स्नान हेतु, विष्णु अवतारी भगवान वेद व्यास जी के प्रकाटय स्थल पर मस्तक नवाने, धर्मभाव से भ्रमण करने, व संतों के दर्शन हेतु आते हैं। अत: कालपी वह परम पवित्र, पुण्यदायी तीर्थ क्षेत्र है। जहाँ मनुष्य अपने पापों से मुक्ति प्राप्त कर भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बनाता है।

श्री श्याम सुन्दर दास द्वारा सम्पादित हिन्दी शब्द सागर में तीर्थ की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि तीर्थ वह पवित्र या पुण्य स्थान है जहाँ धर्म भाव से लोग यात्रा पूजा या स्नान आदि के लिये आते हैं। इस परिभाषा के अनुसार भी कालपी एक पुण्य तीर्थ है, और अन्त में केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि –

कालप्यां महापुण्यं भुक्ति भुक्ति प्रदायकम्

– संस्थापक व निदेशक,
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई

बुन्देली बसन्त के लानें...

– भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

बुन्देली बसन्त के लानें, गेंदा–फूल सजाये।
अच्छर की देबी चरनन में, गोये–हार चड़ाये।।
टिसुआ डारन–डारन लाल,
झूम रई गोउँ – पिसी की बाल,
सुहानीं रितु बसन्त में लाल, रजउ हमखाँ सुध आई हैं।
चौतरफा बगरो बसन्त, दै रओ दिखाई हैं।।

मन बौरानो फाग राग में, तन बौरानो रंग में।
कसक–कुयालिया की कूकन में, सुख सुगंध के संग में।।
बिछा दये कामदेव नें जाल,
सुहानीं नई समइया साल,
आली भई बसंती हाल, रजउ हमखाँ सुध आई हैं।
चौतरफा बगरो बसन्त, दै रओ दिखाई हैं।।

बाँकी नजर भर हेरौ, जुबन दये बिधना नें।
इन्द्र धनुष के सब रंग लै लये, गोरी अंगधना नें।।
झूमत चलत हन्स की चाल,
रूप बिरछा की नै गई डाल,
गाल पै फागुन मास गुलाल, रजउ हमखाँ सुध आई हैं।
चौतरफा बगरो बसन्त, दैरओ दिखाई है।।

सैंना–कानीं में बतयाबैं, अधर गुलाब अनूठे।
अँगिया सारी सराबोर भई, केश कलिया छूटे।।
बौर पै अमराई है हाल,
कोंप पै निपट कटीली डाल,
नेव सें मन हो रओ निहाल, रजउ हमखाँ सुध आई है।
चौतरफा बगरो बसन्त, दै रओ दिखाई हैं।।

बुन्देली चौकड़िया जैसी, रस की भरत उड़ानें।
गालन गोरी, रंगनबोरी, रजउ बुरओ न मानें।
दूर–दुख सबई भये जंजाल,
नेव भर हेरत करत कमाल,
बनीं बे 'इन्दु' गरे की माल, रजउ सपनें में आई हैं।
चौतरफा बगरो बसन्त, दै रओ दिखाई है।।

– २०, मैथिलीशरण गुप्त मार्ग, महोबा (उ.प्र.)

त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति : लाला हरदौल

- डॉ. के.एल. जैन

बुन्देलखण्ड में ओरछा का महत्व हमेशा से प्रभावकारी रहा है। यहाँ के महाराज सूर्यवंशी रहे हैं। इस पवित्र वंश में पंचम बुन्देला एक नामी राजा हुए जिनका नाम इतिहास में काफी प्रसिद्ध रहा है। उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी के आशीर्वाद से पंचम विन्ध्येला के नाम से सन् १०४८ में इस विशाल राज्य की नींव डाली थी। इस वंश के राजाओं की उपाधियाँ कुछ इस प्रकार से है कि सूर्य कुलावतंश काशीश्वर, पंचम ग्रहनिवार, विन्ध्येल खण्ड, मंडलाधीश्वर, श्री महाराजधिराज श्री ओरछा नरेश। यहाँ के राजा सदैव स्वच्छन्द प्रकृति के रहे हैं। उन्हें अपनी स्वाधीनता के लिये दिल्ली के बादशाहों तथा मराठों तक से युद्ध करना पड़ा है इस वंश के राजा प्रतापी होने के साथ साथ अत्यंत दयालु भी थे। इसी वंश के रुद्रप्रताप सिंह ने एक गाय के प्राण, सिंह से बचाने के लिए अपने प्राणों तक को जोखिम में डालकर गाय के प्राण बचा लिये थे। राजा मधुकर शाह भी इसी वंश के थे, जिनके आश्रयदाता रीतिकाल के प्रथम आचार्य कहे जाने वाले कवि केशवदास जी थे। इसी वंश में महाराजा वीर सिंह जू देव 'प्रथम' के यहाँ हरदौल का जन्म संवत् १६६५ वि. में हुआ था। यद्यपि इतिहास ग्रन्थों में हरदौल की चर्चा नहीं के बराबर है लेकिन हरदौल के सम्बन्ध में जनश्रुतियाँ काफी भरी पड़ी हैं। कतिपय विद्वानों और कवियों ने हरदौल का वास्तविक नाम 'हरदेव सिंह' बतलाया है। जबकि आचार्य केशवदास ने अपने बहुचर्चित ग्रंथ वीर सिंह देव चरित्र में 'पुनि हरदौल बुद्धि गंभीर' लिखा है। इससे हरदौल नाम ही प्रमाणिक प्रतीत होता है। हरदौल ओरछा नरेश वीर सिंह देव के द्वितीय पुत्र थे। उनकी माता का नाम गुमानकुँवरि था। गुमानकुँवरि के चार पुत्र तथा एक पुत्री थी। हरदौल भाईयों में ज्येष्ठ थे। इनके अन्य भाई भगवंत राय, चंद्रभान, और विसुन सिंह थे तथा बहिन का नाम कुंजकुँवरि था।

'हरदौल' अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के होने के कारण १७ वर्ष की अल्पायु में ही शिक्षा, शिकार और शासन चलाने में अत्यंत पारंगत हो गये थे। वीरसिंह देव ने दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के निर्देश पर जुझार सिंह को ओरछा का राज्य पद तथा हरदौल को ओरछा राज का दीवान बना दिया। यद्यपि वीर सिंह देव कुशाग्र बुद्धि और वीरता के कारण 'हरदौल' को ही ज्यादा स्नेह करते थे। लेकिन राज्य पद सौंपने में वे पारंपरिकताओं का निर्वाह करने के लिए विवश थे।

हरदौल की वीरता के सम्बन्ध में एक घटना काफी प्रचलित है। दिल्ली दरबार का एक सिपाही हैदरखाँ तलवार चलाने में अत्यंत निपुण माना जाता था। उसने ओरछा आकर सातार नदी के तट पर अपने तलवार के जौहर दिखाये जिसमें ओरछा राज्य के अनेक तलवार चलाने में माहिर लोग उससे पराजित हो गये। हैदर खाँ ने अपनी शेखी बघारते हुए कहा कि है कोई ओरछा का बुन्देला वीर जो मेरा मुकाबला कर सके। जब यह समाचार दीवान हरदौल ने सुना तो उन्हें काफी क्रोध आया और वे हैदरखाँ को धूल चटाने के लिए स्वयं तैयार हो गये। ओरछा नरेश जुझार सिंह की रानी चम्पावती जो देवर हरदौल से अत्यधिक प्रेम करती थी, उन्होंने राजा जुझार सिंह की वह तलवार जो उन्होंने चम्पावती को उनके अलावा किसी अन्य को न देने के लिए कहा था। ओरछा की आन, बान और शान की रक्षा के लिए दीवान हरदौल को दे दी और कहा "जाओ और हैदरखाँ को सबक सिखाओ कि अपनी वीरता कभी बुन्देलों के सामने मत दिखाना" भौजी का सम्बोधन देकर रानी चम्पावती को माता के समान आदर देने वाले दीवान हरदौल को तलवार देते समय उन्होंने इतना अवश्य कहा "लाला जैसी लये जात हो वैसई लौटाजइयो" हरदौल ने दो घण्टे तक हैदरखाँ से लड़ते हुये उसे छठी का दूध याद दिला दिया। उसे अहसास करा दिया कि बुन्देलों की वीरता को कभी मत ललकारना। हैदरखाँ पराजित होने पर अत्यंत लज्जित हुआ लेकिन रानी चंपावती के हर्ष का पारावार नहीं रहा। इस प्रसन्नता के माहौल में हरदौल रानी चम्पावती के तलवार देना भूल गये और रानी उस तलवार को लेना भूल गयीं।

दीवान हरदौल को अस्त्र–शस्त्रों की तरह प्रकृति से भी काफी प्रेम था, इसीलिए वे राजा राममन्दिर के निकट स्थित फूलबाग में ही ज्यादा समय रहकर जनता के दुःख दर्द और समस्याओं को सुनकर उन्हें दूर करते थे। दीवान हरदौल के प्रति जनता की अभिरुचि को देखकर जुझार सिंह के मन में असंतोष के साथ साथ द्वेषभाव ने भी सिर उठाना प्रारंभ कर दिया। फिर भी भ्रातत्व प्रेम के सामने मन के अन्दर पनप रहे इन कुविचारों ने ज्यादा असर नहीं दिखा पाया। दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के मन में इन बुन्देलों के भ्रातत्व प्रेम को देखकर जलन होने लगी। उसे ऐसा आभास होने लगा कि जब तक इन दोनों भाईयों में फूट नहीं पड़ जाती तब तक बुन्देलखण्ड को अपने अधीन रख पाना असंभव है और इस घृणित कार्य के लिए शाहजहाँ ने प्रसिद्ध षड़यंत्रकारी हिदायतउल्ला खां का चयन किया। हिदायत खाँ ने अपनी कपट रूपी तलवार से इन भाईयों के प्रगाढ़ प्रेम की हत्या करने का षड़यंत्र रच डाला। वह युद्ध से वापिस लौट रहे जुझार सिंह के पास चौरागढ़ के समीप पहुँचा और अपनी वाक्पटुता से जुझार सिंह के मन में शंका का बीजारोपण कर दिया। हिदायत खाँ कहने लगा – महाराज दीवान हरदौल और रानी चम्पावती का राज महल में

अकेला रहना और आपका महल से प्रायः बाहर रहना (मुगल दरबार/मुगल सेना) भ्रम पैदा करता है। हिदायत खाँ के इस कथन से जुझार सिंह की भृकुटि चढ़ गई। वे क्रोध से आग बबूला हो गये। उनके चेहरे के भावों को देखकर हिदायत मन ही मन प्रसन्न हुआ। उसकी कुटिलता का तीर एकदम सही निशाने पर बैठा था। राजा जुझार सिंह के मन में शंका ने विस्तार फैलाना आरंभ कर दिया। अतीत की सारी घटनायें एक एक कर उनके मन में कौंधनें लगी। हरदौल का भौजी के प्रति अगाध प्रेम, भोजन के समय हरदौल को सोने के थाल और हमें चाँदी के थाल में परोसना, वचन देने के बाद भी मेरे द्वारा दी गई तलवार मेरी आज्ञा के बगैर हरदौल को हिदायत खाँ से लड़ने के लिए देना, ब्याह हो जाने के बाद भी भाभी के हाथ से भोजन करना। ये सभी बातें रह रह कर शूल के समान उनके हृदय में चुभने लगीं और इस द्वेषभाव की अग्नि हरदौल के प्राण लेकर ही शांत हुई।

देवर भौजी के विशुद्ध प्रेम को ईर्ष्यालुयों की बलि चढ़ना पड़ा। राजा जुझार सिंह ने रानी चम्पावती के पतिव्रत प्रेम की परीक्षा के लिए लाला हरदौल को विष देने के लिये विवश किया। राजा के अप्रिय वचनों को सुनकर रानी की दशा का वर्णन आलंकारिक शैली में कविवर बोधा ने इस प्रकार से किया है –

ग्रीष्म सी तन में लसें, असुवन में बरसात।
रानी मधुरितु के सदृश, पीरी परी लखात।

रानी चम्पावती की दशा देखकर जुझार सिंह के मन की शंका और दृढ़तर होने लगी। कविवर छैलबिहारी जी ने इसका बड़ा ही सटीक वर्णन किया है। जुझार सिंह कहते हैं –

"यदि सांचौ धर्म पतिव्रत है, तो तोय परीक्षा देनें हैं।
हरदौल लला को विष के भोजन, अपने हाथ जिमैंनें हैं।

रानी चम्पावती के समक्ष धर्मसंकट की विकट स्थिति निर्मित हो गई। एक ओर पतिव्रत धर्म था तो दूसरी ओर देवर के प्रति पुत्रवत प्रेम और वंश का मोह, वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं –

एक ओर है पति की आज्ञा, एक ओर देवर प्यारौ।
पति की कही करौं तो देवर, बिना मौत जावै मारौ।
जो पति की आज्ञा ना पालों, धरम बिगर जावै सारौ।
इतै जाउं तो कुआ उतै पुखरी, कौ दल–दल है भारौ।

रानी चम्पावती ने विषमिश्रित भोजन हरदौल को परोस कर उनकी आंखों में बरबस ही आंसू टप–टप टपकने लगे। उनका हृदय देवर के पवित्र प्रेम से भर उठा। पूछने पर उन्होंने सच्ची बात हरदौल को बता दी –

विष भोजन कौ थार परस दऔ, दोउ दृगन से जल ढारौ।
पूछत है हरदौल रूदन कौ, कारन भौजी उच्चारों।
रानी कहत आज भोजन में, कूट–कूट के विष डारौ।
मोरे पती आपके भ्राता, उनकौ पन पूरौ पारौ।

अब हरदौल के प्रेम की परीक्षा थी। जब उन्होंने अपने भाई की ही आज्ञा द्वारा विषमय भोजन का वृतान्त सुना तो वे अत्यंत हर्षित हुए। उन्होंने अपनी प्रत्युत्पन्नमति से तत्क्षण विचार किया कि अब सच्चे प्रेम की परीक्षा की घड़ी आ चुकी है। मुझे अपने सात्विक प्रेम और माता समान भाभी के पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का परित्याग करना होगा और वे अपनी परीक्षा में एकदम खरे उतरे। बुन्देली की इन पंक्तियों में काव्यत्व का उत्कर्ष दिखाई देता है –

अहौ भाग्य धन्य भुजाई बचन न मैया को टारौ।
बड़े हर्ष की बात भ्रात को होय जगत में उजियारौ।
धरकै ध्यान भोग शंकर कौ लगे लगाउन विषयारौ।
आओ प्रभु खाओ नई–खाऔ करने परहै निनवारौ।

दीवान हरदौल ने बुन्देलखण्ड की आन, बान और संस्कृति की शान की रक्षा के लिए प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। दीवान हरदौल की मृत्यु के प्रश्चात अनेक विलक्षण घटनाएँ घटीं जिनके कारण बुन्देलखण्ड में हरदौल लोक देवता के रूप में पूजे जाने लगे। इन घटनाओं का गहराई से अध्ययन करने के उपरांत दो घटनाएं ही महत्वपूर्ण जान पड़ती है। एक तो देवर भाभी के उदात्त प्रेम को बहुत ऊँचाई पर ले जाने के लिए हरदौल का प्राणोंत्सर्ग तथा दूसरा हरदौल की बहिन कुंजकुँवरि की पुत्री के विवाह में सहायक होने का प्रसंग। लोक प्रचलित मान्यता के अनुसार कुंजकुँवरि अपनी पुत्री के विवाह का निमंत्रण देने ओरछा आई थी लेकिन राजा जुझार सिंह को हत्यारा मानकर उन्हें उन्होंने निमंत्रण नहीं दिया था। बहिन कुंजा ने हरदौल के लिए निमंत्रण उस स्थान पर रखा था जहाँ पर उनकी दाह क्रिया की गई थी। कहा जाता है कि निश्चित समय पर सोने चाँदी के आभूषण, मोहरें और अन्य कीमती सामग्री से लदे घोड़ों, गाड़ियों के साथ हरदौल की सवारी दतिया पहुँची थी। कुंजा का घर अपने आप जगमगा उठा था। बहिन और भाई की इस प्रेमभरी भेंट तथा वर के आग्रह पर हरदौल का दर्शन देना अपने आप में चमत्कार पूर्ण प्रतीत होता है। यही कारण है कि प्रत्येक परिवार विवाह के पूर्व हरदौल के चबूतरे पर निमंत्रण रखता है और फिर उनकी पूजा करता है। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक ग्राम और नगर में उनकी स्मृति में चबूतरा बना हुआ है इस हरदौल के चबूतरे पर नर–नारी संकटकालीन अवस्था से मुक्त होने एवं विवाह आदि के मांगलिक कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होने के लिए प्रसाद चढ़ाकर माथा टेकते हैं। हरदौल के लोकगीत आज भी जनमानस में गूंजते हैं। तीन सौ वर्षों के अंतराल के पश्चात् हरदौल आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। यद्यपि हरदौल ने न तो कोई धर्म चलाया और न ही कोई ग्रंथ लिखा लेकिन उनके सात्विक प्रेम के बलिदान ने उन्हें देवत्व प्रदान किया। लाला हरदौल आज बुन्देलखण्ड के जन जन के आकर्षण के केन्द्र हैं, उनका आदर और सम्मान आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

– नूतन विहार कालोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड की शिक्षाप्रद जनश्रुतियां

- हरगोविन्द तिवारी

समृद्धशाली बुन्देलखण्ड में यत्र–तत्र–सर्वत्र लोक साहित्य बिखरा हुआ है और यदाकदा लोगों की जुबान से प्रस्फुटित होता रहता है जिसमें लोकोपयोगी अनेकानेक जनश्रुतियां भी सम्मिलित हैं। प्रस्तुत है यहां बुन्देलखण्ड की शिक्षाप्रद जनश्रुतियाँ –

नारी नर कौ नूर है, नारी जग कौ मान।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव–प्रहलाद समान।।

भावार्थ यह कि स्त्री मनुष्य की आभा है वह पूरे मानव जगत् में सम्मान की पात्र है उसने यशकीर्ति और ईश्वर को पाने वाले ध्रुव–प्रहलाद जैसे महान पुरुषों को जन्म दिया।

नारी जनमें दो जनें कै दाता कै सूर।
नई तो फिर बांझहि भली, वृथा गमावे नूर।।

भावार्थ यह कि स्त्री अच्छी संतान को जन्म दे अन्यथा उसे अपनी आभा खोना व्यर्थ है। फिर तो बिना संतान वाली बांझ स्त्री ही अच्छी।

विप्र वैद नाऊ नृपति, स्वान सौत मजार।
जहं–जहं जे जुरति हैं, तहं–तहं करत बिगार।।

भावार्थ यह कि जहां लोगों के बीच ब्राह्मण, वैद्य, नाई, राजा, कुत्ता और सौतेली पत्नी हो वहां बिगाड़ ही होगा।

पंडित वैद मसालची, इनकी उल्टी रीत।
औरन गैल बताय कैं, आपुन कूदें भीत।।

भावार्थ यह कि दूसरों को मार्गदर्शन देने वाले पंडित, वैद्य और मसालची जैसे लोग ही स्वेच्छाचारी होते हैं वे दूसरों को बताये हुये मार्ग पर स्वयं नहीं चलते।

राम भजन को टेढ़े–मेढ़े, जे आल्हा को अन्यारे
कऊँ सुन पावें फाग–दिवारी, खोद खायें गलियारे।

भावार्थ यह कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कि अच्छा काम करने से कतराते हैं और बुरे कामों के लिए सदैव तत्पर खड़े रहते हैं।

कांटौ खलै करील कौ, उर बदरौरा घाम।
लरका सालै सौत को, उर सांजे कौ काम।।

भावार्थ यह कि करील का कांटा, सौतेला पुत्र, बादलों से युक्त सूर्य की धूप और साझेदारी का काम कष्टदायी रहता है।

नव घृत मित्र पुरानों, उर कुलवन्ती नार।
जे तीनों तब पाइये, जब प्रसन्न करतार।

भावार्थ यह कि ताजा देशी शुद्ध घी, पुराना दोस्त और कुलीन स्त्री ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त हो सकते हैं।

बैरी कौ मत मानबौ, उर तिरिया की सीख।
कुवांर करै हर जोतीन, जे तीनऊँ मागें भीख।

भावार्थ यह कि शत्रु एवं स्त्री की बात मानने वाले तथा कुआंर माह में कृषि करने वाले व्यक्ति को इतना नुकसान होगा कि उसे लोगों के सामने गिड़गिड़ाना पड़ेगा।

भीख दायजा नाठ धन, चोरी जुआ अगात।
इतने धन खौं पर हरौ जे नाहीं ठहरात।

भावार्थ यह कि भिक्षा, दहेज, चोरी, जुआ, बिना श्रम के कमाया हुआ और नाठ का धन किसी से हथिया लेने पर ठहरता नहीं है।

ऐंतबार फटै सोमवार बरै, उर मंगल हानि होय
नये कपड़ा पैरौ तीन वार, बुद्ध, बृहस्पत, शुक्रवार
नाव न लीजै शनिवार, तो जीवन में सुख होय।

भावार्थ यह कि बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को नया वस्त्र धारण करने से जीवन में सुख समृद्धि व शांति रहती है। अन्यथा बहुत नुकसान उठाना पड़ता है।

नर नारी मोती तुरी, कूप कुवांर तरवार।
जे सातों ब्रजराज जू, बिन पानी हैं ख्वार।

भावार्थ यह कि पुरुष, स्त्री, मोती, अश्व, कुआ, तलवार और कुंवार का महिना अपनी अहमियत के बिना खोखले रहते हैं।

छींकत खइये छींकत परिये,
छींकतन पर घर न जइये।

भावार्थ यह कि छींक आने पर घर से बाहर नहीं जाना चाहिये मगर भोजन और विश्राम तत्काल करना चाहिये।

काजर की कोठरी में, जाय सियानें सें सियानौहि
पर एक लीक काजर की, लागि है पै लागिहि।

भावार्थ यह कि बुरे स्थान पर जाने से सज्जन पुरुष में भी बुराई आ जाती है।

दाता सूर सुजान नर, ज्ञानी गुनी प्रवीन।
पंडित कवि उर बौहरी, जे नौं आगे कीन।

भावार्थ यह कि दानवीर, सूरवीर, ज्ञानवान, गुणवान, चतुर, पंडित, कवि, साहूकार और जानकार सज्जन पुरुष को हमेशा अपने आगे रखना चाहिये।

निन्ने पानी जे पिये, हर्र भूंज कैं खाय।
दूदन ब्यारी जे करै, तिन घर वैद न जाय।

भावार्थ यह कि सुबह उठकर खाली पेट पानी पीना, हर्र भूंजकर खाना और दूध के साथ रात्रि भोजन करना लाभदायी होता है ऐसा करने वाले लोग हमेशा स्वस्थ रहते हैं उन्हें कभी वैद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बन्दर जोगी अगिन जल, सूजी सुआ सुनार।

जे दस होयें न आपने कूटी कटक कलार।

भावार्थ यह कि बंदर, योगी, अग्नि, पानी, सुई, तोता, सोनी, कुट्टिनी, गृह और कलार अविश्वसनीय होते हैं।

बस्ती बैद तपसुरी, प्रोहित तन्दुल पान
जे नौं नए न चाहिये, तेल दिवान कृपान।

भावार्थ यह कि बस्ती, वैद्य, तपस्वी, पुरोहित, चावल, पान, तेल, मंत्री और तलवार नवीन नहीं होना चाहिये।

सोम गुरु शुक्रवार, पूस अमाउस होय
घर–घर बजें बधईयां, दुखी न दीखै कोय।

भावार्थ यह कि सोमवार, गुरुवार और शुक्रवार के दिन पूष माह की अमावस्या हो तो यह निश्चित है कि घर–घर में खुशहाली होगी।

चना खुटे खुट जान दे, भाग न खोटौ होय।
खुटत चना दिन–दिन बढ़े, भर है मन की खोय।।

भावार्थ यह कि लोगों के पास जो भी धन–संपदा है उसमें से थोड़ा–थोड़ा दान करता रहे तो उसे नुकसान नहीं बल्कि लाभ ही होगा।

जरयाने उर कांस में, खेति करौ जिन कोय।
बैला दोऊ बेंच कैं, करौ नौकरी सोय।।

भावार्थ यह कि झाड़–झंकड़ों से युक्त ऊबड़–खाबड़ बंजर भूमि में खेती करने से कोई लाभ नहीं होता इससे तो अच्छा है कि वह खेती न कर नौकरी करे और आराम से जीवन व्यतीत करे।

कस्तूरी कदली तुरी, कपड़ा कनक कमान
जे सब नवतम चाहिये, काम धाम उर बाम।

भावार्थ यह कि कस्तूरी, केला, अश्व, कपड़ा, आटा, धनुष, कार्य, घर और स्त्री नवीनतम ही अच्छे होते हैं।

मघा न बरसै भरै न खेत, माई न परसै भरै न पेट।

भावार्थ यह कि जब तक मघा नक्षत्र में पानी न गिरे तब तक खेतों की प्यास नहीं बुझती और जब तक माँ दूध न पिलाये तब तक संतान की भूख नहीं मिटती।

सेत बरसें खेत भर, पारे भर बरसें कारे।
लाल बरसें ताल भर, जब उठें धुआंधारे
जे बरसें सबत्तर, आवें नदियां–नारे।

भावार्थ यह कि सफेद रंग के बादलों से वर्षा होने पर खेतों को पर्याप्त पानी मिलता है, काले रंग के बादलों से पानी बहुत कम बरसता है, लाल रंग के बादलों से पानी इतना बरसता है कि तालाब भर जाते हैं और जब धुंआंधारे बादल बरसते हैं तो सभी जगह नदी–नालों में बाढ़ आ जाती है।

चन्दा निकरै बादर फोर, असाढ़ मास अंधियारी
तीन मास कौ वर्षा जोर, सबत्तर रये जलधारी।

भावार्थ यह कि आषाढ़ माह में जब आसमान में बादल छायें हों तब रात्रि में अंधकार में बादलों के बीच यदि चंद्रमा दिखाई देवे तो यह निश्चित है कि तीन माह तक सभी जगह अच्छी वर्षा होगी।

शुक्रवार की बादरी, रये शनीचर छाय।
तो मानों कै जे कबऊ, बिन बरसें नई जाय।

भावार्थ यह कि यदि शुक्रवार के दिन आसमान में बादल मंडराना शुरू हो और वे शनिवार के दिन भी मंडराते रहें तो यह निश्चित है कि वे वर्षा जरूर करेंगे।

तीतुर वारी बादरी, बिधवा काजर रेख
बौ बरसै बौ घर करै, जामें मीन न मेख।

भावार्थ यह कि यदि आसमान में तीतुर के रंग के बादल हों तो वे वर्षा निश्चित करते हैं और यदि कोई विधवा स्त्री श्रृंगार करे तो वह अपना जीवन साथी चुनकर दूसरा घर अवश्य बसाती है।

जांके जैसे नदियां–नारे, तांके तैसे भरका।
उर जांके जैसे बाप–मताई, तांके तैसे लरका।

भावार्थ यह कि जहां के जैसे नदी नाले होते हैं वहां के वैसे ही उनके ठहरने के स्थान भी होते हैं और जहां जैसे माता–पिता हों वहां वैसे ही उनकी संतान भी होती है।

चैतै गुर बैसाखै तेल, जेठै मौआ असाढ़ै बेल।
सावन दूद भादौं दइ, कुवाँर करेला कातिक मइ।।
अगनें जीरे पूसे चना, माऔ मिसरी फागुन धना।
मानें नई जो खाये बिना, बचै नई बो मरे बिना।।

भावार्थ यह कि माह चैत में गुड़, वैसाख में तेल, जेठ में महुआ, आषाढ़ में बेल, सावन में दूध, भादों में दही, कुआंर में करेला, कार्तिक में मही, अगहन में जीरे, पूस में चना, माघ में मिसरी, फागुन में धना लगातार सेवन करने वाला व्यक्ति बीमार होकर मर भी सकता है।

सावन ब्यारी जब कऊँ कीजै, भादों ब्यारी नाव न लीजै
कुवांर मास के दोऊ पाख, सोऊ ब्यारी थोरी राख।
कातिक मास दिवारी होय, फिर ठेलम–ठेल ब्यारी होय।
ब्यारी कबऊँ न छोड़िये, ब्यारी छोड़ै बल जाय
जो ब्यारी अवगुन करै, तो दुपरै थोरी खाय।

भावार्थ यह कि अजीर्ण और बीमार होने से बचने के लिये सावन के महिने में रात्रि भोजन यदाकदा ही करना चाहिये तथा भादों के महिने में रात्रि भोजन कतई नहीं करना चाहिये और कुआंर के महिना में भी रात्रि भोजन कम से कम करना चाहिये। लेकिन कार्तिक माह के आते ही और दीपावली के होते ही रात्रि भोजन भरपेट किया जाना चाहिए। फिर रात्रि भोजन कभी नहीं छोड़ना चाहिये रात्रि को भोजन न करने से शक्ति क्षीण होती है। अगर रात्रि भोजन नुकसान करता है तो दोपहर के समय भोजन कम करना चाहिये ताकि रात्रि भोजन ठीक से किया जा सके।

— संचालक, तिवारी टाईपिंग इंस्टीट्यूट,
शाहगढ़ (जिला सागर) म.प्र.

मित्र मिश्र : एक परिचय

- पं. कृष्ण किशोर द्विवेदी

अस्ति प्रशस्त चरितो भुवि मित्र मिश्रः।
शाण्डिल्यगोत्र कलशाम्बुधि लब्धजन्मा॥
पुंसः परस्य हृदयगम कौस्तुभोसौ।
सर्वासु दिक्षु विवतोर्जितकीर्तिराशिः॥ धर्म्मय्य दीक्षित

सत्रहवीं शताब्दी का आरम्भिक भाग भारतीय साहित्य और कला के क्षेत्र में नवीनता और प्रचुरता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। मुगलों के समृद्ध और अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण शासन काल में भारतीय मनीषा ने ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है। न केवल नव विकासोन्मुख देशी भाषाओं के साहित्य में, अपितु शताब्दियों से अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान, तथापि इस काल में ह्रासोन्मुखी संस्कृत साहित्य की क्षीण धारा में भी इस काल में एक पूर आया जान पड़ता है। व्याकरण, साहित्य, न्याय, धर्मशास्त्र आदि प्रायः सभी प्रमुख विषयों में गंभीर ग्रंथों की रचना इस काल में हुई। यद्यपि इस काल की रचनाओं में मौलिक चिंतन एवं परंपरा मुक्त स्वतंत्र विचारणा का अभाव दिखाई देता है, पर प्राचीन विचारों, सिद्धान्तों एवं मतों का विवेचन, सूक्ष्म वर्गीकरण, पल्लवन एवं संगमन का विराट् प्रयत्न साहित्य में सर्वत्र दिखाई देता है। ऐसे ही महान् ग्रन्थों में 'वीर मित्रोदय' नामक विशाल प्रबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रंथ का विशाल आकार, विषयों का वैविध्य एवं संकलन क्षेत्र का विस्तार आज भी विद्वानों को आश्चर्य से अभिभूत कर देता है। इसी ग्रंथ के प्रणेता पंडित मित्र मिश्र का परिचय नीचे की पंक्तियों में देने का प्रयत्न किया गया है।

पंडित प्रवर मित्र मिश्र ने अपने गुणज्ञ आश्रयदाता ओरछाधिपति श्री वीरसिंह देव (प्रथम) के परिचय के साथ अपने अभिजन वंश आदि का भी विस्तृत परिचय अपने ग्रंथों में दिया है। उसके अनुसार वे गोपांचल ग्वालियर के मूल निवासी थे। सनाढ्य ब्राह्मणों के दूरवार कुल में उनका जन्म हुआ था। पितामह का नाम हंस पंडित था। वे श्रीकृष्ण भगवान् के परम भक्त और वेदोक्त धर्म के अनुष्ठाता थे। उनके पुत्र परशुराम हुए। इन्होंने काशी के वैदिक एवं स्मार्त कर्मकाण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् चण्डीश्वर के विद्याध्ययन किया था। यद्यपि मित्र मिश्र ने अपने गोत्र का उल्लेख अपने ग्रंथों में नहीं किया है तथापि उनके समकालीन और कदाचित् आश्रित पं. धर्म्मय्य दीक्षित ने उन्हें शाण्डिल्य गोत्रीय कहा है। 'आनन्द कन्द चम्पू' नामक अपने काव्य ग्रंथ में मित्र मिश्र ने वीरेश्वर तथा चक्रपाणि नामक अपने अग्रजों एवं योगादित्य नामक अनुज का भी उल्लेख किया है।

संभवतः मित्र मिश्र के पिता परशुराम ही ग्वालियर से ओरछा आए हों। वे मीमांसा शास्त्र के प्रख्यात पण्डित और वैदिक यज्ञयागादि और लौकिक कर्मकाण्ड के कुशल अनुष्ठाता थे। ऐसे पंडितों को राज्याश्रय सुगमतया प्राप्त था। ऐसा जान पड़ता है कि मित्र मिश्र ने अपने पिता से ही विद्याध्ययन किया था और जीवन के प्रारम्भ से ही उन्हें ओरछेश का उदार आश्रय मिला और वे ओरछा के स्थायी निवासी बन गये। उनके समकालीन ओरछेश श्री वीरसिंह देव प्रथम बुन्देल वंश के सर्वाधिक प्रभावशाली एवं वीरनरेश हुए हैं। वे प्रख्यात दानी एवं अनेकों भव्य मंदिरों एवं दुर्गों के निर्माता थे। उनके शासनकाल में बुन्देलखण्ड का सीमा विस्तार सबसे अधिक था। उनका मथुरा का तुलादान तो प्रसिद्ध ही है, साथ ही उन्होंने वहीं पर तैंतीस लाख रुपयों के व्यय से मित्र मिश्र की ही देखरेख में केशव भगवान का मंदिर बनवाया था। मित्र मिश्र ने अपने 'आनन्द कन्द चम्पू' नामक ग्रंथ में उक्त मंदिर का अत्यंत भव्य, समृद्ध कला का निदर्शन किया है। कहते हैं यह सम्राट औरंगजेब के धर्मोन्माद का निशाना बना। सन् १६६१ में इस मंदिर को ध्वस्त करके उसके स्थान पर जुम्मा मस्जिद बनवा दी गई। विनाश की इस कहानी को आज भी उक्त मस्जिद का फारसी शिलालेख दर्शक को बताता है।

श्री वीरसिंह देव का शासन काल इतिहास के विद्वानों ने सन् १६०५–२७ ई. माना है। मित्र मिश्र की रचनाओं से प्रतीत होता है कि वे श्री वीरसिंह देव के बाद भी वर्तमान रहे और ग्रंथ रचना करते रहे। वीर मित्रोदय के परिभाषा प्रकाश में उन्होंने महाराज जुझार सिंह का विस्तृत वर्णन किया है। (ग्रंथ के सम्पादक म.प्र. नित्यानंद पर्वतीय संभवतः जुझार शब्द से अपरिचित रहे और उन्होंने उसे 'जुकार' रूप में पढ़ा) महाराज जुझार सिंह वीरसिंह देव के ज्येष्ठ रानी अमृत कुमारी के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उनका शासनकाल १६२७–३४ ई. है। ग्रंथकार ने उनकी दो पीढ़ियों—पुत्र विक्रमादित्य एवं पौत्र नरसिंह देव का उल्लेख वीर मित्रोदय में किया है। स्टेट गजेटियर के उल्लेख के अनुसार महाराजा जुझार सिंह और उनके युवराज विक्रमादित्य मुगल सेनाओं से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए और उन दोनों के मस्तक काटकर मुगल सेनापति द्वारा कालपी में मुगल सम्राट को भेंट किये गए थे। इसी से महाराजा जुझार सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में उनके सहोदर पहाड़ सिंह का नाम गजेटियर में आता है, परन्तु उनका शासनकाल सन् १६४१–५३ बताया गया है। महाराज जुझार सिंह और महाराज पहाड़सिंह के शासनकाल के बीच के वर्ष के समय का कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। संभवतः इस काल में महाराज जुझार सिंह के अल्पवयस्क पौत्र नरसिंहदेव

का नाममात्र को अधिकार रहा हो, और उत्तराधिकार का मामला विवादास्पद रहा हो।

जो हो पर उपर्युक्त विवरण से इतना निश्चित है कि मित्र मिश्र ओरछा में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से मध्य तक वर्तमान रहे।

मित्र मिश्र अनेक विषयों के उद्भद पंडित और महान् ग्रंथकार थे। उनके नाम से निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख मिलता है।

१. वीर मित्रोदय (धर्म शास्त्रीय महा निबंध)
२. आनन्द कन्द चम्पू (श्री कृष्ण चरित पर आधारित)
३. याज्ञवल्क्य स्मृति की वीर मित्रोदय नामक व्याख्या
४. वीर मित्रोदय (गणित विषयक, खण्डित, अप्रकाशित)

उक्त ग्रंथों के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि ३ और ४ संख्या वाली पुस्तकें मित्र मिश्र की कृति नहीं है। उक्त कृतियों के रचयिता उनके आश्रित पंडित रहे होंगे और मित्र मिश्र के प्रभाव के कारण उन दोनों ने अपनी कृतियों का नाम वीर मित्रोदय किया होगा।

तीन संख्या वाली पुस्तक के रचयिता तीरभुक्ति (तिरहुत) निवासी सदानंद ने अपनी कृति के प्रारंभ में लिखा है कि यह रचना उन्होंने मित्र मिश्र की आज्ञा से की थी।

उत्तंसस्तीरभुक्तेरखिल बुध गुरुः श्रीसदानंद धीमान्।
श्रीभाजो मित्र मिश्राज् जगदुपकृतये विभ्रदादेश दीपम्।
ज्ञानानां दैन्य दोषा यह मकलिभयं याज्ञवल्कयोक्ति कोशात्।
दृष्ट्वा स्मृत्यर्थ सारं समचिनुत यशोधर्म लक्ष्मी विहारम्।

इसी प्रकार चार संख्या वाले ग्रंथ के रचयिता रामदैवज्ञ नामक ज्योतिर्विद् थे। इन्होंने वीर मित्रोदय (महानिबंध) के संस्कार प्रकाश नामक भाग की भी रचना की थी। चार संख्या वाली पुस्तक अभी तक अप्रकाशित है अतः रचनाकार के संबंध में विवरण उपलब्ध नहीं है।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि मित्र मिश्र स्वयं विद्वान् ग्रंथकार होकर भी अन्य अपने आश्रित विद्वानों को ग्रंथरचना के लिए सत्प्रेरणा देते थे। दरबारी मुख्य पंडितों में ऐसी प्रवृत्ति विरल ही पाई जाती है। अनेक विद्वानों ने उनसे ग्रंथ रचना के लिए प्रोत्साहन पाया। ऊपर के दोनों उदाहरणों के अतिरिक्त एक और उदाहरण की जानकारी मिलती है।

कमसमपुंगव दीक्षित के 'अद्वैतविद्या तिलक' की दर्पण नामक व्याख्या धर्मय्य दीक्षित ने लिखी है। उन्होंने इस ग्रंथ प्रणयन में मित्र मिश्र की प्रेरणा को सवीकार किया।

अद्वैत विद्यातिलकाभिधाना शम्भौः स्तुति सामरपुंगवीया।
तनोति टीकां बुध मित्र मिश्र सम्प्रेरितौ धर्म्मय दीक्षितोश्चाः॥

संख्या एक तथा दो पण्डितवर मित्र मिश्र की कृतियाँ हैं। इनमें 'वीर मित्रोदय' नामक महानिबंध अत्यंत विशाल और पांडित्यपूर्ण रचना है। यह निबंध सहस्त्रशः ग्रंथों के अध्ययन एवं मनन की जीवन व्यापिनी तपस्या का फल है। इसकी विविधता और विशालता को देखकर लगता है कि सचमुच यह फल, साधना के अनुरूप ही हुआ है। ग्रंथकार की बहुज्ञता और अध्यवसाय प्रत्येक पृष्ठ पर बिखरा हुआ है। इस ग्रंथ की श्लोक संख्या दो लाख है। महाभारत से लगभग दुगुनी। इस ग्रंथ के प्रकाश नामक बाइस (२२) खण्डों के नामों से विवेच्य विषयों के विस्तार का पता चल सकेगा।

१. परिभाषा प्रकाश, २. संस्कार प्रकाश, ३. आह्निक प्र., ४. पूजा प्रकाश, ५. प्रतिष्ठा प्रकाश, ६. राजधर्म प्रकाश, ७. व्यवहार प्रकाश, ८. शुद्धि प्रकाश, ९. श्राद्ध प्रकाश, १०. तीर्थ प्रकाश, ११. वान प्रकाश, १२. व्रत प्रकाश, १३ समय प्रकाश, १४. ज्योतिष प्रकाश, १५. शान्ति प्रकाश, १६. कर्मविपाक प्रकाश, १७. चिकित्सा प्रकाश, १८. प्रायश्चित प्रकाश, १९. प्रकीर्णक प्रकाश, २०. लक्षण प्रकाश, २१. भक्ति प्रकाश, २२. मोक्ष प्रकाश।

महान हिन्दू संस्कृति द्वारा मानव जीवन के उद्देश्य के रूप में स्वीकृत चतुर्विध पुरुषार्थों–धर्म अर्थ, काम और मोक्ष का प्रामाणिक एवं सर्वांगीण विवेचन इन परिच्छेदों में है।

इस ग्रंथ के केवल ८ ही प्रकाश पूर्ण रूप में प्रकाशित हुए हैं। शेष दो तिहाई भाग अप्रकाशित ही पड़ा है। प्रकाशित अंश के लिए हमें उसके प्रकाशक चौखम्भा विद्या भवन का आभार मानना चाहिए। इस ग्रंथ का संपूर्ण प्रकाशन और अध्ययन आवश्यक है। संदर्भ ग्रंथ होने के कारण यह अनेक खोये हुए सूत्रों के सन्धान में हमारा सहायक होगा। साथ ही इसके अध्ययन से हम प्रामाणिकता के साथ यह विस्तार से जान सकेंगे कि एक विजातीय संस्कृति के साथ इस समन्वित हिन्दू संस्कृति का संघटन किस प्रकार हो रहा था और इसमें रक्षण शीलता की मात्रा किस प्रकार निरंतर बढ़ती हुई चरमसीमा को छू रही थी। आधुनिक हिन्दू विधि के विशेषज्ञों ने व्यवहार के क्षेत्र में और मित्रोदय की उपादेयता और महत्व स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। बुन्देलखण्ड का यह श्रेष्ठ ग्रंथ–रत्न–धूलि–धूसरित पड़ा रहे, यह हम सबके लिए लज्जा की बात है।

'आनन्द कन्द चम्पू' इनका दूसरा ग्रंथ है। यह मित्र मिश्र के व्यक्तित्व के अपरपक्ष–उनकी सहृदयता को उजागर करता है। वे केवल दुर्धर्ष विचारक एवं शुष्क शास्त्रार्थरत पुस्तक–पंडित ही नहीं, रसिक कवि एवं भावुक भक्त थे। गद्य–पद्य मय इस काव्य में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (अध्याय १ से ६९ तक) की कथा के आधार पर 'आनन्द कन्द' श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

मित्र मिश्र की एक मात्र काव्य कृति होने के कारण हमारे लिए इसका महत्व तो है ही इसके अतिरिक्त यह उस काल के हसोन्मुख संस्कृत साहित्य की अतिशत अलंकृत एवं

चमत्कार–प्रधान शैली का अच्छा निदर्शन भी है।

इसमें कवि ने वैष्णव संप्रदाय की दृष्टि से श्रीकृष्ण का चरित्र का वर्णन किया है। इसमें आठ उल्लास है। अंतिम उल्लास में कवि ने अपने आश्रयदाता महाराज वीरसिंह देव तथा उनकी राजधानी ओरछा का अत्यंत विषद, उदात्त एवं चमत्कार पूर्ण वर्णन किया है। मथुरा के केशव मंदिर का वर्णन भी इसी प्रसंग में है। श्री वीरसिंह देव के तुलादान के विषय में एक पद्य में कवि कहता है इसकी तुला (समता) करने वाला न हुआ और न होगा यह सोचकर उसने अपनी तुला (समानता तथा तुलादान) की।

तुलयिष्यति यत् कदाचिदेनं न स भूतो न च वा भविष्यतीति।
वसुधाधिय सिंहवीरसिंहः स्वयमेव स्वतुलां व्यधत्तभूयः।।

'आनन्द कन्द चम्पू' की शैली गौड़ी रीति से युक्त और अत्यन्त ओजस्विनी है। ग्रंथ के अंत में इसका रचना काल १६१८ वि. दिया हुआ है। अर्थात् यह श्री वीरसिंह देव (१६०५–२७) के बाद जुझार सिंह के शासनकाल में सन् १६३२ में पूर्ण हुआ। संभवतः मथुरा में केशव मंदिर के निर्माण के प्रसंग में मित्र मिश्र के लम्बे प्रवास काल में ही इसकी रचना हुई हो।

यह ग्रंथ गवर्नमेंट संस्कृत लायब्रेरी बनारस से सरस्वती भवन टैक्स्ट सीरीज में प्रकाशित हुआ है। भूमिका में सम्पादक द्वारा दी गई सूचना के अनुसार इस ग्रंथ की तीन पाण्डुलिपियों का पता लगा है, जिनमें से दो तो अप्राप्य हैं और तीसरी, जिस पर से यह संस्करण प्रकाशित हुआ है, अत्यंत अशुद्ध एवं भ्रामक है। इससे प्रयत्न करने पर भी यह संस्करण पूर्ण शुद्ध न हो सका। शोध प्रेमियों को इसकी अन्य पाण्डुलिपियाँ बुन्देलखण्ड में खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। इस क्षेत्र में रची हुई कृतियाँ यहीं कहीं न कहीं अवश्य मिलनी चाहिए।

वास्तव में मित्र मिश्र अपने समय के सर्वश्रेष्ठ भारतीय विद्वानों में से अन्यतम थे। बुन्देलखण्ड को, विशेष रूप से ओरछा को, उनके निवास स्थान होने का गौरव है। ऐसे महान् विद्वान और ऐसे गुणज्ञ आश्रयदाता का यह संयोग सचमुच मणिकांचन योग है। मैथिल पंडित सदानंद ने श्री वीरसिंह देव के मुख्य राजपंडित मित्र मिश्र के महान् व्यक्तित्व के विषय में ठीक ही कहा है – ''इस (राजा) के द्वार पर तम (अज्ञान, अंधकार) को दूर करते हुए मित्र मिश्र सूर्य के समान चमकते हैं। वे (मित्र मिश्र), वाणी, रूपी लता के आरोह हैं, श्रेष्ठ उपकार के आश्रय हैं, धर्मरूपी वृक्षों के उद्यान हैं, पवित्र कीर्ति के समृद्धि स्थल हैं, लक्ष्मी रूपी हिरनी को बांधने के पाश हैं, वे विप्रता के अवतार और तेजस्विता की निधि है। वे सभी विद्याओं के निर्दोष ज्ञाता है।''

आरोहो गीर्लतायाः सदुपकृति पदं, धर्मभूमीरुहाणाम्
उद्यानं शुद्ध कीर्ते रूपचयभवनं, श्रीमृगी वागुरैव।
आकारो विप्रतायाः निधिरपि महसः सर्वविद्यानवद्यो
यद्द्वारि द्योतते श्रीद्युमणिरिव तमो मूर्छयन् मित्र मिश्रः।

– बड़ापुल, टीकमगढ़ (म०प्र०)

कैसैं काटौं जौ जड़ कारौ ?

– शंकर दयाल खरे 'शंकर'

कैसैं काटौं जौ जड़कारौ, कमरा फटो हमारौ?
आँगन–मड़ा हमाऐं नैंयाँ, कौंसैं आओ उसारौ?
बनी खेत की मैंड़ मड़ैया, बइ में करत गुजारौ।
कैसैं काटौं जौ जड़कारौ?

लेतइँ जनम गरीबी पाई, रकत–पसीना गारो।
साके कछू करे ना हमनें, अपनइँ मन खाँ मारो।।
सोसइँ–सोसँन कड़ी जिन्दगी, नैंयाँ कोउ हमारौ।
कैसैं काटौं जौ जड़कारौ?

दिन भर हमनें हरिया हाँके, रात नींद ना आई।
मौड़ी दिन–दिन स्यानी हो रइ, कैसैं करौं सगाई?
दिन नइँ चैंन रात नइँ निंदिया, जगत होत भुनसारौ।
कैसैं काटौं जौ जड़कारौ?

गुर खैबे खाँ लला रए सब, को पूँछत गुरयाई?
कमरा एक फटो सब ओड़त, काँसैं आई रजाई?
घरबारी की धुतियाँ फट गइ, मौंड़ा फिरत उगारौ।
कैसैं काटौं जौ जड़कारौ?

कालौं अपनी किसमत कोसौं, कीखौं दइये गारीं?
कीसैं–काँलौ–कैसैं कइये, का–का है लाचारी?
लाज़न खुदइँ भरत हौं अपनी, काँलौ जाँग उगारौं?
कैसैं काटौं जो जड़कारौ?

बिपदा कटहै राम–आसरैं, सुमरौ राम गुसैंयाँ।
बेई सुक की घरी लिआँ हैं, सीता जू के सैंया।।
आसा सैं आकास टँगो है, दैं हैं राम सहारौ।
कैसैं काटौं जौ जड़कारौ?

– दूल्हाबाबा मार्ग, नौगाँव (छतरपुर) म.प्र.

होरी के रंग

– डॉ. प्रेमलता नीलम

रंगा डार मोय रंग डारी, अब हेरत, टेरत गिरधारी।
तार तार सारी कर डारी, कर दई निपट उघारी।।
मुरझा गई टुइयाँ सी मुइयाँ, तानें देवें ललिता प्यारी।
ठगी सी नीलम हेरत रै गई, नाचैं सखियाँ दै दै तारी।।
अब की होरी बचकें रइयो, जब आहे मोरी बारी।
रस बारे नीके दोउ नैना, ए री देखत सुध बुध हारी।।

– लॉ कॉलेज के पास, दमोह

ओरछा राज्य की रामोपासिका रानियाँ

- उदय शंकर दुबे

ओरछा राज्य की स्थापना का श्रेय बुंदेल राजा रुद्र प्रताप को है। उन्होंने संवत् १५८८ वि. में सन् १५३१ ई., ओरछा को अपनी राजधानी बनाया। यह स्थान सामरिक दृष्टि से बहुत सुरक्षित था। एक बेतवा नदी की धारा तथा तीन ओर से यह घनघोर जंगलों से घिरा हुआ था। इसी कारण इसे तुंगारण्य कहा जाता था। रुद्र प्रताप ने वैशाख सुदी तीज संवत् १५८८ वि. को ओरछा में नींव रखी –

भानु तीज वैसाख सुद वसु वसु तरु ससि साल।
नगर ओउछौ नागरौ रुद्र प्रताप नृपाल।।

(विजय ब्रज विलास, छंद २२)

उस समय ओरछा धन–धान्य से सम्पन्न नगर था। सभी वर्ण के लोग निवास करते थे। तुंग देव (तुंगेश्वर महादेव) का मंदिर था। रुद्रप्रताप के पास चतुरंगिणी सेना थी –

तुंग बेतवै तटनि तुंग तुगारन राजत।
नगर औड़छौ तुंग देव मंदिर छवि छाजत।
संजुत निज–निज धर्म वर्ग आश्रम श्रुति सोभित।
धरनी धर्म धनाढ्य देखि धनदा मन लोभित।
पंडित प्रसिद्ध षट शास्त्रवित सस्त्र अस्त्र विद्या सहित।
चतुरंग सैन मंडित विकट नगर मुकुट मनि जग अजित।।

(विजय ब्रज विलास, सर्ग ५, छंद २३)

अर्थात अपनी स्थापना काल से ही ओरछा धर्म का केन्द्र बन गया था। बड़े–बड़े विद्वान पंडित वहाँ निवास करते थे। ओरछा की धार्मिक प्रवृत्ति निरंतन विकासोन्मुख रही। राजा रुद्र प्रताप की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भारती चंद ओरछा की गद्दी पर बैठे। इनका शासन काल लगभग दो दशक तक रहा। उन्होंने अपने पिता की परिपाटी को निवाहा। भारतीय चंद के पश्चात उनके भाई मधुकर साह ओरछा की गद्दी पर आसीन हुये। राजा मधुकर साह के समय से ओरछा पूर्ण रूप से एक प्रकार से धर्म की नगरी बन गई।

चैत्र शुक्ल पक्ष रामनवमी मंगलवार संवत् १६३१ वि. का शुभ दिन ओरछा का वह स्वर्णिम दिन है जो ओरछा के इतिहास में स्वर्णाक्षिरों में लिखने के योग्य है – इसी दिन मधुकर साह की रानी गणेश कुंवरि ने अयोध्या से रामलला की दिव्य प्रतिमा लाकर अपने महल में उनकी प्राण प्रतिष्ठा कराई और पूरा ओरछा राज्य भगवान राम के चरणों में अर्पित कर दिया। उसी समय से ओरछा के राजा ने अपने को भगवान राम का दीवान मानकर शासन करना प्रारंभ किया। बुन्देलखण्ड की जनता ने अयोध्या के राजाराम को ''रामराजा'' का अभिधान प्रदान किया और रानी का महल ''रामराजा–मंदिर'' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

रामलला का अयोध्या से ओरछा तक आने की मधुर कथा आज भी बुन्देलखण्ड के लोककंठ में समाहित है। भक्त कवियों ने भी इस ऐतिहासिक व धार्मिक प्रसंग का अपनी वाणी में वर्णन किया है। नाभादास ने अपने भक्त मण्डल में महारानी गणेश दे कुंवरि की बड़ी प्रशंसा की है, पद्माकर भट्ट के पौत्र गदाधर भट्ट ने अपने 'विजय ब्रज विलास' ग्रंथ में रानी की तपस्या, भगवान राम के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा और भक्ति का वर्णन करते हुये लिखा है कि –

मधुकर महीप महिमा विशाल।
सुगनेस कुंवर रानी नृपाल।।
तिन्हि न्हात अवध सरयू अनंद।
प्रगटे सुभाव लखि रामचंद्र।।
कोटि काम अभिराम छवि भक्त हेतु द्रुम काम।
पर ब्रह्म पूरन पुरुष प्रगटे सीता राम।।
श्री मन्मधोभूमि पतेर्महिष्या गणेश देव्या कृत भक्तिभावः।
साकेत तश्चौड़छ पत्तनेस्मिन् विराजते श्री रघुराज नमः।।

(विजयब्रज विलास सर्ग ५, छंद ३०–३१, श्लोक)

रामलला की प्राप्ति हेतु महारानी ने अयोध्या में बड़ी कठिन तपस्या की थी। लोकश्रुति के अनुसार राजा मधुकर साहि कृष्ण भक्त थे और रानी गणेश कुंवरि बालपन से ही भगवान राम की आराध्या थी। श्रावण मास राजा रानी सहित वृन्दावन की तीर्थयात्रा पर जाना चाहते थे किन्तु रानी अयोध्या की सावन तीज करना चाहती थी। राजा–रानी में परस्पर होड़ सी लग गई। राजा ने रानी को वृन्दावन चलने के लिये बहुत समझाया। किन्तु रानी अयोध्या जाने को दृढ़ प्रतिज्ञ रहीं। अंत में मधुकर शाह ने भावावेश में कहा कि ''राम की ऐसी ही साध है तो तब जानै जब कै उनखौं लैइ कै इतै आइयो''। रानी के करेजे में यह बात लग गई। रानी ने शुभ मुहूर्त में ओरछा से अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। वे अयोध्या में प्रतिदिन सरयू में स्नान कर भगवान राम का पूजन करती। पूजा करते समय उनको बार–बार राजा द्वारा कहे गये वाक्य याद आते। एक दिन जब रानी सरयू में स्नान कर रही थी तो डुबकी लंगाते समय भगवान राम की बालमूर्ति स्वयमेव उनकी गोद में आ गई। इधर ओरछा में राजा को स्वप्न हुआ कि भगवान राम कह रहे हैं कि हम अयोध्या से ओरछा आ रहे हैं, मेरे रहने की व्यवस्था करो। राजा को आश्चर्य हुआ उन्होंने पंडितों से पूछकर ओरछा में मंदिर बनवाना प्रारंभ किया। भगवान

राम ने रानी को स्वप्न दिया कि हम अयोध्या से ओरछा तक पुष्य नक्षत्र में ही चलेंगे। भगवान की आज्ञा शिरोधार्य कर रानी उन्हें लेकर ओरछा के लिये चल पढ़ी। महीने में जब पुष्य नक्षत्र आता राम चल पड़ते, शेष समय रास्ते में बीतता। इस प्रकार रानी गणेश कुँवरि के साथ–साथ राम लला अयोध्या से चलकर ओरछा आये। अभी तक मंदिर का निर्माण कार्य पूरा नहीं हुआ था। अतः रानी ने अपने महल में ही रामलला को विराजमान कर अर्चन–पूजन करने लगी। मंदिर बन जाने पर जब रामलला की प्रतिमा को रानी के महल से ले जाने को हुआ तो प्रतिमा वहाँ से उठी ही नहीं। पंडितों और ज्योतिषियों की राय से रामलला की प्रतिमा यथास्थान ही रहने दी गई और रानी के महल को रामराजा का मंदिर घोषित कर दिया गया, साथ ही पूरा राज्य उनके चरणों में समर्पित। ओरछा का रामराजा का मंदिर महारानी की अपने आराध्य देव के प्रति दृढ़ आस्था, विश्वास और भक्ति का प्रतीक है।

महारानी गणेश कुँवरि ने रामलला की प्राण–प्रतिष्ठा कर जिस रामभक्ति का शुभारम्भ किया वह इस राज्य में सतत् प्रवहमान रही। इसी राज्य की रानी वृषभान कुँवरि जो रामभक्ति रसिक संप्रदाय में 'रामप्रिया सहचरी' नाम से प्रसिद्ध थीं, अपना सर्वस्व राम के श्री चरणों में अर्पित कर दिया था। वृषभान कुँवरि का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल २, सं. १९१२ वि. (सन् १८५५ ई.) शुक्रवार को बुन्देलखण्ड स्थित तिदारी गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम कुँवर विजय सिंह था जो परमार क्षत्रिय थे। वृभभान कुँवरि को प्राचीन परम्परा और पद्धति से धार्मिक शिक्षा दी गई थी। वे नित्य रामचरित मानस का पाठ कर तब जलग्रहण करती, संवत् १९२६ वि. में इनका विवाह ओरछेश सवाई महेन्द्र प्रताप सिंह के साथ सम्पन्न हुआ। ये स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। महारानी नृषभान कुँवरि के दो पुत्र और तीन कन्यायें हुईं। बड़े पुत्र भगवत सिंह ओरछा की गद्दी के अधिकारी हुये तथा छोटे पुत्र सावंत सिंह को बिजावर की गद्दी मिली।

महारानी ने समय–समय पर प्रयाग, काशी, श्री रंगजी द्वारावती, पुरी, चित्रकूट, अयोध्या आदि धर्म–स्थानों की तीर्थयात्रा की। उनका मन भगवान राम की नगरी अयोध्या में अधिक रमा। यहाँ वे कई मास रहकर भगवान राम का अर्चन–पूजन करतीं। यहीं पर रानी ने कनक भवन जैसे प्रसिद्ध मंदिर का निर्माण कराया। वैशाख शुक्ल १० बुधवार संवत् १९४४ (सन् १८८७ ई) में मंदिर की नींव पड़ी और वैशाख शुक्ल ६ गुरुवार सं. १९४८ (सन् १८९१ ई.) में मंदिर में मुगल विग्रह की प्राण–प्रतिष्ठा हुई। वृषभान कुँवरि ने छः लाख रुपये के रत्न–भूषण भगवान को भेंट चढ़ाया तथा राग–भोग की समुचित व्यवस्था की जो कनक भवन में आज भी देखा जा सकता है। रानी ने जनकपुर में जानकीमंदिर का भी निर्माण कराया जो आज रामभक्तों का प्रमुख केन्द्र है, इसके अतिरिक्त रानी ने टीकमगढ़ के प्राचीन मंदिरों का भी जीर्णोद्धार कराया।

रानी वृषभान कुँवरि स्वयं कवयित्री थी। उनके द्वारा रचे गये ललित छंदों व पदों में अपने इष्टदेव के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति के भाव भरे हुये हैं। वृषभान कुँवरि, राम प्रिया उपनाम से रचना करती थी, उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथों में श्री मघचंद्र माधुर्य, लीलासार, विनोद लहरी, मिथिला जी की बधाई, होरी रहस्य, वृषभान विनोद तथा फुटकर छंद मिलते हैं।[1] वृषभान कुँवरि रचित सीता–गुनमंजरी ग्रंथ लीलो टाइप में मुद्रित हुआ था। इसका एक छंद इस प्रकार है –

छवि धाम सदा प्रभु रामप्रिया अति पूजित तूं सब लोकन तैं।
जग मात तुहीं मुद रूप मयी भरिये गुन ज्ञान विसोकन तैं।।
वृषभान कुंमारि करै विनती न जरै पुनि ज्यौं अघ थोकन तैं।
कर फेरि हरौ अवसेरि सबै मुहि हेरि कृपा अवलोकन तैं।।

एक पद और देखें –

अवध पिया काहै तरसावै जिया रे।
हमरी लाग रही सुधि तुमसों सैनन हरत जिया रे,
धरि पल छिन मोहि कल न परत है, तन मन विवश किया रे,
'अलि वृषभान कुँवरि' जीवन धन ऐसे तुम छलिया रे।''

रानी वृषभान कुँवरि का पूरा जीवन सीता राम मय था। एक ओर वे राम–जानकी के मंदिरों का निर्माण कराती तो दूसरी ओर अपनी वाणी के माध्यम से उनका यशगान करतीं। हम यहीं कह सकते हैं कि रानी ने रामभक्ति का जो आदर्श स्थापित किया वह भारत की नारियों के लिये अनुकरणीय है।

राम–जानकी के नये मंदिरों का निर्माण प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार, काव्य रचना के अतिरिक्त रानी वृषभान कुँवरि ने रामकथा से संबंधित संस्कृत भाषा के अमर रामायण जैसे लुप्तप्राय ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद कराया। रानी की आज्ञा से तत्कालीन प्रसिद्ध कवि परमानंद प्रधान ने संस्कृत के अमर रामायण का प्रमोद रामायण नाम से हिन्दी पद्य में अनुवाद किया। इस कथन का प्रमाण है प्रमोद रामायण ग्रंथ की पुष्पिका, जो इस प्रकार है – ''इति सिद्धि श्री मन्महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री सवाई महेन्द्र महाजा (महाराजा) प्रताप सिंह बहादुर जू देवस्य राज्ञी श्री मन्महाराज्ञी वृषभान कुआरि प्राज्ञानुसारे प्रधान परमानंद विरचिते श्री अमर रामायनान्तरगता सद्य प्रमोद रामायन द्वित्रष्टि तमो विलासः ६२ सुभम् १ वैसाष सुदि ९ संवत् १९४५ मुकाम टीकमगढ़ लिखत सर्व संग्रहेन।।[2] परमानंद प्रधान प्रमोद रामायण के अतिरिक्त मंजु रामायण, जानकी मंगल, रामायण–मानस–दर्पण, रामायण–मानस चंद्रिका, जानकी श्रृंगाराष्टक आदि रामकथा विषयक ग्रंथों की रचना की। संभव है इन रचनाओं के पीछे रानी की ही प्रेरणा हो।

कांचन कुँवरि –

वृषभान कुँवरि की ही भाँति उनकी छोटी बहू कांचन कुँवरि रामोपासिका भक्त कवयित्री थी। कांचनकुंवरि ने अपनी सास द्वारा चलाई गई परम्परा का पूर्णतः पालन किया। इनका जन्म वैशाख शुक्ल पक्ष अक्षय तृतीया, संवत् १९५१ वि. (सन् १८९४ ई.) को हुआ था। इनके पिता गजराज सिंह करहिया राज्य के दीवान थे। इनके पिता ने घर पर ही परंपरागत धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था की थी। कांचन कुँवरि बचपन से रामचरित मानस का नित्य पाठ किया करती। टीकमगढ़ की महारानी वृषभान कुंवरि के छोटे पुत्र सावंत सिंह (जिन्हें बिजावर की गद्दी मिली थी) के साथ इनका विवाह हुआ था। वृषभान कुँवरि की पूरी छाप इन पर पड़ी थी। कांचन कुँवरि ने भी अपनी सास की भाँति अयोध्या में ऋण मोचन घाट पर विशाल राम मंदिर का निर्माण कराया जो अब तक वर्तमान है। बिजावर के प्राचीन राममंदिर का जीर्णोद्धार कराकर उसका नाम श्रीरामनिवास मंदिर रखा तथा मंदिर की व्यवस्था हेतु एक धर्म सभा का गठन किया था।

कांचन कुँवरि द्वारा रचित पदों का एक संग्रह कांचन कुसुमांजलि नाम से बहुत पहले प्रकाशित हुआ था। इनके अन्य ग्रंथों का पता नहीं चलता। यहाँ पर कुसुमांजलि से उनके दो पद प्रस्तुत हैं जिनसे कवयित्री कांचन कुँवरि की प्रतिभा का पता चलता है –

मिले मोहि सपननि राजकिशोर।
काहकहूँ वा छिन की सोभा व्यक्ति होत मन मोर।।
रवि ससि मंद होत मुख छवि लखि लाजत काम करोर।
मृदु मुसक्यान नचाय नैन तकि तिरछी भौंह मरोर।।
कंचन कुँवरि मधुर कछु कहि गये लै गये री चित चोर।।

विरहावस्था का एक पद इस प्रकार है –

कब मिलिहैं वे राज दुलारे।
जिन मन मोहि लियो सखि मेरो नयन बान तिरछे करि मारे।
क्रीट मुकुट माथे पर सोहै भाल विसाल नैन रतनारे।
गोल कपोलन कुंडल झलकै धूँघरवारी जुलफन वारे।
श्यामगात पीतांबर राजै कर कंचन धनु सायक धारे।
नूपुर बजन चरन पग धरनी गजगति चलन मदन मतवारे।
कंचन कुँवरि प्रान प्रीतम पर तन धन धाम निछावर डारे।।

कमल कुँवरि –

जिस प्रकार वृषभान कुँवरि की बहू कांचन कुँवरि राम की अनन्य भक्त थीं उसी प्रकार उनकी पुत्री कमल कुँवरि भी रामोपासिका थीं। कमल कुँवरि का विवाह छतरपुर नरेश विश्वनाथ सिंह के साथ हुआ था। रानी कमल कुँवरि की एक रचना 'जुगल प्रिया पदावली' प्रकाशित है।[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महारानी गणेश कुंवरि ने भगवान राम की आराधना का श्री गणेश किया था वह ओरछा राज परिवार में निरंतर चलता रहा। बल्कि उसमें और भी श्री वृद्धि हुई। ओरछा राज घराने के आश्रित बहुत से कवियों ने समय–समय पर राम साहित्य की रचना कर रामकथा के विस्तार में योग किया। भगवान राम और उनकी कथा के प्रति जितना अनुराग ओरछा की रानियों में पाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

संदर्भ सूची –

१. श्री हरिविष्णु अवस्थी, अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़ के पत्र के आधार पर,
२. बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार, पृ. २२४
३. श्री हरिविष्णु अवस्थी के पत्र के आधार पर।

– साहित्यान्वेषक, ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया
जिला मिर्जापुर (उ०प्र०)

बुन्देली कविता –

बाबुल बिन अपराध न मार

– डॉ. शंकर लाल शुक्ल

कभउँ न गोद खिलइयो हमखों,
कभउँ न करियो प्यार;
पै, बाबुल बिन अपराध न मार,
री, मैया देखन दे संसार,
हमें भी देखनदे संसार।

हम हैं बाबुल पौर दुगई, औ अंगना की किलकारी,
हम न हूँ हैं, तौ रोयेंगी, ढबियाँ और अटारी;
बिना हमाये भइया की, सूनी रै सुघड़ कलाई
ब्याह भये आई भौजी की, को करहै अगबाई।
भइया–दोज, पुतरियाँ रोहैं, अकती करे गुहार।
रे, बाबुल बिन अपराध न मार।

हम बेटी ही हैं कि जिनने, मौत को धूल चटाई,
यमराज भूल न पायेंगे, सावित्री की सच्चाई,
हमें न जहर मार सकता, चिल्लाता राजस्थान है,
मीरा सी बेटी सी बेटी, भक्ती की पैचान है।
हाडी रानी हमीं, दिया था स्वयं सीस उपहार।
री, मइया बिन अपराध न मार।

रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे, पवन चले पुरवाई,
गुइँयन के संग गायें राक्षरे, बाबुल तेरी अंगनाई;
आम की डार डारकें झूला, रात रात भर झूले;
तला के पास सिराई भुंजरियाँ, बाबुल कैसे भूले;
धाड़ मार के साउन रो है, राखी कौ तेहार।
रे बाबुल बिन अपराध न मार।
हमें भी देखन दे संसार।

– भाण्डेर, जिला दतिया (म.प्र.)

नरवर गढ़

– डॉ. के.पी. त्रिपाठी

नरवर बुन्देलखण्ड की पश्चिमोत्तर सीमा पर शिवपुरी जिला अन्तर्गत सिंध नदी के दायें तट पर स्थित विशाल पहाड़ की पूर्वी तराई के मध्य भाग में अहीर नदी के बायें भाग में २५.३९ उत्तरी अक्षांस एवं ७७.५४ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। नरवर ग्वालियर से ११२ कि.मी., करैरा से ३६ कि.मी. एवं झांसी से ८० कि.मी. की दूरी पर है, जो हर जगह से पक्की सड़कों से जुड़ा हुआ है। यहाँ आने जाने को बस सर्विस उपलब्ध रहती है। जीपें भी निरंतर चलती हैं। यहाँ की भूमि चचरीली है। भूमि का पोषक तत्व नरियों, नालों एवं सिंध के खड्डुरों से बहकर सिंध में चला जाता है। चचरीली भूमि होने से कच्चा लोहा यहाँ पाया जाता है लेकिन उसके दोहन को तरजीह नहीं दी गई। वर्षा ऋतु में मूँगफली की फसल खूब होती है। सिंचाई के साधन जुटाकर लोग गेहूँ चना की फसल भी कर लेते हैं। परिक्षेत्र में काँटेदार झाड़ियाँ, बेरी, जरिया, व्याकुल, बबूल, एवं करौंदी सघन रूप में पायी जाती है जिसमें से सुरक्षित चलना कठिन रहा है।

सिंध नदी के दायें किनारे उत्तर से दक्षिण की ओर फैलीं पसरीं विन्ध्य श्रेणी हैं जो उत्तर की ओर चौड़ी फैली है तथा दक्षिण की ओर कम चौड़ी सकरी है। मानो एक मुष्टिका है। यह श्रेणी नरवर नगर के भूमि आधार तल से ४७५ फीट एवं समुद्रतल से १६०० फीट ऊँची है। इसी ४७५ फीट की ऊँची श्रेणी पर राजा नल का नलदुर्ग (नरवरगढ़ उर्फ नरबर दुर्ग) बना हुआ है। जो लगभग ८ किलोमीटर के घेरे में है। नरवर दुर्ग के पूर्वी अंचल में पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर लम्बवत् एक दूसरा पहाड़ है जिसे हजीरा पहाड़ कहते हैं क्योंकि इसके पश्चिमी भाग के शिखर पर दो कलात्मक हजीरा निर्मित हैं। आड़े–ठाँड़े इन दोनों पहाड़ों के मध्य से नगर नरवर के शहर पनाह को धोती पखारती अहीर नदी प्रवाहित है। विन्ध्य श्रेणी पर नलपुर दुर्ग जिसके दक्षिण–पश्चिम एवं उत्तर में सटी प्रवाहित सिंध नदी एवं पूर्व में अहीर नदी मानों प्रकृति ने चारों ओर से इसे नदियों की करधनी पहना कर भूमि तल पर ही प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान कर दी हो। अहीर नदी से सटा लगा नरवर नगर का नगरकोट शहर पनाह है। नरवर दुर्ग इतना सुरक्षित एवं विशाल है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रथम एवं मध्यभारत के ग्वालियर दुर्ग के बाद दूसरे नम्बर का है।

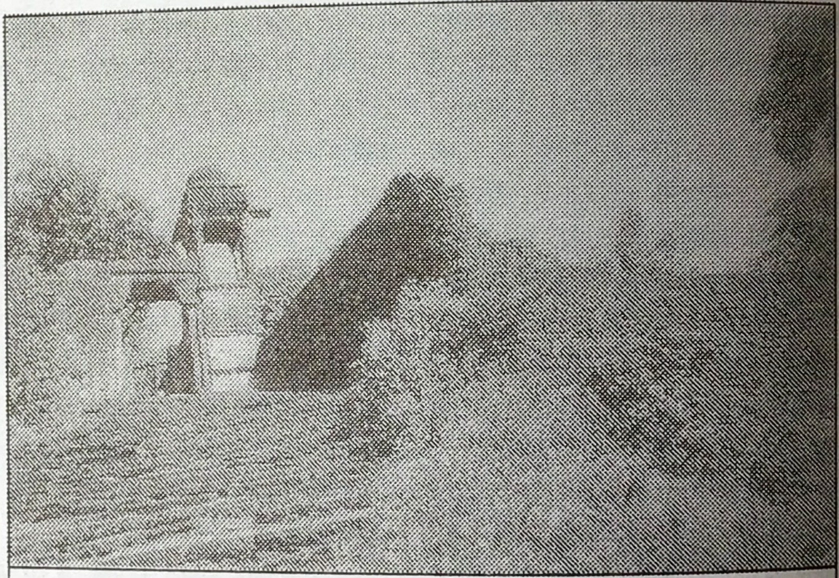
अहीर नदी के अंचल में दुबाई बाजार में शहर पनाह का पूर्वी दरबाजा है जिसमें से चलते सीधे बस्ती बाजार में पहुँचते हैं। फिर उत्तर की ओर घूमकर आगे बढ़ते हैं तो एक चढ़ाई मार्ग पश्चिम की ओर किला को जाता है। यह पक्का किला मार्ग पहले पश्चिम को फिर मध्य पहाड़ से उत्तर की ओर घूमकर किला के मुख्य पिसनारी उर्फ आलमगीरी दरबाजे पर पहुँचते हैं। आलमगीर दरबाजा (पिसनारी) शुद्ध रूप से हिन्दू शैली में बना हुआ है। इसके दोनों किनारों पर सुन्दर मढ़ियों के समान छतरियाँ बनी हुयी है। दरबाजे के अन्दर विशाल प्रांगण है। बाहर पूर्व की ओर की पहाड़ी नीचाई से एक सुनदर आकर्षक विशाल गुर्ज बनी है, जिससे सटकर यह पिसनारी दरबाजा बना हुआ है। ऐसी जनश्रुति एवं उल्लेख है कि इस दरबाजे के नीचे बस्ती की ओर एक जुलेखा नामकी गरीब पिसनारी महिला अपने परिवार सहित रहती थी। जो लोगों का आटा पीसा करती थी। नरवर के कुछ सैनिकों ने आलमगीर (औरंगजेब) के आक्रमण से नागरिक सुरक्षा करने की दृष्टि से, उसके नाम पर यह दरबाजा बनने के पहले उक्त पिसनारी जुलेखा को भगा दिया था। आलमगीरी दरबाजा बन जाने के पश्चात् पिसनारी दर व दर भटकती भूखों मरने लगी। बखतावर खाँ ने यह बात बादशाह को सुनाई तो उसने द्रवित होकर जुलेखाँ एवं उसके परिवार को बुला कर अपार धन देकर उसकी मदद की और आदर दिया। उसी समय से इस आलमगीर दरबाजा को पिसनारी दरबाजा भी कहा जाने लगा था। पिसनारी जुलेखाँ का विवरण औरंगजेब नामा (तवारीख मआसिर आलमगीरी) भाग २ खंड ७ पृ. ४९ पर दिया गया है। दरबाजा १६९२ ई. में बना था।

आलमगीरी दरबाजे के भीतर से पश्चिम की ओर पहाड़ पर लगभग २५ फुट चौड़ा सीढ़ी मार्ग है। इन सीढ़ियों को पार कर दो विशाल गुर्जों के मध्य पहुँचते हैं। इन दो गुर्जों के मध्य से २५ सीढ़ियां चढ़ते हुये उत्तराभिमुखी सैयद दरबाजे पर पहुंचते हैं। सैयद दरबाजे को पीर पौर भी कहते हैं। यह दरबाजा सैयद पीरन दस्तगीर ने बनाया था। सैयद दरबाजा के ठीक सामने एक बाड़ा के अन्दर निर्मित दालान में २ मजारें हैं, एक शिलालेख अरबी–फारसी में है। सैयद दरबाजा के अन्दर सामने एक तीन द्वारों की खुली सुन्दर सुरक्षा चौकी है। सैयद दरबाजा बड़ा विशाल एवं खूबसूरत है जिसे पीर पौर भी कहा जाता है।

सैयद (पीर पौर) दरबाजा से आगे सीढ़ियां चढ़ते हुये उत्तर की ओर घूमने पर दक्षिण मुखी गणेश दरबाजा के सामने पहुंचते हैं। गणेश दरबाजा को गणेश पौर भी कहते हैं। इस दरबाजा पर गणेश जी का भव्य मंदिर है। २० सीढ़ियों की ऊँचाई देकर यह गणेश दरबाजा बनाया गया है जो बड़ा भव्य एवं विशाल है। जिसके दोनों ओर लगभग ६० फुट ऊँची विशाल गुर्जे खड़ी की गई है। इस गणेश दरबाजा के भीतर सामने उत्तरी

एवं दायें भाग में सुदृढ़ सुरक्षा चौकियाँ स्थापित हैं।

गणेश दरबाजा को पार कर उत्तर की ओर की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, दक्षिण को मुड़ना पड़ता है। इस दक्षिण मुखी मोड़ से सीढ़ियाँ चढ़ते हुये पूर्वाभिमुखी हवा महल दरबाजे के सामने जा पहुँचते हैं। इसे हवा पौर भी कहते हैं। इस हवा पौर दरबाजा के सामने सुन्दर प्रांगण बनाया गया है जिसके उत्तर की ओर ३ सुन्दर बैठकें हैं जिनकी पच्चीकारी एवं शिल्प दर्शनीय है। ग्वालियर के महाराजा दौलत राव सिंधिया के कामदार अम्बाजी इंग्लिया ने सन् १८०० में इस हवा महल दरबाजा की मरम्मत कराकर इसे गौमुखी दरबाजा नाम दिया था। यह दरबाजा बड़ा विशाल एवं भव्य है। पहाड़ के शिखर पर होने से यह वास्तुविद के चातुर्य से इसकी ऐसी रचना की गई है कि इसमें हमेशा शीतल हवा लगती रहती है एवं ऐसा आभास होता है जैसे यह हवा महल दरबाजा वातानुकूलित बनाया गया हो। दरबाजा लगभग ४० फुट ऊँचा है इसमें कीलादार मजबूत फाटक लगे रहे हैं। दरबाजा के अन्दर दोनों ओर तीन तीन द्वारी की सुरक्षा चौकियां हैं।



आलमगीर दरबाजा – नरवर दुर्ग

हवा पौर दरबाजा (गौमुखी द्वार–जिसकी रचना गाय के मुखाकार की है) को पारकर पश्चिम की ओर शानदार जीना चढ़ते हुये किला प्रांगण में प्रविष्ट हो जाते हैं। हवा पौर में से जैसे ही जीना के मध्य में पहुँचते हैं तो बायीं ओर की दीवाल में एक प्रतिमा शंख पद्म घट एवं गदा लिये दाढ़ी मुकुट युक्त चतुर्भुजी विश्वकर्मा (ब्रह्मा) रचनाकार की स्थापित है।

जैसे ही किला के प्रथम भाग प्रांगण में पहुंचते हैं तो सामने राजस्थान के सवाई जयसिंह की एक तोप रखी है जिस पर सन् १६९६ अंकित है। किले का यह उत्तरी प्रथम परिसर पांच छः किलोमीटर के घेरे का है। गोलाकार है। चारों ओर के सुदृढ़ परकोटा है तथा परकोटा के अन्दर महल मंदिर, आवासीय भवन तालाब आदि बने हुये हैं। किले का दक्षिणी द्वितीय परिसर लगभग ३ किलोमीटर घरे का है। मैदानी है मानो सैन्य परिसर रहा हो। इसमें तालाब मंदिर मस्जिद मजार छतरियां एवं कब्रे हैं।

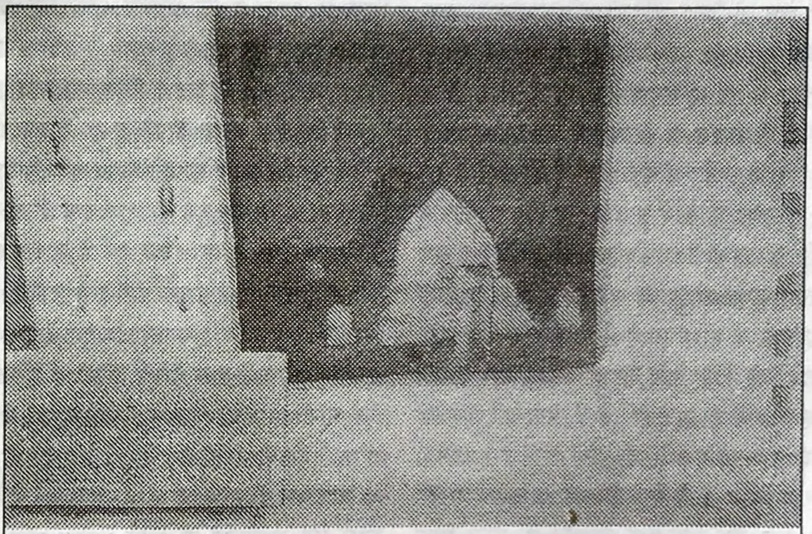
किला के उत्तरी एवं दक्षिणी परिसरों को मध्य भाग में बनायी गयी एक परकोटा भित्ति विभाजित करती है। इसी विभाजक भित्ति के दक्षिणी पूर्वी कोने से एक दरबाजा है, जो दोनों परिसरों में आवाजाही के लिये है। सम्पूर्ण किले का परकोटा पहाड़ के शिखर के चारों ओर किले की घेराबंदी किये खड़ा है। परकोटा लगभग १० फुट चौड़ा एवं ३० फुट ऊँचा है। जिसमें लगभग ६० से अधिक विशाल गुर्जे हैं।

किला के उत्तरी क्षेत्र में हवा पौर के ऊपर चलने पर सर्व प्रथम ऊदल भक्षी भवन मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि भवन में महोबा के ऊदल को कैद कर रखा गया था। क्योंकि ऊदल कोली के कछवाहा राजा मकरंदी की पुत्री फुलवा से गुपचुप मिलने माली का भेष बनाकर उसके महल में आ जाता था। मकरंदी ने ऊदल को गिरफ्तार कराकर इसी भक्षी भवन में कैद रखा था। जिस कारण यह भवन ऊदल भक्षी भवन कहा जाने लगा था। ऊदल भक्षी भवन से आगे महलों का क्रम प्रारंभ हो जाता है।

भक्षी भवन के आगे शीप महल मिलता है। इसमें एक विशाल पत्थर को तरास कर अति शुन्दर शीप बना कर रखी गई है। जो अनन्य है। इसी शीप के नाम पर इस महल को छीप महल कहा गया है। यह शीप महल के सौन्दर्य को निखार देती है। इस शीप (शंख) महल की रचना आकृति यज्ञशाला जैसी है। कहा जाता है कि यह राजा का व्यक्तिगत पूजा गृह था। इसी महल से संलग्न एक विशाल महल है जिसका वास्तु शिल्प दर्शनीय है। इसके सामने एक लदाऊ बंगला है। जो वर्गाकार चबूतरे पर निर्मित है। जिसके चारों कोनों पर चार खंभे हैं जिनके मध्य यह लाद से निर्मित गोलाकार भव्य कक्ष है। इसमें चार दरबाजे हैं। लाददार बना होने से इसे लदाऊ बंगला कहा गया है।

लदाऊ बंगला के सामने हवा महल है। इसके झरोखे बड़े आकर्षक हैं। जिनमें से हर समय शीतल वायु आती रहती है। इसी कारण इसे हवा महल नाम दिया गया है। यह हवा महल वास्तुकारों की सर्वोत्तम रचना हैं हवा महल के समीप ही रसोड़ा भवन है जिसका वास्तुशिल्प भी अनूठा है।

कुछ आगे चलने पर फूल महल मिलता है। जिसकी ऊपरी मंजिल पर भव्य एवं आकर्षक छतरियाँ निर्मित हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति का मन मोह लेती हैं। फूल महल से आगे ढोला मारू का महल एवं रनिवास है। ढोला मारू महल का शिल्प अद्वितीय है। ढोला राजा नल का राजकुमार था और मारूं (मरवण) राजस्थान के पूगलगढ़ की राजकुमारी थी। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे। उनकी प्रेमगाथा राजस्थान एवं बुन्देलखण्ड में लोकगीत के रूप में गाई एवं सुनी जाती है। ढोला मारूं को पुंगलगढ़ से नरवरगढ़ ब्याह ले आया था तथा प्रेम विवाह के बाद इसी ढोला मारूं महल में रहते थे। यह महल ढोला मारूं के प्रेम प्रणय का प्रतीक है। परन्तु ढोला मारूं का प्रेम विवाह नरवर के कछवाहा राज्य के पराभव का कारण भी बना। राजस्थान के सवाई जयसिंह का सन् १६९६ का नरवरगढ़ पर आक्रमण इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ था।



सैयद मजार – सैयद (पीर पौर) दरबाजा नरवर दुर्ग

ढोला मारूं महल से आगे शाही स्नानगृह हैं, जिसमें ठंडे एवं गरम जल के लिये पृथक पृथक कुण्ड निर्मित हैं। इस स्नान घर में कौड़ियों के चूना की छपाई की गई है जिससे यह आज भी सफेद एवं चमकदार बना हुआ है। गरम कुण्ड के नीचे आग जलाने के लिये ईंधन भट्टी निर्मित है। स्नानघर से संलग्न शौचालय है जिसमें पत्थरों की तरासी हुयी सुन्दर सीटें प्रयुक्त हैं। यह शौचालय अन्य किलों के शौचालयों से विशिष्ट बना हुआ है। यहां से आगे चारों ओर भव्य भवन खड़े हुये हैं, जिनका उपयोग खाद्य रसद भंडारण, युद्ध सामग्री गोला बारूद तलवारों के भंडारण, सैनिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के आवास के रूप में होता रहा होगा।

स्नानगृह परिसर के पश्चात् कचहरी महल है। यह महल नरबर के राजाओं का दरबार हाल था। जिसमें प्रस्तर का सुन्दर राजसिंहासन बना हुआ है। यह सिंहासन भी कलात्मक है। कचहरी के प्रांगण में हवनकुण्ड वेदिका एवं एक फब्बारा है। कचहरी महल से संलग्न सुनहरी महल है। इसे सुनहरी महल इसलिये कहा गया है कि इस पर निर्मित छतरियां पीली सोने के रंग जैसी हैं। सुनहरी महल के अतिरिक्त शपथ समारोह भवन, सेनापति भवन, रंगमहल एवं झूला परिसर वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। रंगमहल के समीप परकोटा से लगी सोलह खम्भों की एक ऊँची आसन पर छतरी बनी हुयी है। जिसमें से नरवर नगर का सम्पूर्ण परिदृश्य दृष्टिगोचर होता है।

कचहरी महल के पास रामजानकी मंदिर है जिसमें प्रयुक्त पत्थर की जालीं अति सुन्दर हैं। इस मंदिर के आगे आठ कुआं नौ बावड़ी कहा जाने वाला तालाब है जो एक विशाल कुण्ड चौपरा है। यहां से अगले मुगल शैली का बड़ा सुन्दर अखाड़ा बना हुआ है। जिसके चारों कोनों पर चार सुदृढ़ मीनारें हैं। इसी परिसर की ढलान पर जैन तीर्थांकर चन्द्रप्रभु का मंदिर है। सिंधनदी की ओर पश्चिमोत्तर भाग में सिद्धबाबा का कुण्ड एवं झरना है। भोले नाथ का मंदिर गौरईया माता मंदिर एवं गौमुख बजरंगबली के मंदिर इसी परिक्षेत्र में है।

हवा पौर दरबाजा प्रांगण से एक मार्ग महलों भवनों के मध्य से दक्षिणी परिसर की ओर जाता है जो मध्यवर्ती परकोटा के दरबाजे तक है। इस दरबाजे में से सैन्य परिसर किला क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस परिसर के पूर्वी अंचल में परकोटा भित्ति के पास सूफी संत मदारशाह की दरगार है जो शेरशाह सूरी के पुत्र आदिल शाह उर्फ स्लामशाहसूर के शासनकाल में दिलावरखाँ के आदेश से सन् १५५२ ई. में बनाई गई थी। दरगाह के पीछे मस्जिद है। दरगार एवं मस्जिद दोनों एक ही घेरे में ऊंचे चबूतरे पर बनी हैं। दरगार के दाँयीं ओर एक घेरे में १५ मजारें एवं सामने परकोटा संलग्न खंभोंदार दालान के नीचे ५ मजारें बनीं हुयी हैं। इस किला परिसर के मध्य प्रांगण में ४ छतरियाँ भी निर्मित है। पश्चिमी कोण में पसरा देवी मंदिर एवं दक्षिणी पश्चिमी कोण में ताल कटोरा तालाब है जो वर्गाकार है। इस तालाब के मध्य में शिवजी स्थापित है और ऊपरी सीढ़ियों के पास हनुमान मंदिर है।

इस नरवर दुर्ग के परकोटा में, जो पत्थर का बना हुआ है, लगभग ६० से अधिक गुर्जे हैं। किला से बाहर निकलने के लिये परकोटा में चार विशाल दरबाजे हवा पौर दरबाजा, उरबाया दरबाजा, ढोला दरबाजा एवं गूजर अहाता सैन्य परिसर से दक्षिणी दरबाजा है। सभी दरबाजों पर सुरक्षा चौकियां हैं। किला के दक्षिणी पूवी छोर पर पहाड़ की तलहटी में लोहड़ी नटनी देबी की

मढ़िया (मढ़ी) है।

नरवर को नलपुर भी कहा गयाहै तथा यहां के दुर्ग को नरवरगढ़, नलपुर दुर्ग, नरबर दुर्ग नाम से संबोधित किया जाता रहा है। औरंगजेब नामा के (तवारीख मआसिर आलमगीरी) अनु०मुन्शी देवी प्रसाद प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई भाग २ खंड ८ वर्ष १९१०) पृ. ६५ पर इसे नलदुर्ग कहा गया है। नलपुर एवं नलदुर्ग नामों से सिद्ध होता है कि नरवर दुर्ग की रचना राजा नल के समय की है। महाभारत के नलोपाख्यान में (वन पर्व) के नायक राजा नल की राजधानी नलपुर (नरवर) ही थी। नलपुर के राजा नल को निषध का राजा और उनकी रानी दमयन्ती को विदर्भ देश के राजा भीमरथ की राजकुमारी कहा गया है। यद्यपि कुछ विद्वान दमयन्ती को दमोह की मानते हैं लेकिन यह बात दमोह की प्राचीनता बतलाने के लिये ही कही गई है। पुष्ट प्रमाण तो महाभारत के वनपर्व का नलोपाख्यान है जिसमें नलपुर के राजा नल का चौपड़ पाँसे के खेल मे नरवर राज्य हार कर रानी दमयन्ती के साथ नरवरगढ़ छोड़कर जंगलों में भूखे प्यासे निवार्सित जीवन जिया। नलदमयन्ती की प्रेम गाथायें एवं सत्याचरण भारतीय सामाजिक जीवन का आदर्श हैं। बुन्देलखण्ड में चौपड़ के खिलाड़ी आज भी कहते हैं – हे राजा नल के पांसे (पौबारा या जो चाहिये सो) इतने पढ़ना अथवा आना। दक्षिणी दरवाजा के कंगूरे कुछ आगे को झुके हुये हैं, जिनके बारे में लोगों का मत है कि जब राजा नल और दमयन्ती रानी इस दक्षिणी दरबाजा में से बाहर वनगमन के लिये निकले तो अफसोस मे यह कँगूरे झुग गये थे। राजा नल महाभारत कालीन थे, परन्तु किस बंश के थे? कछवाहा अथवा नाग वंशीय या कोई अन्य राजवंशीय।

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास के लेखक पंडित गोरेलाल तिवारी ने पृष्ठ १४ पर उल्लेख किया है कि नरबर दुर्ग नागराजाओं की राजधानी था। जहां ९ नागराजाओं भीम–नाग (५७–८२ ई.) खर्जुर नाग (८२–१०७ ई.), वत्स नाग (१०७–१३२ ई.), स्कंध नाग (१३२–१८७), बृहस्पति नाग (१८७–२०२), गणपतिनाग (२०२–२२६), व्याघ्र नाग (२२६–२५२), वसुनाग (२५२–२७७) देवनाग (२७७–३००) ने राज्य किया था। समुद्र गुप्त ने नाग राजाओं के वैभव को नष्ट करने हेतु उन पर आक्रमण किया था तथा उन्हें श्री हीन कर यत्र तत्र विखंडित कर दिया था। जिसका उल्लेख इलाहाबाद स्तंभ में है।

दि इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया वौलूम १८ सन् १९०८ के पृष्ठ ३९६ पर भी ऐसा ही उल्लेख है कि नरवर में नवनाग राजा राज्य करते थे। जहाँ के गणपति नाग राजा ने सिक्के भी चलाये थे। नाग राजा देवनाग के पश्चात् नवमी शदी तक के नरबर राजाओं के बारे में इतिहास मौन है। शायद इस अवधि में नरबर के नाग राजाओं ने पवां (पद्मावती) कुतवार (कान्तिपुरी) को अपना ठिकाना बना लिया हो। क्योंकि पवां भी नरबर के उत्तर में सिंध नदी के तट पर ही है। कान्तिपुरी भी पद्मावती का एक भाग था। कनिंघम ने तो नरबर को ही पद्मावती माना है। जो नागों का वैभवशाली ठिकाना था।

दसवी शदी में रामचन्द्र जी के छोटे पुत्र कुश के बंशज कछवाहा क्षत्रियों का प्रादुर्भाव बुन्देलखण्ड के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में हुआ। जिनकी एक शाखा ने नरबर में सत्ता स्थापित की तो दूसरी शाखा राजस्थान की ओर गई जिसने जयपुर में कछवाही राजसत्ता स्थापित की थी। कछवाहा क्षत्रिय बड़े बहादुर एवं प्रभावशाली थे। जिन्होंने राजा नल के नरबर दुर्ग को और अधिक सुदृढ़ एवं सुरक्षित किया था। इस नरबर दुर्ग पर कछवाहों के अतिरिक्त पड़िहारों तोमरों, गुलाम वंशीय सुल्तानों, लोदी बंशज सिकन्दर, मुगल सम्राट अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब, चम्पतराय और उनके पुत्र छत्रसाल बुन्देला, ओरछा नरेश महाराजा वीरसिंह देव, नारौ शंकर, विट्ठल शिवदेव, महादजी सिंधिया एवं दौलत राव सिंधिया ने अपने अपने समय नरबर परिक्षेत्र को लूटा एवं दुर्ग पर अधिकार करने की चेष्टा की। पड़िहारों एवं तोमरों का अधिकार भी नरबर दुर्ग पर रहा तथा किला को नव जीवन भी मिला। मानसिंह तोमर नरवर दुर्ग में रहे। गूजर पुत्री मृगनयनी से मेल मुलाकात एवं प्रणय प्रेम इसी दुर्ग में रहते एवं ग्वालियर आते जाते हुआ था। यह नरबर दुर्ग अपने हृदय में अनेकों की प्रणय लीलायें छिपाये हुये हैं, जिन में नलदमयन्ती, ढोला मारू एवं मानसिंह तोमर एव मृगनयनी मुख्य हैं। सिंध के पानी से वीरता, पौरुष, निर्भीकता तो आती ही है, हृदय में प्रेम की कलियों का प्रस्फुटन भी उससे इस दुर्ग में हुये हैं। वैसे अनेकों प्रहार एवं आक्रमणों के थपेड़े झेलता हुआ नरवर दुर्ग आज भी अनेक घावों एवं चोटों को समाहित किये हुये खड़ा हुआ है।

सन् १८१८ ई. तक नरबर दुर्ग कछवाहा राजपूतों के अधिकार में रहा। जब मराठों ने उन्हें किले से नीचे कर दिया तो उन्होंने जंगलों में रहकर भी गुरिल्ला युद्ध प्रणाली द्वारा नरबर दुर्ग पुनः लेने का प्रयत्न किया, परन्तु मराठे जो गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में पारंगत एवं दक्ष थे, सो बुन्देलखण्डी उनके सामने घुटने टेकने को मजबूर हो गये थे।

सन् ११२९ से १२५१ ई. तक चाहदा देव पड़िहार एवं उसके वंशजों का अधिकार नरबर पर रहा। परन्तु पड़िहारों को गुलाम वंश के अल्तमस ने इसे छीन कर अपने अधिकार में ले लिया था। नासिरुद्दीन के बाद नरबरगढ़ पर तोमर राजपूतों का अधिकार हो गया था। मानसिंह तोमर ने इस किले का जीर्णोद्वार करा कर सामरिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं सुरक्षित किया था। मानसिंह तोमर का मृगनयनी गूजर के प्रति प्रेम इसी नरबरगढ़ क्षेत्र में प्रस्फुटित हुआ था। सन् १५०४ ई. में सिकन्दर लोदी और काल्पी के जलालखां ने संयुक्त रूप से आक्रमण कर नरवर दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया था। सिकन्दर लोदी नरबर दुर्ग में छः महीने तक रहा था। किला के दक्षिणी परिसर के पूर्वी भाग में स्थित मस्जिद सिकन्दर लोदी की ही बनवाई हुई है। बाद में

राजसिंह कछवाहे को किला सौंप कर दिल्ली वापिस लौट गया था।

सन् १५७८ ई. में मुगल सम्राट अकबर ने नरबर दुर्ग पर आक्रमण किया था। किया फतह करने के उपरान्त कुछ दिन अबुल फजल भी इस किले में रहा था। जिसने अकबर नामा में उल्लेख किया है कि नरबर दुर्ग में अनेक हिन्दू मंदिर निर्मित हैं।

सन् १५९२ में ओरछा के राजा मधुकरशाह ने नरबर के पास ही मुगल सेना का सामना किया था। सन् १६०२ ई. में बीरसिंह देव बुन्देला ओरछा (तत्कालीन जागीरदार बड़ौनी) ने नरबर में रहते हुये ही परायछें की चौकी पर अबुल फजल का वध किया था, तथा राम कछवाहा एवं आसकरण कछवाहा को मुगल सम्राट की वफादारी रखने के विरुद्ध धमकाया था। सम्राट शाहजहां के समय कछवांहों ने मुगलों की आधीनता मानकर नरबरगढ़ को अपने स्वत्ताधिकार में बनाये रखा था। सन् १६३२ ई. में शाहजहां ने नरबर के रामदास कछवाहा को शाही सेना के साथ जुझार सिंह बुन्देला के दमन के लिये भेजा था। सन् १६८१ ई. में छत्रसाल बुन्देला मुगल सेनापति रणदूलह को गढ़ाकोटा से खदेड़ते हुये नरबर तक आये थे तथा नरबर परिक्षेत्र में लूट की थी। उस समय नरबर में केशरी सिंह कछवाहा था जो मुगलों का विरोधी था। यह विशेष उल्लोखनीय बात है कि सम्राट अकबर के समय से नरबर किले की गतिविधियों पर करैरा के फौजदार (किलेदार) नजर रखने के लिये अधिकृत किये गये थे। बाद में वह करैरा के साथ साथ नरबर दुर्ग के भी किलेदार बना दिये गये थे। वहाँ १६८१ ई. के समय से सैयद बहादुर, सैयद जाफर एवं सैयद सहामत तीन फौजदार रहे थे।

सम्राट औरंगजेब आलमगीर ने भी नरवर दुर्ग पर आक्रमण किया था। औरंगजेब नामा भाग २ खंड ८ पृ. ६५ पर उल्लेख है कि सन् १६७७ में नलदुर्ग की लड़ाई में खानजहाँ बहादुर का बेटा मुहम्मद मुहसन मारा गया है। आगे पृष्ठ ७० पर लिखा है कि १४ मई १६७७ को नलदुर्ग बादशाही बंदौं के कब्जे में आ गया है। औरंगजेब नामा भाग ३ खंड १२ पृ. ८२ पर यह भी उल्लेख है कि नरबर दुर्ग जुल्फिकार खां बहादुर ने फतह किया है जिसके इनाम में ४ हजारी ढाई हजार सवार का मनसब किया जाता है। जुल्फिकार खाँ १६ जनवरी १६९२ को नरवर दुर्ग फतह किया था। नरवर दुर्ग विजय के उपलक्ष में ही आलमगीरी दरबाजा बनवाया गया था।

औरंगजेब की जनविरोधी नीतियों के कारण देश के चारों ओर सरकार विरोधी विद्रोह उठ खड़े हुये थे, जिन्हें वह दवा भी नहीं सका था। चारों ओर की भागमभाग तथा असफलता की हताशा में ही वह १७०७ ई. में मर गया था। उसके उत्तराधिकारी भी अयोग्य ही निकले थे। जिससे अस्थिरता उत्पन्न हुयी और उक्त अस्थिरता का मराठों ने पूरा पूरा लाभ उठाया था। १७६३ ई. के पश्चात महाद जी सिंधिया ने नरवर परिक्षेत्र पर तूफानी आक्रमण प्रारंभ किये थे। महाद जी सिंधिया के आक्रमणों की सुरक्षा हेतु नरबर का कछवाहा राजा एवं चन्दौरी का राजा रामचन्द्रधर अंग्रेजों की शरण में चले गये थे। जिससे कुपित होकर महादजी ने सेसई एवं कोलारस के मध्य अंग्रेजों के रसद से लदे हुये ३०० बैलों के समूह को लूट लिया था। १७८२–८३ ई. में महादजी ने नरबर, करैरा, पिछोर, सैसई एवं कोलारस तथा शिवपुरी परिक्षेत्र में लूट का आतंक स्थापित कर इसे अपने आधीन कर लिया था। इस क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित कर १७८४ ई. में महादजी ने ग्वालियर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में लेकर अपनी राजधानी बना ली थी।

सन् १७९४ ई. में महाद जी सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् दत्तक पुत्र दौलतराव सिंधिया ग्वालियर का राजा बना था। परन्तु महादजी की तीनों विधवाओं लक्ष्मीबाई, भागीरथीबाई एवं यमुना बाई ने दौलतराव का विरोध किया था। उन्होंने लकवादादा की सहायता लेकर विद्रोह कर दिया था तथा नरबर दुर्ग को अपने विद्रोह का केन्द्र स्थापित कर लिया था। तब दौलतराव ने अंबाजी इंग्लिया की मदद लेकर लकवा दादा का दमन किया और महादजी की विधवाओं सहित सभी विद्रोहियों को नरवरगढ़ से खदेड़ दिया था। अम्बा जी इंग्लिया ने १८०५ ई. में नरवर को अपना सैन्य केन्द्र बनाकर कछवाहों को दुर्ग से निकाल बाहर किया था। जिस कारण उन्होंने नरबर क्षेत्र में लूटामारी प्रारंभ कर दी थी। कछवाहा राजवंशजों को शांति पूर्वक जीवन यापन करने की शर्त पर सन् १८१८ ई. में ग्वालियर के अंग्रेज पोलिटिकल रैजीडेन्ट ने माधौसिंह कछवाहा को पारौन का राज्य दे दिया था। नरबर के राजवंशज कछवाहा बाद में नरबर दुर्ग से नीचे उतर कर इंदुरखी एवं रामपुरा जैसे राज्यों के छोटे राजा बन गये थे।

नरवर दुर्ग के दक्षिणी दरबाजे के पास किला पहाड़ की तलहटी में एक छोटे चबूतरे पर मढ़िया बनी हुई है, जिसे लोहड़ी देवी का मंदिर बोलते हैं। लोहड़ी देवी एक तांत्रिक नटिनी थी। वह ग्वालियर की थी। नरबरगढ़ जब अपने वैभव के शिखर (लगभग १६वीं शदी में) पर था, तब उक्त लोहड़ी नटिनी नरवर दुर्ग में पहुँची और कछवाह राजा से कच्चे धागे पर चलने का कलात्मक प्रदर्शन एवं दक्षता प्रदर्शन देख लेने का आग्रह निवेदन किया। राजा ने एक प्रौढ़ा महिला का कच्चे सूत (धागे) पर चलना असंभव चमत्कार माना। लोहड़ी नर्तकी ने राजा से विनय की कि यदि मैं कच्चे सूत पर चलकर दिखा दूँगी तो महाराजा मुझे क्या पुरस्कार देंगे? राजा नरवर ने सहज ही लोहड़ी नटिनी से कह दिया कि यदि तू कच्चे सूत पर चलकर दिखा दे तो तुझे नरबर का राज्य दे दूंगा। लोहड़ी नटिनी ने किला के पूर्वी पार्श्व में स्थित हजीरा पर्वत पर निर्मित एक हजीरा के एक कंगूरे से कच्चे धागे का एक छोड़ बांधा तथा दूसरा छोड़ किला के दक्षिणी दरबाजे के पास की गुर्ज के कंगूरे से बांधा। हजीरा एवं किला गुर्ज से कच्चा सूत बंध जाने पर नटिनी हजीरा पर चढ़ गई। हजीरा से किला गुर्ज की लम्बाई लगभग ३०० मीटर से अधिक है तथा कच्चा

सूत भूमि से ३०० फट ऊँचाई पर था। कच्चे धागे पर चलने से पूर्व नटिनी ने राजा के सभी हथियार मंत्र से कील दिये थे कि वे धागा न काट सकें। नटिनी हजीरा से कच्चे बंधे सूत पर नाचती थिरकती आगे बढ़ी और नचती थिरकती गुर्ज के नजदीक तक आ पहुँची। राजा के हथियार तो किले हुये थे सो कच्चे धागे पर चले नहीं। परेशान मंत्री ने एक चर्मकार से रांपी मंगवाकर रखली थी। सो जैसे ही नटिनी गुर्ज के पास आने को थी, मंत्री ने रांपी से सूत काट दिया। लोड़ही नटिनी धड़ाम से नीचे गिरी और मर गई। लोहड़ी–नटिनी के मृत्यु स्थल पर ही यह लोहड़ी देवी का मंदिर है। इसमें मूर्ति नहीं है। केवल होम धूप पूजा होती है। उसी समय से नरबर में नर्तिकियाँ नहीं आती और यह कहावत चरितार्थ हो गई –

नरबर चढ़े न बेड़नी – एरछ पकै न ईंट।
गुदनौटा भोजन नहीं – बूंदी छपै न छींट।।

– भारत भवन, पुरानी टेहरी
टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली गीत –

बड़ी पोल है ...

– गोपालदास रुसिया

बड़ी पोल है बड़ी पोल है ऊपर नीचे मोल तोल है।
बड़ी पोल है..........।।

स्यार हते बे शेर बन गये।
शेर हते बे स्यार बन गये।
समय समय की बात है भइया।
दुर्जन आज कुबेर बन गये।
सुरा सुन्दरी में डूबे सब हो गये गोल–मटोल हैं।
बड़ी पोल है..........।।

नेता बन गये कइयक लेता
यह हो गये उनको जो देता
मन के मैले दिल के काले
नाटक के बनके अभिनेता
चमचा झन्डा को डन्डा ले, उचक बजा रये ढोल है।
बड़ी पोल है..........।।

अश्वासन देना है धन्दा
बांध और बंधवा दे बन्दा
सब्ज बाग दिखला दिखला के
करते हैं बसूल वह चन्दा
भाषन देते लम्बा चौड़ा जिसका मतलब गोल गोल है।
बड़ी पोल है..........।।

कर्मचारियों की मजबूरी
करते इनकी सबई हुजूरी
इनके कहने पर दोसी की
मदद सदा करते हैं पूरी
अगुवानी में दांये बांये, डोलें सुनें कुबोल है।
बड़ी पोल है..........।।

पड़े लिखे सिर धुन धुन रो रये
बिना पढ़े कुर्सी पर सो रये
आरक्षण को स्वांग रचाकर
बीजा बोटन खों यह बोरय।
बाँप बना के बोट डरा लये, पीछे मारे ठोल है।
बड़ी पोल है..........।।

भइया भौजी बाँप मताई
साले साली ससुर जमाई
इनसे है गुपाल ये सब परिचित
जिनके द्वारा होत कमाई
बिगरे काम बनेंगे सबके, सबसे इनका मेल जोल है।
बड़ी पोल है..........।।

ऊपर नीचे दाये बायें
पइसा का सब गाना गाये।
आगे पीछे वाले मिलकर
सबको रस्ता यही बताये
भ्रष्याचारी सिष्टाचारी, का ही मंत्र अमोल है।
बड़ी पोल है..........।।

खा खा घर खाँ पोलो कर दओ
अपनो खाली घर है भर लओ
कर्जा परदेशिन से लेकर
रुक्का उनके मन को भर दओ
भीतर है काले ये काले, ऊपर ओढ़े स्वेत खोल है।
बड़ी पोल है..........।।

करके न्याय नीत की बातें
करते मिल मिलकर ये घातें
पी गये सत्य धरम स्वरथ बस
झूठी छूट खां कह रये साते
ऊपर से है साफ चीकने, नीचे इनका बड़ा होल है।
बड़ी पोल है..........।।

खूबई मच रओ आज मचेला
अब तो गुरु बन गओ है चेला
फस गओ अब भारत दल दल में
इनने कर डारो अपने हित, अमृत खाँ विष घोल घोल है।
बड़ी पोल है..........।।

– हरिहर रोड, हरपालपुर

बुन्देली भाषा-साहित्य के महाप्राण : ईसुरी

-पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

बुन्देली भाषा साहित्य में ईसुरी अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न श्रेष्ठ कवि थे, यदि उन्हें बुन्देली का आदर्श मान मानक कवि कहा जावे, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। आशु–काव्य प्रवृत्ति में तो वे असाधारण प्रतिभा के धनी थे। प्रेम और सौन्दर्य के अथाह सागर में रस–प्लावित ईसुरी की कविता अपनी अनुभूति, दुख–सुख और ऐन्द्रिकता में अद्वितीय अभिव्यक्ति ठहरती है। ईसुरी के जन्म दिनांक को लेकर विद्वान एक मत नहीं रहे। गहन शोध के उपरान्त मिती चैत्र सुदी दसवीं संवत् १८९८ वि. गुरुवार ईसुरी का जन्म दिनांक अन्तिम रूप में स्वीकार किया गया है। निधन अगहन वदी सप्तमी संवत् १९६६ विक्रमी तदनुसार १९०९ ई. में हुआ। इस प्रकार मात्र ६८ वर्ष की जीवन लीला में उनका रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारभ होकर बीसवीं सदी के प्रथम दशक तक माना गया है। लगभग पचास वर्ष के रचनाकाल को देखें तो ईसुरी इस अवधि में भी संघर्षों की राह से ही गुजरे हैं। वैसे उनका सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षों की भट्टी में तपता रहा है – जन्म के साथ ही उनकी माँ श्रीमती गंगा दिवंगत हुईं। शैशव काल में ही पिता पं. भोले तिवारी जो जुझौतिया ब्राह्मण अड़जरिया तिवारी थे, दिवगत हो गए। तब उनके मामा पं. भूधर नायक हरपालपुर (म.प्र.) के निकट ग्राम लुहरगाँव कोंनियां से आए और शिशु ईसुरी को उनकी जन्म भूमि मऊरानीपुर के समीप ग्राम मेंढ़की से अपने साथ ले गए। ईसुरी का लालन–पालन ननिहाल में मामा भूधर नायक के द्वारा ही सम्पन्न हुआ। ईसुरी अशिक्षित थे, यह बात मानने योग्य नहीं है। उस समय ब्राह्मण बालक का विद्यारम्भ (पाटी पूजन) अमरकोश से किए जाने की प्रथा थी। अत: वे संस्कृत ज्ञान से भी अछूते नहीं कहे जा सकते।

मामा पं. भूधर नायक नि:सन्तान थे, अत: उन्होंने अपने भानजे ईसुरी को दत्तकपुत्र रूप में स्वीकार कर लालन–पालन किया। उस युग में वहाँ शिक्षा के जो साधन उपलब्ध थे, सो उनके अनुसार पढ़ाया–लिखाया भी, और कम उम्र में ही नौगाँव (बुन्देलखण्ड) के निकट ग्राम सींगोंन में लड़की पसन्द करके ईसुरी का विवाह भी कर दिया गया। घर में बहू के आ जाने के कुछ ही दिन बाद मामाजी को भी पुत्र रत्न प्राप्त हो गया अर्थात् उनकी जायदाद का असली बारिश आ गया। तब मामा–मामी की ईसुरी के प्रति भावना बदल गई। बहू सहित ईसुरी को घर से निष्कासित कर दिया गया। ईसुरी अपनी ससुराल ग्राम सींगोंन में जाकर रहने लगे। बुन्देलखण्ड में उक्ति प्रसिद्ध है कि – ''ससुराल में रहना और गधे पर चढ़ना बराबर होता है।'' यहीं से ईसुरी की संघर्ष कहानी शुरू हुई। कुछ ही दिनों में निकट के ग्राम धौर्रा के जागीरदार (सामंत) श्री जंगजीत सिंह मुसाहिब जू उन्हें मुख्तार आम बनाकर अपने यहाँ ले गए। समझा जाता है कि उसी समय धौर्रा में वे किसी रूपसी को अपना दिल दे बैठे (सम्भवत: वह रूपसी मुसाहिब जू यानि सामन्त परिवार की रही हो) लेकिन वह प्यार एक तरफा ही रहा क्योंकि एक साधारण मुख्तार आम के लिए वह दुर्लभ अवश्य थी। जीवन में कभी उन्हें वह छूने तक को नहीं मिली। ईसुरी के ही शब्दों में देखें –

''देखी रजऊ काऊनें नइयाँ, कौन वरन तन मइँयाँ।
पैलऊँ भेंट हमइँ सें ना भई, सोइ कृपा हम पइँयाँ।....''

कदाचित् इस वियोग की स्थिति से ही ईसुरी के हृदय में कवि ने जन्म लिया– कहा भी गया है कि – ''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान....'' इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं ग्राम धौर्रा जाकर ईसुरी के रहने का वह घर देखा है जो सामन्त मुसाहिव जू के विशाल भवन के ठीक पिछवाड़े हैं, आज भी वहाँ कोई आम रास्ता नहीं है और न ही मुसाहिब जू के मकान में पीछे की ओर कोई झरोखा है। यह सब देखकर ईसुरी की यह पंक्तियाँ स्मरण हो आईं –

''मोरे दोरे कोद दुआरौ, भऔ न रजऊ तुमारौ।
मोरे दोरें भऔ तुमारी, बखरी कौ पिछवारौ।
नाँय खों आवागमन हती ना, माँय हैं गलयारौ।
आर कौ पार बनालऔ चइये, इक छोटो सौ आरौ।
जी में ईसुर तुम तन लखते, तुम जब चाँय निहारौ।

ठीक यही भौगोलिक स्थिति आज भी वहाँ यथा स्थिति है। जिसे देखकर वियोगी कवि की वेवशी अनकहे देखते ही समझ में आ जाती है जो इन पंक्तियों में सहज मुखरित हुई।

संस्कृत के अमर काव्य 'मेघदूतम्' में कालिदास का वियोगी यक्ष अपनी नायिका से सैकड़ों कोस की दूरी पर है। वियोगी की स्थिति में वह चेतन और अचेतन का अन्तर भूल कर मेघ के आगे गिड़–गिड़ा कर कहता है कि – तुम मेरा प्रेम सन्देश अलकापुरी में मेरी प्रेयसी तक पहुंचा दो मित्र। परन्तु कवि ईसुरी की स्थिति उनसे भिन्न है। उसकी नायिका कालिदास की नायिका की भाँति नायक से सैकड़ों तो क्या एक कोस की भी दूरी पर नहीं है। मात्र गरीबी और अमीरी के बीच एक दीवार ही बाधा है। नायिका दीवार के उस पार और नायक इस पार खड़ा अपनी नायिका की बेवशी की कल्पना करता है कि –

''पंछी भये न पंखन बारे, इतनी जाँगा हारे।
कड़–कड़ जात साँसन में हो, अड़ते नईं किवारे।''

और अन्त में –

"ईसुर उड़ प्रीतम सों मिलते, जाँ होंय यार हमारे।।"

वियोग की स्थिति यहाँ निश्चय ही ईसुरी को कालिदास से आगे खड़ा कर देती है। तब नायक की स्थिति तो पराकाष्ठा की सीमा को लांघकर लौकिक प्रेमासक्ति को पारलौकिक श्रेणी में पहुँचा देती है –

"विधना करी देह ना मेरी, रजऊ के घर की देरी।
आवत–जात चरन की धूरा, लगत जात हर बेरी।......"

अपनी नायिका के घर की देहलीज होने की कशिस को देखिए कि नायिका के चरणों की धूलि के स्पर्श की कामना ने उसके प्रेम और आसक्ति को कहाँ पहुँचा दिया। हिन्दी साहित्य में इतनी सशक्त अभिव्यक्ति दुर्लभ ही है। इसीलिए विद्वानों ने ईसुरी को प्रेम और आसक्ति का कवि निरूपित किया जो कि वह उसका मात्र एक पक्ष है। वस्तुतः ईसुरी स्वयं में सम्पूर्ण कवि है। अतः न केवल श्रृंगार वरन आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में भी वह उतना ही वजन रखता है –

"बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींट उठी माटी की, छाई फूस–चारे की।
बे बन्देज, बड़ी बे–बाड़ाँ, तई पे दस द्वारे की।
किवार–किवरियाँ एकऊ नयाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चाँयँ निकारों जिदना, हमें कौन वारे की।।"

कबीर इस नश्वर देह को झीनी चादर कह कर जिन भावों के ताने–बाने बिनते हैं उससे आगे ईसुरी ने उसे सिर्फ किराए का मकान मानते हुए उसके प्रति मिथ्या मोह की आसक्ति पर प्रहार कर जिस निर्लिप्तावस्था की बात कह डाली वह अनूठी है। कबीर की निर्गुण–ज्ञानाश्रयी धारा हो या सूर–तुलसी की सगुण उपासना के रस में डूबी भक्ति भावना की धारा, ईसुरी की उपस्थिति सर्वत्र उसी जीवन्तता के साथ हम देख सकते हैं –

"रामें लएँ रागिनी जी की, लगत सुनत में नीकी।
कैऊ सास्त्र, पुरान आठारा, चार वेद सों झींकी।
गैरी भौत अथाह भरी है, थाह मिलै ना ई की।
ईसुर साँसऊँ सरग नसेंनी, रामायन तुलसी की।।"

न केवल श्रीराम के प्रति अनुराग वरन राम के गुण गायक तुलसी पर भी बलिहार हैं। रामभक्ति के साथ तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस जैसे महाकाव्य का अध्ययन कोई पढ़ा–लिखा ही कर सकता था। इससे ईसुरी के शिक्षित होने का प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार महाकवि सूर के भ्रमर गीत परम्परा को आगे बढ़ाते हुए ईसुरी की अभिव्यक्ति दर्शनीय है –

"हो गई स्याँम बिछुरतन जीरन, ब्रज की एक अहीरन।
बन–बन व्याकुल फिरत ईसुरी, राधा भई फकीरन।।"

यहाँ राधा भई फकीरन में मात्र एक शब्द फकीरन की भाव संप्रेषण शक्ति को देखें तो थोड़ी देर के लिए हम ईसुरी को सूर से भी आगे खड़ा पायेंगे।

समाज सुधार की दिशा में ईसुरी एक जागरूक प्रेरक कवि सिद्ध होते हैं। उस युग में सामन्तों के विरुद्ध मुँह खोलना टेड़ी खीर था। परन्तु ईसुरी ने कहा –

"चौपर है राजन के लाने, जिनें जगीरी खानें।
बड़े भोर सें बिछौ गलीचा, ठान ओई की ठानें।
निसदिन तार लगी चौपर की, मरे जात भैरानें।
कात ईसुरी जुरकें बैठत, लवरा कैऊ सयाने।

यहाँ सामन्तों के निठल्लेपन को रेखांकित कर भूखे पेट मरने वालों को नसीहत दे रहे हैं कि यह चौसर का खेल हम गरीबों के लिए नहीं है..... आदि। तो व्यसन के विरोध में भी ईसुरी कहने से नहीं चूकते –

"गाँजो पियो न प्रीतम प्यारे, जर जें कमल तुमारे।
जारत काम, विरागत सूरत, सूकत रकत नियारे।।...
ईसुर कात–छोड़ दो ईखों, हौ उम्मर के बारे।।"

ईसुरी एक सर्वहारा कवि हैं, गरीब आदमी की गरीबी और उसकी पीड़ा की अनुभूति के सशक्त कवि।
उद्धरण देखें –

"आसों दै गओ साल करोंटा करौ खाऔ सब खोंटा।
गोंऊँ पिसी खों गिरूआ लग गओ, महुअन लग गओ लोंका।
ककना–दौरीं सब धर खाए, रै गओ फकत अनोंटा।
कात ईसुरी बाँधे रइयो, जबर गाँठ को फेंटा।।"

आम आदमी का पेट–पालने वाला बुन्देलखण्ड का जातीय वृक्ष महुआ था। महुआ ही यहाँ का पूरक भोज्य पदार्थ था, यदि यह भी न होता तो यहाँ उस समय जीवन भी सम्भव न होता। तभी तो लोकोक्ति प्रचलित हुई कि –

"महुआ मेवा, बेर, कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।
इतनी चीजें चानें हों तो करियो इतैं सगाई।।"

उसी समय अँग्रेजों ने झाँसी से मानिकपुर के लिए रेल लाइन बिछाई थी। उस समय रेल की पटरी के नीचे साखू की लकड़ी के स्लीपर लगाए जाते थे। बुन्देलखण्ड में साखू उपलब्ध न था। तब इंजीनियरों ने साखू के विकल्प में महुए की लकड़ी के स्लीपर लगाने को स्वीकृत दी। अँग्रेज साहबों का हुकुम था, सामन्तों ने उस हुक्म का पालन कर युद्ध स्तर पर महुए की कटाई शुरू कर दी। जिसका मतलब था गरीबों के पेट का भोजन छीन लेना। अँग्रेजों और सामन्तों के विरुद्ध उस युग में मुँह खोलना मामूली बात न थी। उस समय ईसुरी से चुप न रहा गया। उन्होंने मुक्त कंठ से विरोध किया –

"इनपै लगै कुलरियाँ घालन? महुआ मानस पालन।
इने काटबों नइँ चइयत तो, काट देत जे कालन।।"

इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि यह तो मनुष्य जीवन के लिए प्रकृति की अनमोल देन है, इसे किसी ने लगाया थोड़े ही हैं।

..........ऐसे रूख भूख के लानें, लगवा दये नंदलालन।
जे कर देत नई सी ईसुर, भरी मराई खालन।

इनपै लगे कुरलियाँ घालन?......''

कौन होगा जो उस युग में लिखी इन पंक्तियों को पढ़कर भी ईसुरी को अपने युग का प्रगतिशील एवं सर्वहारा कवि मानने से इन्कार करेगा? ''मधुशाला'' के अमर गायक डॉ. हरवंशराय बच्चन लिखते हैं कि– *''जब मैंने यह रुबाई लिखी –*

''मेरे शव पर वह रोए, हो जिसके आँसू में हाला,
आह भरे वह जो हों सुरभित मदिरा पीकर मतवाला।
दें मुझको वे कंधा जिनके पद मद डगमग होते हों–
और जलूँ उस ठौर जहाँ पर कभी रही हो मधुशाला।।''

तब – *''यारो इतनों जस कर लीजो, चिता अन्त न कीजौ।*
चलत सिरम सों वहै पसीना, भसम पै अन्तस भींजौ।
निगतन खुदै चेटका लातन, उन लातन मन रीझौ।
वे सुर्स्ती ना होंय रात–दिन, जिनके ऊपर सीजौं।
गंगा जू लों मरें ईसुरी, दाग बगौरा दीजौं।।''

लिखने वाले ईसुरी की आत्मा की छाया मेरे ऊपर ही रही होगी।

आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे सशक्त कवि ईसुरी को कुछ लोग जिन्होंने ईसुरी को पर्याप्त पढ़ा भी नहीं है वे प्रेम और श्रृंगार का उद्‌दाम ही नहीं वरन ''लम्पट'' कवि कह कर उसे खारिज करने पर तुले हुए हैं। जबकि ईसुरी बुन्देलखण्ड के जीवन में कितने रचे बसे हैं और निजी जीवन में उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा तथा अपने काव्य में प्रेम और श्रृंगार के कमल खिलाने के लिए कितने गहरे पंक में धसना पड़ा, यह सब जानने की जरूरत है। नये दृष्टिकोण से ईसुरी के युग एवं परिवेश की वास्तविकता को समझ कर उनके जीवन और काव्य की पुनर्व्याख्या की नितान्त आवश्यकता है। ईसुरी को सबसे पहले जाना राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रेरक कहे जाने वाले कवि श्रेष्ठ मुंशी अजमेरी जी ने जिनका वास्तविक नाम श्री प्रेम बिहारी था। उन्होंने ही सबसे पहले ईसुरी के बुन्देली गीतों को रागबद्ध स्वर में गाया और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को सुनाया........। बड़े–बड़े साहित्य सम्मेलनों में उन्होंने ईसुरी को सोदाहरण प्रस्तुत किया। तभी बच्चन जी जैसे उस युग के हिन्दी कवियों ने ईसुरी का लोहा माना। तब ओरछेश वीरसिंह जू देव (द्वितीय) ने पैसा खर्च करके ईसुरी के साहित्य को जो मौखिक परम्परा में ग्राम्यांचल में बिखरा पड़ा था, संग्रह की पहल की। पैसा ओरछा नरेश का और कार्य करने वाले बाबू कृष्णानन्द गुप्त, पं. गौरीशंकर द्विवेदी जैसे लोग। इनके संग्रह महाराजा के पैसे पर कुण्डेश्वर में ही बैठे–बैठे तैयार हुए। विचारणीय हैं कि पैसे के लालच में तब ईसुरी के नाम की छाप लगाकर गाने वाले कितने लोगों ने इन महारथियों से सम्पर्क न किया होगा? परन्तु इन सभी ने बगैर सम्पादन के अपने संग्रहों को ज्यों का त्यों प्रकाशित किया था। आज के शोधार्थी उन्हीं प्रकाशनों के इर्द–गिर्द ईसुरी पर शोध कर रहे हैं। जब वे प्रकाशन ही प्रामाणिक नहीं है, तब उनके आधार पर ईसुरी पर शोध कार्य कितना प्रामाणिक होगा? यह प्रश्न हमारे सामने है। अस्तु–आवश्यकता इस बात की है कि ईसुरी का रचनाकाल जिन ग्रामों में बीता, उन ग्रामों की भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया जावे। क्योंकि कहा गया है कि ''कोस–कोस पै पानी बदले, बीस कोस पै बानी।'' जबकि बुन्देलखण्ड का क्षेत्र नर्मदा से यमुना तक और चम्बल से टोंस नदी तक फैला हुआ है जिसमें वन, उपवन, पर्वत श्रृंखलाओं और नदियों ने बोली जाने वाली भाषा को अनेक रूपों में विभाजित किया है। ईसुरी की जन्म भूमि मऊरानीपुर के निकट ग्राम मेंढ़की के क्षेत्र में बोले जाने वाले किंचित क्षेत्रीय प्रभाव का अंश भी ईसुरी की भाषा में नहीं है। धसान नदी के उस पार का क्षेत्रीय प्रभाव ही उनकी रचनाओं में देखने को मिलेगा। इसलिए भाषा के आधार पर ईसुरी की वास्तविक सर्जना को खोजकर, बिल्कुल नए सिरे से शोध कार्य करने की महती आवश्यकता है। यदि ऐसा हो जावे तो मध्य युगीन काव्य के इतिहास में ईसुरी का महत्वपूर्ण नया पृष्ठ जुड़ जायेगा। परन्तु प्रश्न तो यही है कि यह श्रम साध्य कार्य करे तो कौन करे? जब घर बैठे सिर्फ टेबिल वर्क करने पर पत्रोपाधि मिल सकती है तो यथार्थ शोध हेतु श्रम क्यों कोई करेगा?

ईसुरी अपने संघर्षशील जीवन की ऊहा–पोह में जब ग्राम बगौरा पहुँच गए तो वहाँ राई लोक नृत्य के लोक गायक श्री धीरे पण्डा से उनकी मैत्री हो गई। धीरे पण्डा ने ईसुरी की कुछ श्रृंगारिक गीत रचनाओं की लोक संगीत में ढालकर 'राई' में गाया। बस वहीं से ईसुरी जैसा समर्थ कवि 'फोकलोर' के जंगल में खो गया। ईसुरी के नाम की छाप लगा–लगाकर गाने वाली लोक परम्परा बन गई। सूर, तुलसी, कबीर के मन की छाप भी लोक गायक लगाते आ रहे हैं। कबीर गीतों का अश्लील स्वरूप उसका प्रमाण है। उससे कबीर का दूर का भी रिश्ता नहीं है। ठीक वैसे ही ईसुरी के नाम की छाप का भी बुन्देलखण्ड में भरपूर दुरुपयोग हुआ है। लोक संगीत की परम्परा के जंगल में भटके श्रेष्ठ कवि को सबसे पहले खोजने वाले स्व. मुंशी अजमेरी जी ही नहीं, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, हरवंशराय बच्चन, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' जैसे मनीषियों की आत्मा स्वर्ग में भी रो रही होगी कि ईसुरी जैसे कवि श्रेष्ठ को उसके यथार्थ से हटाकर लेखक अब अपने उपन्यास का नायक बनाकर उसे शुद्ध लम्पट कवि निरूपित कर रहे हैं? ऐसे विद्रूप लेखन का पुरजोर विरोध एवं तिरस्कार अवश्य किया जाना चाहिए। सोना सदैव सोना ही रहता है। ईसुरी को भी ऐसे अनभिज्ञ लेखक नष्ट कभी नहीं कर सकेंगे। आज नहीं तो कल शोधार्थी गहरे पैठ कर ईसुरी जैसे सशक्त हस्ताक्षर पर वास्तविक शोध अवश्य करेंगे। ईसुरी हिन्दी साहित्य में वह स्थान प्राप्त करेंगे जिसके वे अधिकारी हैं। निश्चय ही ईसुरी मध्य युगीन हिन्दी की महत्वपूर्ण धारा बुन्देली भाषा साहित्य के महाप्राण ठहराते हैं।

– कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म.प्र.)

भक्ति रससिद्ध - कवि चन्द्रसखी

- डॉ. रामनारायण शर्मा

साहित्य के इतिहास मे 'भक्ति–काल' के नाम से अलग से काव्य–प्रधान समय निर्धारित है जो सन् १४०० से १७०० ई. तक का माना जाता है। वैसे प्रत्येक काल में विविध काव्य, साहित्य रस की रचना होती रहती है। ''भक्ति उपजी द्रावड़े लाये रामानन्द' के अनुसार भक्ति भाग का संचार समाज में दक्षिण भारत से उत्तर में हुआ। जिसे अन्याय भक्त–प्रवर मनीषियों ने अपने आराध्य देवों के अनुसार प्रचारित किया। इन्हीं आधारों पर रामानन्दाचार्य, बल्लभाचार्य गुरु गोरखनाथ प्रभृति के नामों से भक्ति सम्प्रदाय बने। जिन्होंने तत्कालीन साहित्य को प्रभावित किया। राम–कृष्ण की भक्ति–धारा के भाव इन्हीं भक्ति–सम्प्रदायों के अनुयायियों के रचना–काव्य बने। बुन्देलखण्ड में कृष्णभक्ति की धारा, उनके दुष्ट–दलन, बाल–स्वरूप आत्मानंद और सर्वसाधारण जन की इच्छा की अभिव्यक्ति बनी। 'यथा–राजा, तथा प्रजा का भी इसे आधार मिला। १६वीं सदी बुन्देलखण्ड में वीर–बुन्देलों को समर्पित रही और बुन्देले अपने 'जुगल किशोर' की भक्ति को समर्पित। महाराज मधुकर शाह स्वयं कृष्णभक्त थे। किन्तु महारानी कुंवर–गणेश द्वारा श्रीराम की ओरछा में 'राम–राजा' की प्रतिस्थापना से कृष्ण–राम की भक्ति का संचार हुआ। ऐसे समय में भक्ति–काव्य की धारा भक्ति–सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों और राजाश्रय के माध्यम से निस्रत हुई। जो आज भी इन्हीं रूपों में प्रवहमान है।

ऐसे ही भक्ति रस सिद्ध कवि 'चन्द्रसखी' हुये हैं। जो ओरछा में महाराज उदैत सिंह के राज्याश्रय में राज–कवि रहे।

कवि 'चंद्र–सखी' के विषय में विद्वानों में मत–विभेद हैं। 'चन्द्र–सखी' कवि थे अथवा कवियत्री आदि प्रश्न साहित्यिक क्षेत्रों में उठाये गये। इनका नाम दीवान प्रतिपाल सिंह के बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास तथा पं. गौरीशंकर द्विवेदी के 'बुन्देल वैभव' में नहीं होने का कारण ओरछा राज्य के पराभव के बाद 'चन्द्र–सखी' अन्य समकालीन कवियों की भांति राजस्थान गमन कर गये हो सकता है। जहाँ आपके रचित भजन अत्यधिक लोकप्रिय हुये। जैसा कि राजस्थान पत्रिका (राजस्थान–भारती) के अप्रैल १९५० अंक में दिया गया है। इसी प्रकार भक्ति–संप्रदाय के कवियों द्वारा अपने प्रभु की साधना में 'सखी–भाव' की उपासना से 'स्त्री–वेश' धारण किया जाता रहा। 'चंद्र–सखी' भी राधा–कृष्ण के अनन्य उपासक थे। अतएव कवि ने सखी–भाव के आधार पर ही 'चन्द्र–सखी' नाम से भक्ति–रस के काव्य की रचना की हो। इसके विपरीत कतिपय विदुषी लेखिकायों ने (डॉ. सावित्री सिन्हा ने मध्यकालीन हिन्दी कवित्रियाँ में और पद्मावती शबनम) इन्हें कवित्रियों की कोटि में रखा। किन्तु इनके नाम के बुन्देली काव्य में इन्हें कवि रूप में ही मान्यता मिली है।

जन्म व जन्म स्थान – चन्द्र–सखी के विषय में सभी मत–मतान्तरों के बाद जो तथ्य सामने आये, उनके अनुसार इनका जन्म ओरछा में लगभग १५८९ वि. में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वेतवा नदी के तट पर पहाड़ी पर बने मठ को उनकी पूजा–स्थली और निवास बताया जाता है। इनकी मृत्यु वि.सं. १६५६ वि. के लगभग ओरछा में ही हुआ बताते हैं।

काव्य सृजन – 'चंद्र–सखी' भक्ति–रस के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। वैसे दरबारी कवि जैसे गुण–गान काव्य देखने को नहीं मिलते। 'चन्द्र–सखी भज बाल कृष्ण छवि' की छाप वाले उनके भक्ति–रस सिद्ध गेय पद बहुत लोकप्रिय हुये। इस पद में इनकी स्पष्ट झलक मिलती है।

कहन लागे मोहन मैया मैया।
नन्द बाबा जू से बावई बाबा बल्दाऊ से भैया।
दूर खिलन जिन जाओ मोहन, मारैगी काहू की गैया।
ऊँचे अटा चढ़ टेरौ जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।।
एकन के दो चार खेलत हैं, मेरो अकेलौ छैया।
'चन्द्र सखी' भज बाल कृष्ण छवि, जसुदा लेत बलैयां।।

एक मत यह भी है कि प्रेमाधिक्य में कवि ने अपने को राधा–कृष्ण की अन्तरंगभूत सखी–भाव के रूप में मान कर पदों का सृजन किया इनमें भजन व गेय पदों की प्रधानता है, किन्तु समकालीन राधाकृष्ण भक्ति प्रेम रस की जो काव्यधारा प्रवहमान रही, उसके अनुसार – 'चन्द्र–सखी' के नाम से लीला, केलि, विलास, रास, छेड़–छाड़, मिलन की युक्तियो के काव्य भी देखने को मिलते हैं। चन्द्र–सखी का एक रसिया दृष्टव्य है –

रसिया बनो मदन मोहन प्यारे।
फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, युवती जन मोहन प्यारे।
पीताम्बर की कछनी काछे, क्रटि मुकुट कुंडल वारे।
ब्राजत ताल मृदंग, झांझ, ढप, वीर, चंग न्यारे।
'चंद्रसखी' भज बाल–कृष्ण छब, तन–मन–धन तौ पै बारे।

एक दूसरे मधुर रसिया में 'चन्द्रसखी' का प्रेमाधिक्य और छेड़–छाड़ युक्तियों की छटा निराली है –

नेक ठाढ़े रहो रसिया रंग डारों।
अबीर–गुलाल मलों मुख तोरे, गुलचा गालन मारों।
चौबा–चन्दन और अरगजा, घिस घिस तो पै डारों
'चन्द्र सखी' भज बाल कृष्ण छब, तन–मन–धन तो पै बारों।

एक रास–रंग गीत में कृष्ण–भक्ति रसधार का प्रवाह

देखने योग्य है –

कहूँ राधे जी के संग, ऊधौ नचत कन्हैया संग।
ताथा थेई नचत ग्वालिनी, संग नचें गोविन्द।
ढप बाजे मिरदंग खंजड़ी, मनमोहन मौचंग।
वेद पढ़ते ब्रह्मा आये, इन्द्रासन तें इन्द्र।
छत्तिस कुरी छतीसऊ देवता, संग राजा हरिचंद
'चन्द्रसखी' भज बाल कृष्ण छवि, उठे छतीसउ रंग।

चन्द्र–सखी नाम से अनेक काव्य–निधि रूप देखने को मिलते हैं जिनमें सखि भाव के दर्शन होते हैं। इस छंद में सखि–उपालंभ रूप प्रस्तुत हैं –

आये ना श्याम सखी दौरें में गांड़ी रई केसर घोरैं।
कुमकुम बीर अबीर धरैं रई, लाल गुलाबी रज जोरें।
तरसत रई उनें तकबे कों, नेह भरी दोऊ दृग कोरें।
करती भेंट गरे लग लग कें, जेइ लालसा रइ मोरें।
चन्द्रसखी मोहन सें कैयो, प्रीति लगा कें ना टोरें।

इसमें शब्द विन्यास, काव्य लालित्य के साथ प्रेमाधिक्य का अद्भुत प्रदर्शन हुआ है। कवि 'चन्द्रसखी' के नाम से छन्द दार फागें भी मिलती है। इस छंद में बुन्देलखण्ड की छंददार फागों के रस के साथ ही ऋतु वर्णन बहुत ही स्वाभाविक हुआ है। कुछ अंश देखिये –

आये ऋतुराजा सज आली, छाई जरदी लाली।
छंद – तरु करें झार, निस घटनहार, दिन को निहार ठहराए
चेरी के संग, हर करैं रंग, तन से अनंग जामन आए
उड़ान–सो देकें कढ़ गये चाली।
टेक – कहयत कठिन, कंस की दासी, नंदलाला घरघाली।
छंद– घर लओ घाल, श्री नन्दलाला, करके निहाल आये आली।
तज दई नार षट दस हजार, चेरी के साथ रह गये हाली।
उड़ान–सो हर की राह निराली।
टेक – जागत जात सखी री रजनी, सेज डरी है खाली।
छंद – खाली है आज, करे किन के साथ, आनन्द के काज, हर ना आये।
छा रहे अन्त, दिन रही गिन्त, ना चले जन्त हर तरसाए।
उड़ान–सो डार गये हैं जाली।
टेक – 'चन्द्रसखी' आशा चरनन की अधर की चाल निराली।

एक अन्य छंद में कवि अपने आराध्य से अपने उद्धार की गुहार इस प्रकार लगता है –

दोहा –दधि माखन सब खायकें हम कों दयो बिसार।
'चन्द्रसखी' किहिं अरज प्रभु, सुनिए नंदकुमार।
सैर – सुनिये कुमार नन्द के जा अरज हमारी।
प्रभु बूड़त देखु सिन्धु आन लेउ उबारी।

सम्भवत: कवि की यह अंतिम 'अरदास' रही हो। 'चंद्रसखी' का निधन ओरछा में ही हुआ था और वेत्रवती के तट पर पहाड़ी पर शेष–विशेष स्थाल अभी विद्यमान है जिसे लोग इनकी समाधि बताते हैं।

संदर्भ सूत्र –

१. डॉ. श्याम सुन्दर बाल रचित ''फाग साहित्य' ग्रंथ
२. डॉ. ग.ला. बुधौलिया रचित 'बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य'
३. आचार्य द्वारिका प्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश' आलेख झांसी के विद्यमान कवि
४. डॉ. रामनारायण शर्मा रचित ''बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास

– ६९५/३, सिविल लाइन्स,
रानी लक्ष्मीबाई पार्क के सामने, झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देली लघुकथा –

नौकरी को मतलब

– डॉ. सुश्री शरद सिंह

उन्ने श्यामा खों देखो सो ऊके ऐंगर लपक परीं। 'आजकाल तुम दिखातीं नइयां, काए का हो गओ? हमसे खपा हो का?' उन्ने श्यामा से पूंछी।

'अरे नईं, हम तुमसे काए खपा होबी? असल में बात जे है के आजकाल मूंड़ उठाबे की फुरसत नईं रैत है ... जे जब से नए साब आए हैं न... जे भौतई कड़क टाईप के हैं। जो कोनऊ गप्पें करत दिखानो नई के ऊको चिठिया पकरा दई जात है। मोए सो बड़ो डर लगत है। जे ई से मैं तुम ओरन के लिंगे आ नईं पात हों!' श्यामा ने कही।

'जे तो तुमसे सांची कही, जे नए साब हमाए दफ्तर में सोई कभऊँ–कभऊँ आ जात हैं... उनकी कही में आ के हमाए साब सोई ऐंड़ दिखान लगत हैं। हमने सोसी रई के जाड़ो जात–जात एकाद सूटर उर इतई बुन लेबी पर जाड़ो पूरौ कढ़ गओ सलाइयन खों हाथ लगाबे की हिम्मत न बन परी... कौन जाने तुमाये साब कब आ धमकें उर हमाये साब हमें चिठियां पकरान लगें। सच्ची, बड़े कुदर हें तुमाये जे नये साब!' बे मन मसोसत भईं श्यामा से बोलीं।

'तुम सूटर की कै रईं? हम ओरें तो गप्पे नईं मार पात हैं। पूरो–पूरो दिन ऊसई सो कढ़ जात है। अपने दफ्तर में इत्तो काम सो मैंने अबलों नई करो जित्तो जे दो मईना में करने परो है ... अब तो जी करत है के वी.आर.एस. ले के घरे बैठ जाओं!'

'हऔ, सांची कही! अच्छो टेम पास करबे के लाने सो नौकरी करी...अब इते बोले–बतियाबे खों, सूटर–मूटर बुनबे खों न मिले सो ऐसी नौकरी को का मतलब? ई से तो अपने घरे अच्छे!' उन्ने सोई हामी भरत भई बोलीं।

– रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड की समाप्त होती स्वस्थ परम्पराएँ

- कु. रामकिशोरी गुप्ता

भारतीय संस्कृति और विशेष रूप से हिन्दू धर्मावलम्बियों में सोलह संस्कारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन सोलह संस्कारों में विवाह–संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो किसी न किसी रूप में समस्त विश्व में व्याप्त धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि सभी में सम्पन्न होता है क्योंकि इसके बिना सृष्टि का संचालन सम्भव नहीं।

बुन्देलखण्ड में विवाह संस्कार के कुछ अपने ही रंग और ढंग होते हैं। वर पक्ष जब कन्या पक्ष के द्वार पर तिलक के लिए पहुँचता था, तो तिलक होने के पूर्व कन्या पक्ष और वर पक्ष के परिजन तथा सम्वंधी आपस में एक दूसरे से भेंटते हैं तथा इस भेंट के माध्यम से एक दूसरे का परिचय एवं सानध्य प्राप्त करते हैं। इस दस्तूर को ''मिलकें'' कहा जाता है। कन्या–पक्ष मिलकों के समय वरपक्ष को अपनी सामर्थ्य एवं सुविधानुसार कुछ द्रव्य भेंटकर चरण स्पर्श करता था। यह दोनों पक्ष के परिजनों एवं सम्बन्धियों की परस्पर भेंट का प्रथम अवसर होता था जो अब धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है।

विवाह संस्कार विधिवत सम्पन्न हो जाने के पश्चात् कन्या पक्ष के लोग एकत्र होकर बारात के डेरा पर (वर पक्ष के ठहरने का स्थान) जाते थे। इस रस्म को ''पंचडेरा'' कहा जाता था। इस रस्म की विशेषता यह थी कि कन्या और वर पक्ष के लोग आपस में मिल बैठकर विवाह कार्य के समय हुई भूलों पर चर्चा कर अपने मनोमालिन्य दूर कर लेते थे जिसके कि भविष्य में उनके सम्बन्ध मधुर एवं सौहार्द्र पूर्ण बने रहें। इसमें एक आनन्द का विषय यह भी होता था कि कन्या पक्ष के आचार्य जनक के रूप में और वर पक्ष के आचार्य दशरथ के रूप में छन्दबद्ध एक दूसरे की प्रशंसा के पुल बांध दिया करते थे। यह रस्म तो अब पूर्णतः समाप्त हो चुकी है।

कन्या पक्ष की ओर से जब लड़की के भाइयों को प्रथम बार विदा कराने हेतु वर पक्ष के यहाँ भेजा जाता था तब अपनी हैसियत के अनुसार धातुपात्र अथवा मिट्टी के पात्र में लड्डू भरकर भेजे जाते थे जो ''मटकिया'' भेजना कहलाता था। कन्या पक्ष द्वारा भेजे गए इस मिष्ठान को परिजनों, सम्वंधियों एवं मुहल्ला पड़ोस में वितरित किया जाता था। इस प्रथा का रूप अब मिठाई के एक किलो/आधा किलो के पैकट ने लिया है।

विवाह के पश्चात् पड़ने वाले प्रथम श्रवण पर्व (रक्षाबंधन) के पूर्व वरपक्ष की ओर से कन्या पक्ष के यहाँ सावनी (श्रावणी) भेजी जाती थी। इसमें नववधु के लिए वस्त्राभूषण, वधू के छोटे भाई–बहिनों हेतु वस्त्र, लाख की चूड़ियाँ, श्रृंगार का सामान, चपेटा, चकरी भौंरा, भौंरिआ, छोटा के साथ विभिन्न प्रकार के खिलौना भेजे जाते थे। सावन मास में लड़कियों द्वारा खेले जाने वाला चपेटा का खेल तो अब समाप्त सा ही है। वरपक्ष अपनी हैसियत के अनुसार पाट की राखियों के साथ ही साथ स्वर्ण अथवा रजत से निर्मित राखियों के साथ मिष्ठान के रूप में लड्डू एवं बताश फेनी (बड़े–बड़े आकार के बताशा) भेजे जाते थे। कन्या पक्ष सावनी विदाई के रूप में अपनी हैसियत के अनुसार वर पक्ष की ओर से आये खबास (नाई) की विदाई की जाती थी। तथा खबास को अलग से विदाई दी जाती थी।

इसी प्रकार विवाह के प्रथम वर्ष में पड़ने वाली मकर संक्रान्ति के अवसर पर वरपक्ष द्वारा एक पात्र में गढ़िया घुल्ला (शक्कर से निर्मित हाथी, मोर, ऊँट, पशु–पक्षी, जेवर आदि के आकार की मिठाई) तथा धातु से निर्मित पहियादार हाथी घोड़ा भेजे जाते थे। इस अवसर पर भी कन्या पक्ष द्वारा विदाई के रूप में अपनी सामर्थ्यानुसार वरपक्ष को मकर संक्रान्ति पर बनाये जाने वाले तिली के लड्डू के साथ ही साथ अन्य प्रकार के लड्डू तथा द्रव्य भेंट की जाती थी।

गर्मी की ऋतु में जब आम गदरा कर पकने की स्थिति में आने लगते थे तब एक टोकरी को सजा–बजाकर उसमें आम भरकर वरपक्ष द्वारा कन्या पक्ष के यहाँ भेजे जाते थे। इसे ''रसाल'' भेजना कहा जाता था।

इस प्रकार विवाह से लेकर गौने तक के बीच की एक वर्ष की अवधि में कन्या पक्ष एवं वरपक्ष के मध्य सतत सम्पर्क एवं सौहार्द्र बनाये रखने में बुन्देलखण्ड में प्रचलित इन परम्पराओं का महत्वपूर्ण योग था। धीरे–धीरे यह परम्पराएँ समाप्तप्राय होती जा रही हैं। परिणाम स्वरूप कन्यापक्ष और वरपक्ष के मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों का धरण तेजी से होने लगा है। विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाने पर भी एक दूसरे पक्ष के परिजनों, सम्बन्धियों, का एक दूसरे से साक्षात्कार भी होना सम्भव नहीं रह गया है। अब विवाह एक संस्कार न होकर मात्र एक औपचारिक रूप ग्रहण कर चुका है जिसके दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं।

— पुराना पोस्ट आफिस के पास,
शक्ति टॉकीज रोड, टीकमगढ़

गंगा की बेटी नर्मदा की बहू : श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

- डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म गंगा किनारे प्रयाग में हुआ और ब्याही गयी नर्मदा–क्षेत्र खण्डवा में तथा उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र बनाया नर्मदा किनारे जबलपुर बुन्देलखण्ड को इस तरह इन पुण्य सलिलाओं के आशीष और स्नेह से उनका व्यक्तित्व अभिषिक्त था।

उन्होंने अपने लेखन और कृतित्व से बुन्देलखण्ड की नारी में स्वाभिमान और आत्म चेतना जगायी। उन्होंने नारी को न विद्रोही बनाने का प्रयास किया न स्वच्छन्द बनाने का, समाज की धुरी के रूप में प्रतिष्ठित कर परिवार और समाज में उसके सामन्यजस्यकारी स्वरूप को उभारने की कोशिश की। नारी की अधोगति के लिए उत्तरदायी तत्वों को ठोकरें मारकर हटाने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि पुरुषों में नारी के महत्व उसके सम्मान तथा उसकी मानवीय भावनाओं के प्रति एक सहानुभूति पूर्ण समझ विकसित करने की कोशिश उनके अधिकांश साहित्य में परिलक्षित होती है। महिला उत्थान के इस सामन्जस्यपूर्ण तरीके के कारण महिलाओं में उनका सम्मान भी बहुत था। इसका प्रमाण यह है कि महात्मा गांधी की अस्थि विसर्जन के लिए छः सात मील पैदल चलकर उनके साथ भारी संख्या में महिलाएं ग्वारीघाट गयी थीं। उनकी सब से अधिक ऊर्जस्वित लेखनी भी महिला झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई पर ही चली। यह कविता सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई। मानो पुण्यतोया कलिगंगा बेतवा मौसी ने अपने अंचल की कीर्ति उजागर करने के लिए उन्हें आशीर्वाद दे दिया हो। शायद इसीलिए यह रचना अमर हो गयी है। वैसे 'वीरों का कैसा हो बसन्त?' आदि सुभद्रा जी की सशक्त रचनाएँ हैं परन्तु वे सब समय सापेक्ष हैं। झाँसी की रानी कविता जैसा कालजयी प्रभाव अन्यत्र नहीं दिखता है।

'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' कविता की गायिका श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी और झांसी की महरानी लक्ष्मीबाई दोनों की कीर्ति को अक्षुण्य बना गयी हैं। अन्यथा देश में कितने बलिदानी हुए और उन पर काफी कुछ लिखा भी गया है, परन्तु उन वीरों तथा उस साहित्य का विशेष अवसरों पर ही स्मरण किया जाता है। चौरासी वर्ष पुरानी केवल यही एक कविता है जो कम से कम हिन्दी भाषी क्षेत्र में आबाल वृद्ध लोगों की जवान पर है। जो सुभद्रा जी एवं महरानी लक्ष्मीबाई की याद को ताजा रखती है।

२६ नवम्बर १९४९ को श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की मूर्ति का जबलपुर में अनावरण करते हुए श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने कहा था कि ''यदि उन्होंने केवल यही एक कविता लिखी होती और कुछ भी न लिखा होता तो भी अमर हो जातीं।'' यह भी विदित हुआ है कि खण्डवा के श्री शशिकान्त सोहानी ने तेरह भारतीय भाषाओं, पाँच बोलियों और अंग्रेजी में 'झाँसी की रानी' कविता के अनुवादों का एक संकलन प्रकाशित करवाया है।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म अपनी राष्ट्रीय चेतना के कारण लोहन्दा मानिकपुर की जमीदारी खोकर निहालपुर इलाहाबाद में बसे पूर्व जमीदार परिवार में नागपंचमी १६ अगस्त सन् १९०४ को हुआ था। उनके माता–पिता श्रीमती धिराज कुँवरि और ठाकुर रामनाथ सिंह की आठ सन्तानों में सुभद्रा जी सातवीं थी। उनके एक भाई राजबहादुर सिंह बहिनों को बहुत प्यार करते थे। वे उन्हें ऊँची शिक्षा दिलाना चाहते थे। उन्होंने तीन बहिनों–राजदेवी, सुन्दर और सुभद्रा को क्रास्थवेट नारी पाठशाला में भर्ती करवा दिया। तीनों बहिनें कविता करती थीं। उसी पाठशाला में पढ़ने के लिए इन्दौर से महादेवी वर्मा आ गयीं। एक ओर लड़की तोरन देवी शुक्ला भी कविता करती थी। इस तरह उस पाठशाला में पाँच बाल कवियित्रियाँ इकट्ठी हो गयीं। तत्कालीन प्रसिद्ध समीक्षक श्री मन्नन द्विवेदी ने प्रयाग की पाँच कवियित्रियाँ शीर्षक एक लेख लिख कर 'स्त्री दर्पण' पत्रिका में प्रकाशित करवाया था। इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि वे अच्छी कविता लिख रहीं थीं, तभी तो एक आलोचक का उनकी ओर ध्यान गया।

सुभद्रा जी अपनी बहिनों में सबसे अच्छी कविता लिखती थीं। उन्हें अपनी भावनाओं को शब्दायित करना तो आता था, लेकिन सांसारिक सम्बन्धों का ज्ञान नहीं था। इस सम्बन्ध में सुभद्रा जी की पुत्री श्रीमती सुधा अमृत राय ने सुभद्रा जी की जीवनी 'मिला तेज से तेज' में एक दिलचस्प घटना का उल्लेख किया है। सुभद्रा जी बचपन में सुभद्रा कुँवरि नाम से कविता लिखती थी। यह नाम उन्हें छोटा लगता था। क्योंकि इस समय अन्य कवियित्रियाँ और लेखिकाएँ अपने नाम के आगे अपने पति का नाम भी लिखती थी। सुभद्रा ने अपनी कविताओं को एक कापी में सुन्दर अक्षरों में लिख लिया और उस पर अपने नाम के आगे धर्मपत्नी राजबहादुर सिंह लिख लिया था। यह स्मरणीय है कि राजबहादुर सिंह उनके भाई थे। मजाक उड़ाया। छीना झपटी में कापी भी फट गयी। उन्हीं दिनों खण्डवा के एक प्रतिष्ठित राजपूत घराने के लक्ष्मण सिंह चौहान अर्थशास्त्र में एम.ए. करने इलाहाबाद आये। राजबहादुर सिंह से उनकी मित्रता हुई। घर आना–जाना भी होने लगा, तो राजबहादुर सिंह ने उन्हें सुभद्रा के लिए वर रूप में चुन लिया। २० फरवरी १९१९ के दोनों का

विवाह सम्पन्न हो गया। लक्ष्मण सिंह इलाहाबाद में पढ़ते रहे और सुभद्रा थियोसोफीकल स्कूल बनारस में आगे की पढ़ाई के लिए भर्ती हुई। सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन के समय गांधी जी के आव्हान पर दोनों ने पढ़ाई छोड़ दी और खण्डवा आ गये। खण्डवा आकर वे पं. माखन लाल चतुर्वेदी के पत्र 'कर्मवीर' में सहयोग करने लगे। सम्पादन सहयोग के साथ काँग्रेस का काम भी करने लगे।

लक्ष्मण सिंह की माँ ने उन्हें बहुत आर्थिक संकट झेल कर पढ़ाया था। अतः माँ की इच्छा थी कि लक्ष्मण सिंह वकालत कर घर की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को पुनः पटरी पर लायें। इसलिए उन्हें वकालत भी करनी पड़ती थी। 'प्रताप' के सम्पादक अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के एक उलाहने पर वे पूर्णतः सुभद्रा जी ने साथ कांग्रेस के संगठनात्मक काम पर लग गये। सुभद्रा जी वे उनके काम में कन्धे से कन्धा भिड़ा कर सहयोग किया। जबलपुर में झण्डा सत्याग्रह में सुभद्रा जी पहली महिला सत्याग्रही के रूप में जेल गयीं। पति-पत्नी अनेक बार जेल गये। सुभद्रा जी अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की सदस्य तथा सन् १९३७ में पुराने मध्यप्रदेश में विधायक भी रहीं।

राष्ट्रीय कार्य के साथ-साथ पति-पत्नी दोनों साहित्य सृजन भी करते रहे। लक्ष्मण सिंह ने 'कुली-प्रथा', 'गुलामी का नशा' 'उत्सर्ग' आदि नाटक लिखे और उनका मंचन भी करवाया। राष्ट्रीय चेतना फैलाने में उनका बहुत योगदान रहा। अंग्रेज सरकार ने उन नाटकों को जप्त तो किया ही और लक्ष्मण सिंह जी को दण्ड भी दिया। वे साहित्य का अधिक काम नहीं कर सके, परन्तु सुभद्रा जी घर गृहस्थी समाज तथा राष्ट्रीय काम के साथ ही साहित्य सृजन में अनवरत लगी रहीं।

उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर राष्ट्रीय होते हुए भी वात्सल्य रस की कविताएँ – मेरा नया बचपन, बालिका, परिचय आदि भी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। उनकी श्रृंगार रस की रचनाएँ – ठुकरा दो या प्यार करो, मानिनी राधे, प्रियतम से आदि हैं, जिनमें प्यार का तूफान नहीं है, बल्कि संयत मधुर रस का प्रवाह है। उनकी कविताओं का संग्रह 'मुकुल' नाम से प्रकाशित है। उस पर उन्हें सैकसरिया पुरस्कार भेंट किया गया था।

सुभद्रा जी ने लगभग पचास कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कहानियाँ मोटे तौर पर तीन प्रकार की हैं – आदर्शोन्मुख, यह उस समय लिखी जा रही कहानियों का मुख्य चलन था। उनकी अधिकतर कहानियाँ नारी प्रधान है। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं होगा कि उनमें महिला उत्थान का एक आन्दोलन है जो एक तरफ नारी की समानता, उससे मानवोचित व्यवहार और उनके उचित अधिकारों की वकालत करता है तो दूसरी तरफ नारी के नैसर्गिक गुण-ममता, दया, आत्मत्याग और सादगी को उभारने की कोशिश में करता है। अर्थात् स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में समरसता स्थापित करना उनका लक्ष्य है। दृष्टिकोण और गौरी कहानियाँ इनके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। दूसरी कहानियाँ यथार्थवादी हैं जिनमें प्रायः नारी-जीवन को नर्क बना देने वाली सामाजिक रूढ़ियों और उनके अनिष्टकारी परिणामों को चित्रित किया गया है। इस तरह की कहानियों के उदाहरण भग्नावशेष, होली, किस्मत, ग्रामीण, एकादशी आदि श्रेष्ठ हैं।

तीसरी कल्पना प्रधान कहानियाँ उन्मादिनी, मझली रानी आदि हैं। ऐसा आभास होता है कि इस तरह की कहानियाँ उनकी प्रारंभिक रचनाएँ हैं। उनकी शैली अपनी है। अधिकतर कहानियों में वे चित्र उपस्थित करती हैं और पाठक को कल्पना करने और समस्या की तह तक पहुंचने के लिए सोचने की काफी गुंजाइस छोड़ देती है। उनका आदर्श थोपा हुआ नहीं लगता है। वे उसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि और परिवेश इस तरह बना देती है। कि सब कुछ स्वाभाविक लगता है। उनके गद्य और पद्य दोनों में सरल और सरस भाषा और प्रसादमयी शैली का प्रयोग हुआ है, बल्कि गद्य में कहीं कहीं व्यंजना का सटीक प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ एकादशी कहानी को ले लें। एक गरीब ब्राह्मण की दस वर्षीय विधवा बेटी किस तरह बीड़ी भांजने वाले मुस्लिम परिवार में पहुँच जाती है। और वह वहाँ किसी तरह परिवारिक संस्कार और वर्तमान परिस्थितियों के संघर्ष में तिल-तिल करके मर रही है। यह सारी स्थिति व्यंजना से ही स्पष्ट होती है। बाल विवाह जैसी कुरीति पर भी सीधी चोट नहीं की गयी है। उसके फलितार्थ में बाल विवाह और कठोर सामाजिक रूढ़ियों के दुष्परिणामों पर व्यंजना के माध्यम से ही चोट पड़ती है। यह स्त्री की दुरवस्था का एक मार्मिक चित्रण है। जिसके अनेक उदाहरण वास्तविक जीवन में मिलते हैं। सुभद्रा जी सामाजिक सरोकारों और प्रतिबद्धताओं से भटकती हुई कहीं नजर नहीं आती हैं।

उनकी कहानियों के तीन संग्रह-बिखरे मोती, उन्मादिनी और सीधे साधे चित्र प्रकाशित हैं। बाद में उनके दामाद श्री अमृत राय ने जिस तरह अपने पिता मुंशी प्रेमचन्द की समस्त कहानियों को 'मानसरोवर' नाम से एक साथ प्रकाशित कर दिया है, उसी तरह अपनी सास श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के तीनों कहानी संग्रहों की कहानियों को 'सीधे साधे चित्र' नाम से एक साथ प्रकाशित कर दिया है। यह उनके साहित्य के अध्येताओं को अधिक सुविधाजनक हो सकता है।

१५ फरवरी १९४८ को नागपुर से जबलपुर लौटते हुए एक मुर्गी को बचाने के प्रयास में उनकी कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी। और जन मानस एवं मातृशक्ति-जागरण-यज्ञ की वह ज्योति अनन्त ज्याति में समा गयी। सुभद्रा जी के निधन पर पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा था कि ''सुभद्रा जी का जाना ऐसा मालूम होता है मानों झांसी की रानी की गायिका झांसी की रानी को कहने गयी हो कि लो फिरंगी को खदेड़ दिया गया है, और मातृभूमि आजाद हो गयी है।''

—पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र.

ओरछा के संत कवि पं. हरिराम जी व्यास

-डॉ. दुर्गेश दीक्षित, "कुण्डेश्वर"

साहित्य, संस्कृति, शौर्य और कला का संगम स्थल नगर ओरछा बुन्देलखण्ड का केन्द्र–बिन्दु रहा है। वीरसिंह बुन्देला, चम्पतराय और मधुकरशाह के शौर्य और पराक्रम, लाला हरदौल के उच्चादर्श, राजा मधुकर शाह और रानी गणेश कुंवरि की भक्ति–भावना, पंडित मित्र मिश्र जैसे उद्‌भट विद्वान, रीतिकाल के प्रथमाचार्य केशवदास, और उनकी कला–विदुषी शिष्या प्रवीणराय से ही सारा देश भली–भांति परिचित ही है। उसी पावन पुण्य स्थली पर 'हरित्रयी' के तीन विशिष्ट भक्त कवियों में पं. हरिराम जी व्यास प्रमुख थे। तत्कालीन महाराज मधुकरशाह उनके प्रिय शिष्य थे।

पं. हरिराम जी का जन्म ओरछा में संवत् १५६७ के अगहन कृष्ण ५ को वहां के एक संभ्राँत सनाढ्य ब्राह्मण के कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम "समोरवन शुक्ल और माता का नाम "देविका जी" था। बचपन से ही आप प्रतिभाशाली और कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। विद्वत्ता और पाण्डित्य, आपको पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। वे पुराणवक्ता और प्रभावशाली पंडित होने के कारण "व्यास जी" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके प्रिय शिष्य ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह उन्हें "गोस्वामी" की उपाधि से विभूषित करते थे। व्यास जी श्री राधाकृष्ण के युगल स्वरूप के अनन्य उपासक थे किन्तु साधु–मात्र के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ प्रेम था। श्री नाभादास जी की भक्तिमाल एवं श्री प्रियादास जी की टीका में उनके चरित्र का विस्तार पूर्वक चित्रण किया गया है। उनके समकालीन श्री ध्रुवदास जी ने भक्त नामावली में उनके परिचय में कुछ दोहे लिखे हैं जो इस प्रकार है –

"कहनी करनी करि गयो, एक व्यास इहि काल।
लोक वेद तप्ति के भजे, राधा वल्लभ लाल।।
प्रेम मगन नहि गन्यो कछू, बरना वरन विचार।
सबनि मध्य पायो प्रगट, लै प्रसाद रस सार।।"

'अनन्य मोदनी' में श्री प्रियादास जी ने व्यास जी पर कुछ दोहे लिखे थे। जिनमें उनकी भक्ति भावना और तन्मयता का वर्णन किया है।

बड़े कुलीन महन्तवर, पण्डित परम प्रवीन।
रसिक अनन्य प्रमान अति, श्रीमत् व्यास रंगीन।।
किये बहुत पद अति सुखद, बिमुखनि के मुखतोरि।
तामें कछुक सुनाइये, भक्ति अनन्य निचोरि।।"

'अनन्य सार। नामक ग्रन्थ में भारतेन्दु बाबू श्री हरिश्चन्द्र जी ने 'हरित्रयी' की भक्ति भावना पर एक छप्पय छंद की रचना की थी जो भक्ति क्षेत्र में प्रसिद्ध है –

"निम्बारक मत विदित प्रेम कौ सारहि जान्यौ।
जुगल केलि रस–रीति, भले करि इन पहिचान्यौ।।
सखी भाव अति चाव, महल के नित अधिकारी।
पिय हू सौं बढ़ि हेत, करत नित जिनपै प्यारी।।
जगदान चलायो भक्ति कौ, ब्रज सरवर जलज खिलि।
जान्यो वृन्दावन रूप हरिदास, व्यास, हरिवंश मिलि।।"

एक स्थल पर श्री वियोगीहरि जी ने व्यास जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है –

"भक्त सिरोमनि 'व्यास', ओरछा नगर निवासी।
श्री हरिवंश प्रसंस, सिष्य हित धाम विलासी।।
अनुरागी रस मसौ, रंगीलौ राधा पीकौ।
विधि–निषेध मग त्यागि पान किय घूँट अमीकौ।।
राधा बल्लभ सेइ निगम की कानि न राखी।
ब्रज विहार पद गाय, कही अति साँची साखी।
रसिका भरन अनन्य व्यास, जय आनन्द रासी।
श्री ब्रज चंद चकोर, राधिका चरन उपासी।।"

अपना यज्ञोपवीत तोड़कर नूपुर में बांधने की घटना का उल्लेख करते हुए नाभांदास जी ने भक्तभाल में एक यह छप्पय लिखकर व्यास जी की अनन्य भक्ति का परिचय दिया था–

"काहू के आराध्य मच्छ कछ, सूकर नरहरि।
बावन परसाधरन, सेतु बन्धनहु सैल करि।।
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लायें।
सुकुल समोखन सुअन, अचुत गोत्री जु लड़ायें।
नौ गुनो तोरि नूपुर गुह्यौ, महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के।।"

व्यास जी का मन वृन्दावन में रम गया था। वे अपना घर परिवार छोड़कर ब्रजभूमि में निवास करने लगे थे। श्री प्रियादास जी ने भक्ति–रसबोधिनी टीका में वृन्दावन निवास से सम्बन्धित छः कवित्त लिखे थे। उनके शिष्य महाराजा मधुकर शाह ने उन्हें पुनः ओरछा लाने का प्रयास किया। किन्तु उनका मन तो ब्रजभूमि में ही रम गया था –

"आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुरागि करि।
गयो हियो पागि होइ न्यारो तासो खीजिये।
राजा लैंन आयौ ऐ पै जाइबौ न भायौ
श्री किशोर अरुझाऔ मन सेवा मति भींजिये।।
चीरा जरकशी शीश चीकनौ, खिसिल जाय।
लेहु जू बंधाय नहिं आप बाँधि लीजिये।

गये उठि कुंज सुधि–आई सुख पुंज,
आए देखयौ बंधौ मंजु कहि कैसे मोपै रीझिये।''

संत सेवा के प्रति कितना प्रभाव रहा उनके मन में। उनकी पुत्री के विवाह के अवसर पर विविध प्रकार के सुस्वादु व्यंजन तैयार किये गये। उसी बीच न जाने कहाँ से एक साधु मण्डली उपस्थित हो गई। उनसे मिलकर व्यास जी इतने भाव–विभोर हो गये कि उन्हें बेटी के विवाह में पधारे हुए मेहमानों का ध्यान ही न रहा और सारे पकवान संतों को परोसकर खिला दिये –

''सुता कौ विवाह भयौ, बड़ो उत्साह कियौ,
नाना पकवान सब नीकें बनि आये हैं।
भक्तिन की सुधि करी, खरी अरबरी अति,
भावना करत भोग सुखद लगाये हैं।''
आइ गये साधु सो बुलाइ कही पाओ जाइ
पोटन बंधाय चाय कुंजन पठाये हैं।
वंशी पहिराई द्विज भक्ति हो दृढ़ाई संत
संपुट में चिरिया दै हित सों बसाये हैं।''

व्यास जी का रचनाकाल संवत् १५९० से १६६९ के बीच माना जाता है। वे राधा कृष्ण के तो अनन्य भक्त थे ही। उन्होंने उपासना वेदान्त, सदाचार, कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा, प्रकृति के प्रति प्रेम आदि विभिन्न विषयों पर भावपूर्ण रचनायें लिखी थी। उनकी संस्कृत रचनाओं में 'नवरत्न' (स्वधर्म पद्धति) तथा हिन्दी की रचनायें ''व्यास–वाणी'' के नाम से प्रसिद्ध हैं। संगीतशास्त्र पर आधारित ''रागमाला'' नाम का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। मुख्यतया व्यास वाणी को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में ''सिद्धान्त और दूसरे भाग में ''रस'' का निरूपण किया गया है। सिद्धान्त भाग के पदों में ''लोक कल्याण की भावना, ईश्वर, गुरु और पिता के प्रति कर्त्तव्यों के निर्देश, भक्ति की महिमा, प्रसाद और ब्रजरज में श्रद्धा वृन्दावनधाम की महिमा, यमुना और मधुपुरी का गौरवगान, साधुओं की स्तुति पर आधारित पद है।

भाषा की मधुरता कहीं–कहीं तो गीत गोविन्द की ललित पदावली का स्मरण दिलाती है। माधुर्य उपासना में रति–भाव की एकमात्र स्थिति के कारण उनकी भक्ति में श्रृंगार रस समावेश हो गया है। किन्तु शान्त रस के अतिरिक्त अन्य रसों के उदाहरण कम ही प्राप्त होते हैं। एक रास लीला का पद देखने के योग्य है–

''दुलहिन–दूलहु खेलत रास।
धीर समीर तीर जमुना के, जल थल कुसुम विकास।।
द्वादस कोस मंडली जोरी, फिरत दोऊ अनयास।
वाजत ताल मृदंग संग मिलि, अंग सुगंध विलास।।
थके विमान वर्णन धुनि सुनि सुनि, ताननि कियौ विसास।
मोहन मुरली नेम बजाई, श्रीपति लियो उसास।।
नूपुर–धुनि उपजाई विमोह्यो, सकर भयो उदास।
कंकन–किंकिंन धुनि सुनि नारद, कीनो कह न बास।।
था रस कौ गोपिन घर छाँड़यो, सह्यो जगत उपहास।
यह लीला मन मँह आवत ही, सुकदेव बिसरयो व्यास।।

एक पद में राधा–कृष्ण के पारस्परिक प्रेम का चित्रण कितना सजीव और स्वाभाविक है –

''चाँपत चरन मोहन लाल।
प्रजंक पौड़ी कुँवर राधा, नागरी नव बाल।
लेत करधरि परसि नैननि, हरषि लावत भाल।।
लाइ राखत हदै सो, तब गनत भाग बिसाल।
देखि पिय की अधीनता भई, कृपा सिन्धु दयाल।।
'व्यास' स्वामिनि लिये भुज भरि अति प्रबीन कृपाल।।

एक स्थल पर श्री राधा जी के गौर वर्ण चरणों का वर्णन करते हुए व्यास जी कह रहे हैं –

''सुभरा गोरी के गौरे पाइ।
स्याम काम–बस जिनहिं हाथ गहि, राखत कंठ लगाइ।।
कोटि–चंद नख–मनि परवारो, गति पर हंस के राइ।
नूपुर धुनि पर मुरली वारो, जावक पर ब्रजराइ।।''

इसी प्रकार मुख–वर्णन का भी एक उदाहरण देखने योग्य है। मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गई है –

''गौर–मुख चन्द्रमा की भांति।
सदा उदित वृन्दावन प्रमुदित, कुमुदिन बल्लभ जाति।
नील निचोल गगन में सोभित हार–तारि का पाँति।
झलकति अलक दसन–द्युति दमकति, मनहु किरन कुलकाँति।

हालाँकि उनकी पदावली में अलंकारों के उदाहरण भरे पड़े हैं। जो अनायास ही प्रयुक्त हो गये हैं। कवि को प्रयास करने की आवश्यकता नहीं हुई। एक उपमा अलंकार का उदाहरण देखने योग्य है –

''नैन बने खंजन से खेलत।
चपल पलक तारे अति कारे, बंक निशंक ठगौरी मेलत।।
भृंग कुरंग, मीन कमलनि के भांति, कांति छवि कवि अवहेलत।
अंजन रेख विशिस मद गंजन, सैन चलनि मैननि पग पेलत।
घूंघट पद मँह चितै कुँवर कौ चित चोरति रति सिखुहि झेलत।
'व्यास' स्वामिनी तेरौ प्यारै बड़ भागी सुख रासि सकेलत।।

'सुख रासि सकेलत' एक सुन्दर मुहावरे का अनायास ही प्रयोग हो गया है, जिसके कारण पद की शोभा में चार चाँद लग गये हैं। एक और सांग रूपक का उदाहरण देखिये –

''रसिक अनन्य हमारी जात।
कुल देवी राधा बरसानौ खेरौ, ब्रजवासिन सों पांति।
गोत गोपाल जनेऊ माला। सिखा सिखंडि हरि मंदिर भाल।
हरि–गुन नाम वेद धुनि सुनियत, मूँज पखावज कुस करताल।।
साखा जमुना हरि लीला पट कर्म प्रसाद प्रान धन रास।
सेवा विधि निषेध जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन बास।।

एक और भ्रान्तिमान अलंकार का उदाहरण देखिये –

''पाछें बैठे मोहन जू, मृगनैनी की बैनी गुहत,
सोभा न कही परें देखत नैंन सिरात।

नख छबि रवि जानि, पानि कमल फूले
निकसि चली, अली सैनी अधरात।।
मानहु बारिज बिधु सो रिपु–मति जति।
सदल सुधा पीवत न अघात।
स्याम भुजंगिनि के डर डोरी बाँधत
व्यास की स्वामिनी को सुन्दर अकुलात।।''

व्यास–वाणी की महिमा का गायन करते हुए नीलसखी ने एक पद की रचना की थी –

''जय जय बिसद व्यास की बानीं।
मूलाधार इष्ट रसमय, उत्कर्ष भक्ति रससानी।।
लोकवेद भेदन ते न्यारी, प्यारी मधुर कहानी।
स्वादिल सुचि रुचि उपजै, पावत मृदु मनसान अघानी।
सक्ति अमोघ बिमुख भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानीं।।''

ओरछा को छोड़कर उनके जीवन के अंतिम दिन वृन्दावन में ही व्यतीत हुए। महाराजा मधुकर शाह ने उन्हें ओरछा लाने का बहुत प्रयास किया किन्तु उनकी भाव विभोरता को देखकर वे कुछ नहीं कह सके। उनका सारा जीवन भक्ति भावनामय तो था ही किन्तु काव्य कला के क्षेत्र में भी वे किसी भी बड़े से बड़े कवि से कम नहीं थे। कहीं कहीं भावुकता के कारण उनकी कलात्मकता पीछे रह जाती है –

''ऐसौ मन कब करिहौ हरि मेरौ।
कर करवा कांमरि कांधे पर कुंजनि मांझ बसेरौ।
ब्रजवासिन की टूंक भूख में, घर घर छाछि महेरौ।
छुधा लगै जब माँगि खाउगौ, गनों न साँझ सबेरौ।''

किशोरी जी के प्रति उनके मन में अटूट आस्था और श्रद्धा भाव था। उनके मन में किशोरी जी के चरणों की रज का स्थान सर्वोपरि रहा है –

''किसोरी तेरे चरननि की रज पाऊँ।
बैठि रहों कुंजनि के कोनें, स्याम राधिका गाऊँ।।
या रज सिव सनकादिक लोचन, सो रज सीस चढ़ाऊँ।''
व्यास, स्वामिनी की छबि निरखत, बिमल बिमल जस गाऊँ।''

व्यास जी के मन में भेदभाव उनसे कोसों दूर रहा है –

''व्यास दास हरिजन बड़े, जिनकौ हृदय गंभीर,
अपनों सुख चाहत नहीं। हरत पराई पीर।।
'व्यास' जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत टेरि
जातिहि भक्तहि ना बनें, ज्यों केश ढिंग बेरि।।
वृन्दावन के स्वपच कौ, रहिये सेवक होय।
तासों भेद न कीजिये, पीजे पद रज धोय।।''

यह महान विभूति ओरछा में अवतरित होकर 'वृन्दावन धाम में भक्ति भावना का प्रसार प्रचार करती रही। श्री वीरसिंह जू देव का बनवाया हुआ स्मारक व्यास जी की स्मृति को चिरस्थायी बनाये हुए हैं।

– कुण्डेश्वर , जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली सुबीना बाली का –

पचमेरी प्रसाद

– डॉ. कन्हैया लाल 'कलश'

सुबीना वारी[१] नाँहि करौ अब देर।
अनहत उर आहत शब्दन की मूरति देव उगेर।
परे परा दिखवें पस्यन्ती[२], उर लों ल्याव उरेर[३]।
उरके उरे कंठ सुर होकें, भाखाँ देउ बिखेर।
सुबीना वारी नाँहि करौ अब देर।
सिल्प मूर्ति चित्तँरन सँजोगैं, संगीतन[४] गति प्रेर।
ललित कला परिपाककाव्य रस, बनें कवित पचमेर[५]।।
प्रिया प्रसाद बनाहुँ प्रबीनहिं, विंजन मधुर जुठेर[६]।
सुबीना वारी नाँहि करौ अब देर।
सो जुठेर बुंदेली चखकै, पुस्टइ पाय घनेर।
पूजा काजैं 'कलश' खरो है, अब ना करौ अबेर।
कविता के नौ रस बरसा दो, नव नैनन[७] सें हेर।
सुबीना वारी नाँहि करौ अब देर।
सपनन की बोलन की जा है, मोरी ललित लिखेर।
स्रुतिलेखे पावन पुष्पन की, करौ मातु पौड़ेर[८]।
मोरौ काव्य–कल्पतरु रस पा, फूले–फरै अरेर[९]।
सुबीना वारी नाँहि करौ अब देर।

शब्दार्थ – १. काव्य की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती।, २. गुप्त हृदय के भाव, ३. प्रकट, ४. नृत्य, वाद्य–गीत, ५. पाँचों ललित कलायें–मूर्ति, चित्र नृत्य, वाद्य गेय।, ६. भोग प्रसाद जूठ, ७. कृपादृष्टि, ८. आसन, ९. अपरिमित।

– निदेशक, बुन्देलीवार्ता शोध संस्थान, गुरसराय (झांसी)

बुन्देली गीत –

आउतो अनन्दरी

– महेश चन्द्र अग्रवाल 'आनन्द'

आज मैंने सपने में देख लओ कंत री
अमुआ को मौर धरे आओतो बसंत री।
रामधई तोय कैसऊ भौजी न जानपाय,
हँसी हुऐ मोरी जो गुइयां सब जान जाय।
कइयो न मताई से तैं हैं फरचंट री – अमुआ..
कोयल की आम तरे शेनाई बाज एई,
नई–नई सारी ओड़ बेलें सब नाच रई।
चटक–चटक ताल दे गुलाब बड़ो चंटरी – अमुआ....
सरसों ओ अरसी की अरहर फुलवाद लें
हरे पीरे उन्नन में गेंदा बरात लें।
मधुकर की मधुर बीन बजे मन्द–मन्द री – अमुआ....
बगिया में मड़वा तरें सँजा ने माँग भरी,
फरिया उड़ाई नोने मम्मा ने तरइयां भरी।
भौजी न उठाउती तो, आउतो अनन्द री......अमुआ.....

– हरपालपुर

इतिहास को प्रमाणित करतीं बुंदेलखण्ड की पत्र-पांडुलिपियाँ

- डॉ. कामिनी

इतिहास पिछली घटनाओं का विवरण है। इतिहास का निर्माण करने वाली घटनाओं का संबंध व्यक्तियों, कालखण्डों तथा स्थानों से रहता है। बुन्देलखण्ड की पूर्व–रियासतों में सर्वेक्षण के अंतर्गत उपलब्ध पत्र–पाण्डुलिपियों में जहाँ–जहाँ इतिहास से संबंधित सूचनायें हैं, वे महत्वपूर्ण हैं। उपलब्ध पत्र–पाण्डुलिपियाँ संवत् १६१२ वि. से २००० विक्रमी के मध्य अंकित की गई हैं। यह समयावधि ४ सदियों को अपने में समेटे हुए हैं। उपलब्ध पत्र–पांडुलिपियों में जन सामान्य से लेकर रियासतों के अधिकारियों, ओहदेदारों, कार्यकर्त्ताओं, सहायकों, राजपरिवार के सदस्यों, शासकों के साथ बादशाहों तक के नामों का उल्लेख है, इसी से इन पत्र–पांडुलिपियों में ही गई इतिहास से संबंधित जानकारियाँ मूल स्त्रोत–सामग्री हैं और बुन्देलखण्ड की पत्र–पाण्डुलिपियाँ, इतिहास को प्रमाणित करती हैं। राजकाज से संबंधित अर्जी, इश्तहार, जागीरनामे, तोप–लेख, दुर्गलेख, ताम्रपत्र, परवाने, माफीनामे, मुचलके, हाजिरनामे, हुकुमनामे और शिलालेख तत्कालीन इतिहास के लिए समर्थ और प्रामाणिक सूचक हैं।[१]

<u>शासक</u> – बुन्देलखण्ड में उपलब्ध पत्र–पाण्डुलिपियों में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, मुहम्मदशाह गाजी और शाह आलम का उल्लेख है।[२] बुन्देलखण्ड की रियासतों में राजा महाराजा शिलालेखों, बीजकों, ताम्रपत्रों, दुर्ग लेखों और पदमुद्राओं में अपने नाम और विरुद के पहले बादशाह का नाम और विरुद भी उत्कीर्ण करवाते थे। मधुकर ाह, वीरसिंह, पहार सिंह, जुझार सिंह, भगवान राय, शुभकरन, दलपतराय, रामचन्द्र, पृथ्वीसिंह, इन्द्रजीत, शत्रुजीत, विजय बहादुर, भवानी सिंह, गोविंद सिंह, ओरछा और दतिया के शासक के रूप में उपलब्ध पत्र–पांडुलिपियों में है। गोहद के जाट राजा कीरतसिंह, अटेर के भदौरिया राजा बदन सिंह, तखत सिंह, सिरनेतसिंह, धौकल सिंह, अनिरुद्ध सिंह, कछवाय घर के अंतर्गत रामपुरा के राजा माधौसिंह, लहार के राजा हिरदेशाह, समथर के राजा हिन्दूपत, पन्ना के राजा छत्रसाल, जगतराज, हिरदेशाह, ग्वालियर के सिंधिया महादजी, दौलतराव के उल्लेख पत्र–पांडुलिपियों में है। पेशवा बाजीराव, मुहम्मद खां बंगश, दुर्जन सिंह, चेतसिंह, जवाहर सिंह जाट, छत्रसिंह, गंगाधर राव, मर्दन सिंह, लड़ई सरकार, लक्ष्मीबाई आदि शासकों से संबंधित सूचनायें बुन्देलखण्ड की पत्र पांडुलिपियों में है।

<u>विरुद</u> – शासकों के सुयश का बोध कराने के लिये उनके नाम से पहले अंकित किये जाने वाले विरुद, विशेषण की तरह अर्थ देते हैं –

१. महाराजाधिराज श्री राजा,
२. श्री महाराज श्री राव,
३. श्री महारानी, श्री रानी, श्री महारानी
४. श्रीमंत राजेश्री श्री राज साहब,
५. राजश्री महाराज महेन्द्र,
६. श्री महाराज कोमार श्री दीवान,

इन विरुदों में राजा और रानी तथा राजकुमार का अंतर स्पष्ट है।

<u>शासक परिवार</u> – बुन्देलखण्ड की पत्र–पाण्डुलिपियों में रियासत प्रमुख के साथ उसके परिवार के सदस्यों का उल्लेख है। विजय नाम की तोप पर लेख उत्कीर्ण करवाते समय सेंवढ़ा के शासक पृथ्वीसिंह ने अपने पिता श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राव दलपतराव जू देव का नाम भी उत्कीर्ण करवाया है। तोप के ऊपर यह लेख सोमवार पुण्य नक्षत्र प्रथम चैत सुदी ७ संवत् १७९३ को उत्कीर्ण कराया गया था।[३]

तोप के ऊपर उकेरा गया लेख – संवत् १७९३ प्रथम चैत्र सुदि ७ सोमवासरे पुख नछित्रे ता दिन श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्रीराव दलपति रावजू देव के सुत श्री श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा पृथ्वीसिंह जू देव की सरकार कन्हरगढ़ में विजय नाम तोप तैयार भई दरोगा साहनी जगन्नाथ कारीगर उद्दे।

तोप के ऊपर यह लेख सोमवार पुष्य नक्षत्र प्रथम चैत सुदी ७ संवत् १७९३ को उत्कीर्ण कराया गया था। इस लेख में दरोगा साहनी जगन्नाथ के साथ तोप ढालने वाले कारीगर उद्दे का भी नाम है। महाराजा छत्रसाल द्वारा पुत्र पद्‌मसिंह को जिगनी की जागीर और बैठक राव की पदवी सहित प्रदान की थी। कक्काजू, बड़े महाराज, बब्बा जू, मातु श्री, बड़ी फुआ जू और कक्को जू संबोधन राज–परिवार से संबंधित हैं जो क्रमशः छत्रसाल, दलपतराव, जगतराज, अहिल्याबाई[४] और लड़ई सरकार को संबोधित करके लिखे गये हैं। राजा के साथ राजकुमार के उल्लेख दिवान के रूप में हुए हैं। पत्र–पाण्डुलिपियों में शासक परिवार के युवराज, रानी, भाई, काकी, बाबा, काका, बुआ और माँ हैं।

<u>पत्र</u> – ।श्री।।

राज श्री महाराज महेन्द्र रुद्र प्रताप सींघ जू देव सब स्थान पन्ना अखंड लक्ष्मी अलंकृत राज मान्य श्री तुकोजी राव होलकर राम राम विनती विसेस इहाँ के समाचार श्री परमेसर कृपा से खुशी हैं आपके तरफ के हमेस खुसी का समाचार लिखते रहे। आपका खत मिला मिती सावन वदी ७ संवत् १९३७ का आया

सो दाखल हुआ और इहां से लिखे मूजवमात अहिल्या बाई साहेब ने चित्रकोट मे श्री रामजी का मंदिर बंधाया है उसके खरच के वास्ते आपके इहां से मौंजे सीतापुर से जमीन बीघे ५० माफी में देकर संवत् १८३९ के साल में सनद दीबी उसका दाखिला दफ्तरों में देखने की आपने बहुत फिकर से तावीद रखके आख्यान व बरस का दाखला निकलाया और उसकी नकल नायब अमीन आलमपुर इनों के साथ भेजी इसलिए हम आपके बड़े सुकरगुजार हैं और नायब अमीन आलमपुर इनों ने आपके तरफ के खुसी के समाचार कहे उस परसे बहुत खुसी हासल भई आपका और हमारा घरोबा आपके बड़ीलौं से चला आया है सो हमेसा के वास्ते समझना चाहिए इन्दौर कों आपका आना हुआ उस वक्त मुलाकात नहीं भई इसलिए बहुत अफसोस होता है हमेसा खुसी मिजाज की खबर लिखते रहना चाहिए दो लकीरें मोढ़ी नें।

अधिकारी – जिस प्रकार राजकाज में शासक परिवार की भूमिका प्रमुख रहती थी, उसी तरह रियासतों के अधिकारी थे। कार्यर्त्ता भी व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। रियासतों की सत्ता में राजा–महाराजा का अधिकार सर्वोपरि रहा है और सत्ता का विकेन्द्रीकरण दीवान, बख्शी तथा मुस्तोफी के कार्यालयों में कर दिया जाता था।[4] आर्थिक मामलों पर निगरानी रखने का कार्य भी दीवान के अधिकार क्षेत्र में था।

दीवान – रियासतों में राजा के बाद दीवान के अधिकार सर्वाधिक थे। कोश में इसे वजीर कहा जाता है। इसके कार्य क्षेत्र में अर्थ, न्याय तथा कचहरी से संबंधित संपूर्ण क्रियाकलाप आते थे।

बख्शी – राजस्व और व्यवस्था पर निगरानी रखने वाला यह अधिकारी गाँव में से कर वसूल करने और वेतन वितरण करने का काम करता था। रियासतों की अर्थव्यवस्था वख्शी के हाथ में थी।

फौजदार – सेनानायक का अर्थ देने वाला यह पद रियासतों की व्यवस्था में महत्वपूर्ण रहा है।

अमीन – सत्यनिष्ठ, ईमानदार, न्यासधारी और अमानतधारी यह अधिकारी रियासत की व्यवस्था में प्रमुख है।

चौधरी – रियासत की आर्थिक सुदृढ़ता, गाँव की राजस्व वसूली पर आधारित रहती थी। इसी से गाँव की राजस्व वसूली करने में सहायक चौधरी रियासतों में शासन व्यवस्था का प्रमुख अंग है।

प्रधान और जमींदार – प्रधान पर लेखक का अर्थ देता है। जमींदार रियासत के द्वारा कृषि भूमि का मौरुसी हकदार होता था और किसान शिकमी के रूप में जमीन जोतते थे।

अन्य पद और पदवियाँ – दरोगा, कानूनगो, साहनी, महते, महाजन, साहूकार, दफैदार, नाकेदार, मालगुजार, चौकीदार, लंबरदार, किलेदार, जमादार, कामदार, माफीदार, सिरस्तेदार, खजांची, जागीरदार, मोहर्रिर, नायक, मुख्तियार, मुसाहिब, सूबेदार, फड़नीस, इजारदार, सिपाही, नानकार, भट्टाचार्य, रेजीडेंट, तहसीलदार, एजंट, थानेदार, लैफ्टीनेंट, नायब अमीन, काजी, डिप्टी कमिश्नर, मीर, काजी, पद और पदवियाँ, रियासतों की शासन व्यवस्था में सहायक रही हैं, बुन्देलखण्ड की पत्र–पाण्डुलिपियों में यह पद–पदवियाँ उपलब्ध हैं।

पद–मुद्रायें – पद मुद्रायें उर्दू और १८५७ ई. के बाद आंशिक रूप से अंग्रेजी में हैं। पद–मुद्राओं में अकबर, मुहम्मद शाह गाजी जैसे मुगल सम्राटों के उल्लेख हैं। पद–मुद्राओं में गाजी, बादशाह, राजा, महाराजा विरुदों सहित पृथ्वीसिंह, बाजीराव, हिम्मत बहादुर, कीरतसिंह, माधौसिंह, मर्दनसिंह, हिन्दूपत, तुकोजीराव, बिजैबहादुर, भवानीसिंह, सुपरडेंट जालौन शासकों के नामों के उल्लेख हैं।

इतिहास घटनाओं का संघटन है। इतिहास संबंधी घटनाओं के साथ व्यक्ति, स्थान और समयावधि अनिवार्य है। बुन्देलखण्ड की पत्र–पांडुलिपियों में इतिहास संबंधी जितनी सूचनायें उपलब्ध हैं, वे इन रियासतों के आपसी संबंधों को सूत्रबद्ध करने में जितनी सहायक हैं, उतनी ही मुगलों, राजपूतानें के राज्यों, जाट शासकों, मराठों, काशीनरेश चेतसिंह और अंग्रेजों के साथ संबंधों को समझने में उपयोगी हैं। संवत् १७६५ में सेंवदा के शासक पृथ्वीसिंह द्वारा आलमपुर के कवि हरनारायण को दिया गया ताम्रपत्र जिसमें आलमपुर इलाके के टेढ़ा गाँव का नामकरण पृथीपुर किया गया था।

ताम्रपत्र – ।। श्री कृश्नोभवति।।

श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा प्रथीसिंघ जू देव पादारघ करि दयौ पं. हरिनारायन कवि जू कौं श्री कृष्ण प्रति परिगनैं सिंहुड़ौ को मौंजे टेढ़ा मौः २ असली १ दाखिली १ ताकौ नाव प्रथीपुर करि दयौ है असाढ़ वदि १ संवत् १७६५ कै तै पावै बरकरार बेदखल हर हबूब माफ माफ अपनौ पाय खांय जांय सदा सर्वदा अपुन चंदा कर दयौ है रुपैया १ जे परगनै हाल अबै है अरु गे आगे हौइ तिनमें पांइ जांइ परवानगी श्री बगसी छत्रमनि चैत सुदि संवत् १७६५ मुकाम दलीप नगर।

बुन्देलखण्ड की पत्र–पाण्डुलिपियों में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पत्र लक्ष्मीबाई द्वारा 'सुराज' की घोषणा का इस प्रकार है –

श्री महाराजा श्री राजा मर्दन सिंह जू देव ऐते श्री महारानी श्री रानी लक्ष्मीबाई जू देवी के बांचने आपर अपुन के समाचार भले चाहिजे इहां के समाचार भले हैं आपर पाती दिवान गनेस जू लै आये सो पढ़कर खुशी भई आपर अपुन की व शाहगढ़ व नाना साहब व तात्याटोपे की सलाह भई तीकै स्वराज भयौ

चाहिजे भारत अपनौं देश है और अपुन नें तोपें गोला ढरवाये हैं ई बात कौं विदेशियों को जाहिर न भव चाहिजे काये सें टीकमगढ़ वाली रानी लड़ई बाई कुंवर व नत्थे खाँ दीवान विदेशियों की मदद में हैं ई बात कौ ध्यान राखनें हैं पाती समाचार देवै में आवै कुंआर....संवत् १९१४ मुहर।

बुंदेलखण्ड की रियासतों में सत्ता–संघर्ष जितना पारिवारिक, अन्तर्रियासती रहा है, उतना ही खंगारों मुगलों जाटों और मराठों से रहा है। मुहम्मद खाँ बंगश के हमलों से सुरक्षा चाहने के लिए पेशवा बाजीराव को छत्रसाल ने अपना बेटा स्वीकार किया और अपने राज्य का तीसरा भाग उसे दे दिया। इसके फलस्वरूप हमीरपुर, जालौन और बाँदा तथा झांसी जिले का एक भाग पन्ना, अजयगढ़, छतरपुर के कुछ हिस्से, बिजावर, शाहगढ़, सरीला, जिगनी अलीपुरा, पेशवा के अधिकार में आ गये।[६] बुन्देलखण्ड के अंतर्गत आने वाली रियासतों में से ओरछा, दतिया, समथर के शासक मुगल सम्राट से यथाशक्ति मधुर संबंध बनाये रहे। उत्तराधिकार के विवादों पर मुगल सम्राट की सहमति से बुंदेलखण्ड के कुछ उत्तराधिकारियों के मतभेद कहीं–कहीं उभरे हैं। अबुलफजल जैसे इतिहासकार का आँतरी में वध राज–सिंहासन के लिए संघर्ष का ही परिणाम है। काशी के महाराजा चेतसिंह को लार्ड हेस्टिग्ज ने जब ५० लाख जुर्माना अदा करने के लिए विवश किया तब वह बुन्देलखण्ड में आ गये और महादजी सिंधिया, बालाजी गोविंद पन्ना के अनिरुद्ध सिंह व बेनीहजूरी को अपनी स्थिति दर्शाने के लिए सम्पर्क किया। महादजी सिंधिया ने उन्हें शरण दी तथा मौ इलाके के दंगियापुरा, खेरियाजलू, गुहीसर आदि गाँव उन्हें जागीर में दिये।[७] बुन्देलखण्ड की पत्र–पांडुलिपियाँ इतिहास को प्रमाणित करने में सहायक हैं।

संदर्भ –

१. अठारवीं शती के हिन्दी पत्र – डॉ. काशीनाश शंकर केलकर, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, १९७०, पृ. २५९,

२. उपरिवत् – पृ. ५६

३. बुन्देलखण्ड की पूर्व–रियासतों में पत्र–पांडुलिपियों का सर्वेक्षण – डॉ. कामिनी, डॉ. सीताकिशोर, डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव, आराधना – ब्रदर्स कानपुर, १९९४, पृ. १०८

४. उपरिवत् – पृष्ठ १८१

५. दतिया जिले में पत्र–पांडुलिपियों का सर्वेक्षण–डॉ. कामिनी, डॉ. श्याम बिहारी, डॉ. सीताकिशोर, आराधना–ब्रदर्स, कानपुर १९९०, पृ. ३२,

६. महाराजा छत्रसाल बुंदेला – डॉ. भगवानदास गुप्त, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, १९५८, पृ. १२३–१२४

७. उपरिवत् – पृ. २०६

– शासकीय गोविन्द महाविद्यालय,
सेंवढ़ा, जिला दतिया म.प्र.

बुन्देली कविता –

पिया बिन बसन्त

– कन्हैया लाल शास्त्री 'मुकुल'

काहे को कूकत कोयल री! परदेश पिया, घर सेज है सूनी।
आग लगी सबरे तन में, है धुंधा रही भीतर काम की धूनी।।
कैसे समारिहौं जोवन जौ, मन में है व्यथा कल से अब दूनी।
आयौ बसन्त न दीखै कहीं, यह तो जमराज सौ धायौ है खूनी।।

आग लगै इन छेवलन में, बर जायें जे सैमर कायें खों फूले?
आँधी में जायें जे आम चले, जिनपै मतवारी हो मंजरी झूले।।
कुम्हलायें सभी कचनार अनार, भुँज जायें जे भौंरा फिरें रस भूले।
विन कन्त बसन्त न नीकौ लगै, तन–ताप चढ़ी, सर काम ने हूले।।

काल से लाल लगै छेवले, जलती कचनार–कली लख छाती।
कोयल की सुन कूक उठै, मन–हूक न पीर है नैकु समाती।।
जाऊँ कहाँ? दुःख कीसें कहूँ? यह पीछे अनंग परौ उतपाती।
बस अन्त बसन्त में कन्त बिना, मोहिं चैन नहीं परती दिनराती।।

कूकरी कोयल! पी घर जा, जिनने सुध मोरी बिसार दई है।
आये नहीं बरसात सें वे, मन कैसी ''कन्हैया'' विचार लई है?
हम सोसन में नित सूख रहे, जबसें तन काम की मार भई है।
आई बहार बसन्त की री! पर याद उन्हें न हमार रई है।

अन्त बसन्त में जो कहीं हो, तो जराऊँ पियै बन काम की आगी।
चाँद के कारन राहू बनूँ, बच पाये नहीं कहीं पै वह भागी।।
मारने कोयल पापिन को, बन जाऊँ बहेलिया मैं झट जागी।
सिव–नैन की जोति जलाने बनूँ, उस काम कसाई को जो खटरागी।।

– खाँदी, तालबेहट, जिला ललितपुर (उ.प्र.)

सैर

– सौजन्य :भगवानदास कुशवाहा

कंचुकी फार हार टोड़ारी चूम कपोल करत मनकी
ज्वानी में जानें का करनें यह हालत बालापनकी।
कबहुं मिलत अकेलै वन में कबहू सैन लय लरकन की
कोऊ सुनैया नइयाँ बृज में कठिन बात जा उलझन की।
कंश राजा खा जाय सुनैबी यही बात मन में ठानी।
चंग उठाकर जिस दम फड़पै मुन्नू ने ललकारो है
भगे कुचाली रामदीन कहै बिगड़गई अरी धारा है।
सोभालाल देश देशन में नामी गुरू हमारा है।
छोटे लाल कहै स्वामी का गरज रहा एकतारा है।
लला कहै भगवान दास की कहन रसीली लासानी।।

– सरानी गेट बाहर, छतरपुर

बुन्देली सैर साहित्य में बसंत वर्णन

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

साहित्य, संगीत एवं कला की संगम स्थली बुन्देलखण्ड में सैर साहित्य का प्रचलन लोकरागिनी के रूप में अत्यन्त प्राचीन है। बुन्देलखण्ड में लोकगायकी के दो रूप प्रचलित हैं एक देशी एवं दूसरा विदेशी। देशी गायकी के अन्तर्गत सैर, फाग एवं सैरा का गायन अति प्राचीन है। जबकि लावनी और ख्याल गायकी बाहर से आने के कारण विदेशी गायकी मानी गई है।

सैर गायकी बुन्देलखण्ड में अत्यन्त पुरानी है। यह फड़ साहित्य की अभिव्यंजन शैलियों में प्रमुख स्थान रखती है। श्रीरामचरण हयारण 'मित्र' ने अपनी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' में इसका उद्‌भव काल ईसा की चौथी शताब्दी माना है। "सौरियाँ जाति से उद्‌भूत ये लोकगीत कालान्तर में गाँवों और नगरों में फैले तथा इन्होंने राजदरबारों को भी प्रभावित किया। मुगलकाल के दरबारी कवियों ने लावनी और ख्याल का गायन इसकी प्रतिस्पर्धा स्वरूप किया।"[१] मित्र जी का यह कथन सैर की प्राचीनता का संकेत देता है। सैर साहित्य का जन्मदाता छतरपुर निवासी पं. गंगाधर व्यास को माना जाता है यद्यपि इनके पूर्व भी सैरें लिखी गईं। झाँसी निवासी भग्गी दाऊ ने चार चरण वाली सैरें लिखी। श्रीनगर निवासी भैरोंलाल ने भी सैरें लिखीं। इसी प्रकार इटावा निवासी पं. बाबूलाल ने "सैर दिलतरंग" भाग १ व २ लिखीं। जबलपुर निवासी पं. जगन्नाथ मिश्र ने 'सैरवाटिका' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने 'सैर अनुराग' और 'सैर कृष्ण लीला' सैर संग्रह (भाग १, २, ३) 'सैर गुलचमन', 'सैर बहार', 'सैर मनमोहन' आदि कृतियों का उल्लेख मिलता है, परन्तु इन कृतियों के लेखक का नाम अप्राप्त है। ये सभी सैरें चार चरणवाली हैं जो अधिक लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकीं हैं।

पं. गंगाधर व्यास ने सैर साहित्य को नवीन रूप प्रदान किया उन्होंने चार चरण के स्थान पर तीन चरण और एक टेक कर दी। शीर्ष पर दोहा, सोरठा अनिवार्य रूप से रखा तथा बीच में लावनी, हरिगीतिका या झूलना रखने की वैकल्पिक व्यवस्था की जो कवि की इच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए कोई अनिवार्य नियम नहीं है। इस प्रकार तीन तीन चरण के चार छन्द मिलाकर एक झूमका बनाने की नवीन प्रणाली का प्रणयन व्यास जी द्वारा हुआ। छतरपुर में उद्‌भूत सैर की यह नूतन प्रणाली सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में छा गई तथा इसके दो दल पाण्डेय एवं व्यास दल के रूप में अंकुरित हुए जिन्होंने इस साहित्य के प्रचार प्रसार में अतुलित योग दिया। आज भी यह परम्परा यथावत् रूप में प्रवहमान है। बुन्देलखण्ड में विशेष अवसरों, त्यौहारों, उत्सवों आदि पर यह प्रतियोगिता आयोजित होती है। जिसे फड़बाजी कहा जाता है। दोनों दल जब सैर गायन करते हैं तो उसे गम्मत कहा जाता है। इसका गायन दायरे या चंग पर किया जाता है इसके साथ गम्मत में सहायक वाद्य के रूप में गायक कलाकारों द्वारा ढोलक मजीरा एवं घेरा आदि वाद्य बजाये जाते हैं। सैरों के फड़ जब जमते हैं तो अनवरत् रूप से घण्टों एवं दिनों में चलते हैं। श्रोतागण भी मंत्रमुग्ध हो सैर गायन का आनन्द लेते हैं। यह एक प्रश्नोत्तरी प्रतिस्पर्धा है जिसमें प्रथम दल का कोई एक गायक अपने सुरीले कण्ठ से प्रश्न उठाता है उसके अन्य साथी वाद्ययन्त्र बजाते हैं प्रथम दल द्वारा किए गए प्रश्न का उत्तर दूसरे दल के सदस्यों को देना होता है जो दल उत्तर नहीं दे पाता उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। प्रश्न नायिका भेद, काव्य लक्षण, पौराणिक एवं ऐतिहासिक आदि किसी भी विषय से सम्बन्धित हो सकता है। सैरों के गायन में केवल कंठस्थ सैरों को ही गाया जाता है। अतः सैर गायकों को हजारों की संख्या में सैरें कंठस्थ रहती हैं। इस प्रतियोगिता में उत्तर न दे पाने वाले दल को अपना ध्वज नीचा करना पड़ता है तथा विजयी दल गणेश पूजन करते हुए फड़ विसर्जन की घोषणा करता है।

सैर शोभधर छन्द का अप्रभंश है जिसके प्रत्येक चरण में बाइस मात्राएँ होती हैं तथा बारह और दस मात्राओं पर भति होती है। इस प्रकार वाइस[२] मात्राओं के चार चरण होते हैं। यह छन्द प्रभाकर के राधिका व कुंडल छंदों से मिलता जुलता है। इसे प्रावाहिक छन्द की कोटि में रखा जाता है। सैरों में वर्णों की योजना अत्यधिक चमत्कारिक होती है जिसे ककेहरा, निरोष्ठ दुअंग, कूट, चुअंग, नाता पक्ष आदि कहा जाता है। ककेहरा सैर के प्रथम चरण में क दूसरे में ख तीसरे में ग, घ, ड., च आदि का क्रमशः प्रयोग होता है। निरोष्ठ छन्द वह है जिसके बोलते समय ओष्ठ का संयोग नहीं होता है। दुअंग में प्रत्येक चरण के आदि और अन्त में समान अक्षर की आवृत्ति होती है और चुअंग छअंग व अठंग में इसी प्रकार प्रत्येक पंक्ति के समान अक्षर की आदि, अन्त एवं बीच में चार छः एवं आठ बार आवृत्ति होती है।

सैर रचनाकारों ने विविध विषयों पर हजारों की संख्या में सैरों की रचना की है। सैर सृजन हेतु उन्होंने यहाँ पौराणिक, धार्मिक ग्रंथों से सामग्री एकत्र की है वहीं ऐतिहासिक, सामाजिक, लोकाख्यानो से भी प्रेरणाग्रहण कर सैरें लिखी हैं। नायिका भेद, नखशिख वर्णन, काव्य लक्षण, प्रकृति चित्रण, बारहमासी आदि विषयों पर प्रचुर सैरों की रचना हुई है। यहाँ पर बसंत चित्रण से सम्बन्धित सैरों को संकलित कर विचार करने का प्रयास किया

गया है।

ऋतुराज बसंत प्रकृति का अनुपम व अद्वितीय श्रृंगार है। इस ऋतु को समस्त ऋतुओं की सम्राज्ञी माना गया है। बसंत का पदार्पण सम्पूर्ण सृष्टि को प्राणवान बना देता है। शीत के भीषण प्रभाव से पत्रविहीन हुए वृक्षों पर नवकोपले आने लगती हैं। रंग बिरंगे पुष्पों से आच्छादित वृक्षों की शाखाएं भी भारमुक्त हो झुक जाती है। शीतलमन्द बयार वातावरण को सुगन्धमय बना देती है। सुनहली फसलों से आच्छादित खेतों को देखकर हृदय उमंगित हो उठता है। सम्पूर्ण प्रकृति नवयौवना के सदृश्य दृष्टिगत होती है।

बसंत के मनोरम वातावरण में मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी आनन्द विभोर हो क्रीड़ामग्न हो जाते हैं। बसंत का आगमन समस्त प्रकृति में हर्ष, आनन्द एवं उल्लास की सृष्टि करता है। प्रकृति में होने वाले परिवर्तन ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे ऋतुपति के स्वागत की तैयारी कर रहे हैं। बिजावर–निवासी कविकूलभूषण पं. रमेश चन्द्र पाण्डेय कृत इस सैर में सांग रूपक के माध्यम से ऋतुपति बसंत के आगमन की सूचना अत्यन्त चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत की गई है। सैर दृष्टव्य है –

दोहा – *वन की जनता हरष में, फूली नहीं समाय।*
मालिक की आवन निरख, उतसव रही मनाय।।

सैर – *उतसव रही मनाय सब येक सलाई।*
साखन बितान ताने खुसयाली छाई।
टेसू निसान फहरे छा रही ललाई।
रितुराज राष्ट्रपति की हो रही अवाई।।१।टेक
झुक झुक समीर मग की कर रही सफाई।
वृक्षन बिछान पत्रन की रुचिर बिछाई।
नव पत्र वसन पहिरे तरु सान बनाई।।२।टेक

लावनी – *मिस्टर बगुला बने मिनिस्टर तनसे उज्जवल मन मैले।*
वन की बिगरी दसा सुधारन भये परेवा ऐमैले।
दौरा करें भौंर नेतागण फूल देश उपदेश करें।
मधुर सुरन से स्वारथ साधे ले पराग मन मोद भरे।

सैर – *उपराष्ट्रपति रतिपति ने धूम मचाई।*
विरहिन के देश ऊपर कर दई चढ़ाई।
कोकिल प्रधानमन्त्री ने खबर जनाई।।३।टेक
उपमन्त्री सुवा सबको स्पीच सुनाई।
हिलमिल के रहो इसमें तुम सबकी भलाई।
स्वागत के काज लीजे सब साज सजाई।।४।टेक

लावनी – *तीतुर चंचल चैयरमैन है इन्तजाम कर रती रती।*
लवा लालची बना दये गये पंचायत के सभापती।
दोई ओर से झीका झपटी वादी से प्रतिवादी से।
करे फैसला नही जरूरत जनता की बरबादी से।

सैर – *बागन में फूल फूले छवि सरस सुहाई।*
करवे को नजर डाली माली से लगाई।
साजे अनेक फल जे न जात बताई।।५।टेक
ले सुमन हार सुंदर उर फूल सुहाई।
कलकंठ जाय मेले कर ताली बजाई।
रस के रमेश दिन जे सब देव बधाई।।६।टेक

उपर्युक्त सैर में भाषिक चमत्कार दर्शनीय है। तत्सम, तद्भव एवं अंग्रेजी शब्दों का सुन्दर प्रयोग भावाभिव्यंजना में सहायक सिद्ध हुआ है। रूपक एवं अनुप्रास की छटा कवि कौशल की परिचायक है। कवि ने प्रकृति एवं पशुपक्षियों के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को अत्यन्त चमत्कारिक रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार से शिशिर के अन्त एवं बसंत के आगमन का सजीव चित्रण कवि मदन गोपाल शुक्ल जी ने अपनी इस दुअंग सैर में किया है –

सोरठा – *है ये शीत को अंत, अंत अंत बस अंत है।*
है पंचमी बसंत, शिशिर ऋतुंन बसंत है।।

छन्द – *है बहत शीतल मंद पवन सुगंध हिय हुलसंत है।*
है जगत जगमग पति रंग रंगि दसहु दिश उमंगत है।
है कुंज कुंज मलिन्द पुंज सुगुंज मंजु सुहंत है।
है ललित कोमल कलित कूलन किलकि कहत बसंत है।

सैर – *है चमक दमक झमक बसंती स्वराज है।*
है आज पंचिमोत्सव को साज बाज है।
है सज धज छज स्वागत हित ऋतुराज है।
आज बसंती क्या राजत समाज है।१।। टेक
है रंग चंग मुचँगि मंजिर मृदंग बाज है।
है सानदार सैर गान तान साज है।
है रंग रंगीली रंग रंग मय आवाज है।।२।टेक
है किधौ आज देन ताज ऋतुराज है।
है रंग सोह पीति प्रीति रीति काज है।
है ऊषोदय वर्षोदय भय की भ्राज है।।३।। टेक
है मंगलीक रंग ढंग शिख लग्न काज है।
है दिल के हिये हिल मिल दिल मिल कै आज है
है कूप कूप प्रफुलित जग फूल आज है।।४।टेक

अनुप्रास, वीप्सा, पुनरुक्ति आदि अलंकारों की अति सुन्दर योजना से सैर में चमत्कार की सृष्टि हुई है। इसके साथ ही प्रत्येक पंक्ति के आदि व अन्त में 'ह' वर्ण की आवृत्ति होने से यह दुअंग सैर है।

पं. रामकृपाल मिश्र कृत एक सैर और प्रस्तुत है। जिसमें ऋतुराज बसंत का दुल्हा के रूप में एक अत्यन्त सुन्दर काल्पनिक चित्र रूपक के द्वारा उतारा गया है। सैर दृष्टव्य है –

सैर – *आमन को मौर सुन्दर सिर मौर चढ़ाओ।*
किंशुक सुमन कौ बागों तन सुभग सुहाओ।
फेंटा कमर नवोलिन बेलिन को बंधाओ।
आली बसंत आज बना बनकैं आओ।१।। टेक

सर्वप पराग उपटन रजनी कौ लखाओ।
मन हरन हार पुष्पन कौ हार गुथाओ।
अलि पुंज गुंज कलरव सुन बाघ सजाओ।।२।। टेक
बोलत नकीव कीर पवन पंख चलाओ।
जयकार करत कोकिल सुख प्रकृति मनाओ।
पटपीत जनु बरातिन ने सरुचि सजाओ।।३।टेक
दुलह अनूप रूप देख रितु को भाओ।
मनमुग्ध भई बरबस तन काम जगाओ।
भगवान रितुपति को मिश्र सुयश सुनाओ।।४।टेक

एक सैर में कवि मिश्र जी ने रूपक के द्वारा बसंत का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है कवि बसंत को संत के रूप में प्रस्तुत करता है।

सैर — लाली ललित लतान जटा जूट बनाओ।
कलिकान कुंद गन्धसार तिलक लगाओ।
पुष्पन पराग मनो अंग भस्म लगाओ।
आली बसंत आज संत बनकर आओ।।१।। टेक
शीतल सुगन्ध मंद त्रिविध पवन चलाओ।
सो कुम्भकादि प्राणायाम रूप दिखाओ।
प्रभु चित्र आन रोक जग प्रपंच भगाओ।।२।टेक
कुंजन है कुटी शिष्य कीर कोकिल गाओ।
कलरव ही मनो पक्षिन को वेद पढ़ाओ।
बोलत निपट निशंक भ्रमर संख बजाओ।।३।टेक
विरहिन की विरह ज्वाला सै तप तन ताओ।
तन राग द्वेष रूप शीत धाम बताओ।
देखत बसंत रूप मिश्र हरिमन भाओ।।४।टेक

सैर रचनाकारों ने बसंत के मादक वातावरण का अति संश्लिष्ट वर्णन किया है। जिस पर रीतिकाल का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ऋतुओं की साम्राज्ञी बसन्त ऋतु का आगमन प्रकृति में हर्ष व आनन्द का संचार करता है। मानव की काम भावना इस ऋतु में अधिक उद्दीप्त होती है। इसलिए यह मास मदन महीप माना जाता है। रात्रि का घटना और दिन का बढ़ना प्रारम्भ हो गया। पेड़ों में नवीन कोपलें झिलमिलाने लगी। नवचम्पा ने स्वर्ण छत्र तानकर तथा आम्रमंजरी ने अपना किरीट पहना कर बसन्त राज का स्वागत किया। कोमल भी पंचम स्वर में तान छेड़ने लगी। भ्रमरों ने गुँजार करना प्रारम्भ कर दिया। मयूर मग्न हो नृत्य कर उठे, पक्षियों के कलरव से वातावरण गूंज उठा, पुष्प पराग चहुँ ओर बिखर गया। सभी ने ऋतुराज बसंत की अगवानी की। फिर कवि हृदय ऐसे मनोरम वातावरण से अप्रभावित कैसे रह सकता है। नायिका भेद से सम्बन्धित एक सैर दृष्टव्य है जिसमें प्रिय मिलनोत्सुक नायिका का सजीव चित्रांकन किया गया है—

दोहा —बहत समीर सुहावनी, देत मने आनन्द।
गुंजन लगे मलिन्द गन, लेन लगे मकरन्द।।

सैर — मकरंद लेन लागे फूलन बिसाल है।
कोयल की मधुर कूकें करती कमाल है।
झुक रही लता लौनी मौरो रसाल है।
रितुपति की निरख आवन क्यों विकल बाल है।।१।टेक
अविलोक छटा वन की हो रही बिहाल है।
ऊँची उसास भरती कहती न हाल है।
गुह नजर करी मालिन किंसुक की माल है।।२।। टेक
सुंदर सरीर एकहु न रोग जाल है।
न कलह भवन कौनहु न वियोग काल है।
रूठी न सास ननदी ना सौत साल है।।३।। टेक
नैहर को सोच नइयां न जग जंजाल है।
गरुवाई देख गति की लाजत मराल है।
जानी न जात चल रहि जा कौन चाल है।।४।टेक
अनुरागी पिया घर में आँनंद बहाल है।
लख रही सुघर जमुना तीरे रसाल है।
बिगरो दिखात नइयाँ सुर और ताल है।।५।। टेक
नायिका बताब ईकी कर करके ख्याल है।
दंगल में आज रंग का रंग बेमिसाल है।
कहना रमेश इसके दिल का मलाल है।।६।टेक

वियोगावस्था में सुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ भी दुःखदायक हो जाती हैं। संयोगकाल में प्रकृति के जो उपादान उद्दीप्त करते थे वे ही विरह को बढ़ाने वाले बन गए हैं। विरहिणी नायिका को कोयल की कूक, शीतलमन्द सुगन्धित पवन, भंवरों की गुंजार तथा कामदेव का पुष्पबाण संधान अत्यन्त व्यथित कर रहा है। सैर में नायिका की मनःस्थिति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है —

दोहा —तिय जिय हिय पिय बिन सखी, जरत अंग इक संग।
तेहि पर मधुर कर सुमन सर, मारत मोहि अनंग।।

सैर — मधुकर में पकर काम कुसुमसर चलायना।
हारी में बिन बिहारी हुज्जत लगायना।
कोकिल को कहो कबहूँ कू कू सुनाय ना।
वर बिन बसंत बैना बिल्कुल सुहायना।।१।। टेक
तरु लतन बैठ पक्षी कलरव मचायना।
कर सबर भँवर मधुर गुनगीत गायना।
बहकर विविध बयारी मन को लुभायना।।२।टेक
पुर माहि कोऊ वस्त्रपीत रंग रंगायना।
घर में बसंत उत्सव कोउ मनायना।
चख बिना चार लखवें को चित्त चायना।।३।। टेक
केहि भाँति श्याम आवें कोऊ बताय ना।
सुख में अनेक दुःख में एक काम आयना।
विपदा विलोक मिश्र धीरता मनायना।।४।। टेक

लोक कवियों ने बसंत वर्णन विविध रूपों में किया है। वे

कभी बसंत में राजा के दर्शन करते हैं तो कभी संत या दुल्हा के रूप को बसंत में निहारते हैं। इस सैर में कवि ने विरहिणी नायिका के रूप में ही बसन्त को उतार दिया है। बसन्त के सुरम्य वातावरण के दर्शन नायिका अपने रूप में ही कर रही है। सैर दृष्टव्य है –

दोहा –लेन देन कछु हेत तउ, उरसर मारत मैन।
मैं न चैन पावौ दिवस, कटत कलप सम रैन।।
सोरठा–कटत कलप सम रैन, बैन वेन, आवत अजहूँ।
कुसुमाकर दुःख देन, आवत मैं मधुकर बनी।।
सैर – उत शिशिर गवन देख पड़े पत्र रये झुरई।
इत तौ वियोग प्रीतम दृढ़ बिन्दु सखि ढरई।
उत खेत बाग विथिन बिच पीलिमा, छई।
वर बिन बसंत वन में बन मैं बसंत गई।।१।टेक
इत विरह व्यथा विवरन हो देह पीत भई।
उत तौ पलाश हास करत लखत अरुनई।
इत नेत्र अश्रु बहत बहत समता लै लई।।२।। टेक
उत शीत ग्रीष्म बिना, होत मौसम समतई।
उत विरह आग असुँअन कछु शीतल हो गई।
कलियन पै उतै अलियन के झुंड रये रमई।।३।। टेक
अध खिली कली इतै अली बाट जोय रई।
देखत बसंत उत्सव मन होत विकलई।
दई दई मिश्र बिछुरन है निपट निरदई।।४।। टेक

इस सैर में रूपक, यमक, पुनरुक्ति एवं अनुप्रास अलंकार की सुष्ठु योजना कवि कौशल की परिचायक है दई दई में यमक अलंकार है। एक दई का अर्थ विधाता और दूसरे का अर्थ देना हैं प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'ई' की आवृत्ति में अन्त्यानुप्रास का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इसके साथ ही तत्सम शब्दों नेत्र, अश्रु, ग्रीष्म, विकल आदि के प्रयोग से भाषा सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। बसंत का इतना सुन्दर विशद एवं आकर्षक वर्णन अत्यन्त ही दुर्लभ है। विद्यापति देव आदि कवियों ने बसंत वर्णन ऐसी ही सजीवता एवं मनोवैज्ञानिक तरीके से किया है, जो अपने आप में अद्वितीय है।

बसंत के सुहावने वातावरण में वियोगिनी की क्या स्थिति हो रही है? उसका अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक चित्रण इस सैर में किया गया है –

दोहा –ताती लागत वात, जदपि अधिक शीतल चलत।
तीक्षण फिरत दिखात, तनक चन्द्र तन पै परत।।
सैर – तन तक कै दाव तन पै रितुराज चलाता।
तलफत हौं घरी घरी तपत छिन छिन गाता।
तकलीफ स्याम दरसन बिन ज्ञान न आता।
तज भोग कहों ऊधौ किम जोग सुहाता।।१।। टेक
तरवर सुमन प्रफुलित लख था फुलगाता।
तरसत हैं नैन दरसन कौ दिन अरु राता।
तज दयौ अन्न पानी भूसन न सुहाता।।२।टेक
तमसी लगत जुनैया मलय लागत ताता।
तज बीज तीर मार ब्रह्मा त्रास दिखाता।
तकसीर भई कौन जौन बोले बाता।।३।टेक
तसवीर दिखा जाते जो बल के भ्राता।
तन की तनप बुझाती उर नेह निवाता।
तहाँ गंगाधर बाला जी निस दिन राता।।४।। टेक

विरहिणी नायिका की विकलता दिन प्रति दिन बढ़ रही है। प्रियतम की अनुपस्थिति उसकी वेदना प्रति दिन बढ़ रही है। प्रियतम की अनुपस्थिति उसकी वेदना को तीव्रतर कर रही है विरह व्यथित नायिका की इस स्थिति का चित्रण इस सैर में प्रस्तुत है –

दोहा –फूल उठे किंशुक सुमन, करन लगे तरुपात।
पंचबान सरतान के, बेधत विरहिन गात।।
सैर – बैधत है गात भावन धावन पठावना।
विरहा की कूक हिम में उठती बुझावना।
आवन के सुदिन साँचे कोउ बतावना।
रितुराज आये आली ब्रजराज आये ना।।१।टेक
कोकल कसाई कूके छिन को चुपाय ना।
जाबै की सौत कुबरी ने दई रायना।
झेले समीर झौंका हिय दमा लायना।।२।। टेक
आमन में मौर मौरे कोऊ उनसे कायना।
कैधौं बसंत प्रीतम के देश छायना।
कै रही नहीं उनको ब्रज की चायना।।३।। टेक
देखत बहार वन की चित चैत चायना।
बिन श्याम मिले बिरहा का दरद जायना।
मधुकर जे बड़े रसिया रस लै अघायना।।४।। टेक
निस जात गिनत तारे दृग पल झपायना।
वन देवी देव रूठे करते सहायना।
रस के रमेश जे दिन बिस के सुहायना।।५।टेक।

बसंत के उद्दीपक वातावरण में प्रिय का समीप्य हर्ष एवं उल्लास से मन को भर देता है। ऋतुराज बसंत के आगमन के साथ ही प्रिय का आगमन असीम आनन्द को देने वाला है। मधुमास में श्रीकृष्ण का आगमन ब्रजगोपिकाओं को किस प्रकार हर्षाभिभूत कर देता है इसका चित्रण सरावगी जी ने अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से इस सैर में किया है –

दोहा –डालन में कलियाँ लिखीं, अति लै रहे सुवास।
अब दिन नीकैं आये हैं, लागत ही मधुमास।।
छन्द –लख रथ श्री ब्रजचन्द्र कौ आनन्द अति उर छाये हैं।
पहुँचो है जमुना तट निकट झट ग्वाल बाल सुधाये हैं।
पटपीट कट लकुटी लखी उधव संदेशों ल्याये हैं।
अब भाग्य जागे हैं सखी कछु दिन सुनी कै आये हैं।

दोहा – आई सज ब्रज बाल सब, सुनत रहस कौ हाल।
मधुवन में निरतत सखी, मोहन मदन मुरार।।

सैर – सज भूषण ब्रज भूषण हित आई ब्रजबाल।
ब्रजबाल चाल लखत सकल लाजत मराल।
ब्रजचन्द्र संग थिरक थिरक नचती ब्रजबाल।
मधुवन मैं आज निरतत मोहन मदन गुपाल।।१।। टेक
बजती रुनक झुनक हैं धुंधरून कर कमाल।
लूमत विचित्र कुण्डल श्रवन पड़े रसाल।
मुरली मधुर अलापत बल खावत नंदलाल।।२।। टेक
सौरभ समीर बिहरत लागत करत निहाल।
झांझे मृदंग गाजैं मुँह चंग अति विशाल।
सुध बुध सकल भुलानी हिय टूटी वनमाल।।३।।टेक
सुरमुनि सकल सिधाये लीला को सुनहवाल।
पुष्पन की करै बरसा ब्रह्मा महेश हाल।
गुरु सुमर सैर हरगोविन्द कहत है रसाल।।४।। टेक

बुन्देली लोकरागिनी में निबद्ध, भाव एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न सैर साहित्य की यह सम्पदा अद्वितीय एवं अप्रतिम है। निश्चित रूप से बुन्देली सैर साहित्य की इस विपुल सम्पदा का प्रकाशन साहित्य जगत के लिए वरदान सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची –

१. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, श्री राम चरण हयारण, मित्र पृष्ठ सं. १८४
२. छतरपुर अंचल के लोकगायक श्री रामदास लखेर जी के सौजन्य से।
३. सैर रचनाकार पं. मदनगोपाल शुक्ल जी के निजी संग्रह से।
४. सैर रचनाकार पं. रामगोपाल मिश्र जी के निजी संग्रह से।
५. साहित्यकार श्री श्रीनिवास जी शुक्ल के सौजन्य से।
६. साहित्य प्रेमी श्री ऋतुराज सरावगी के सौजन्य से।

– तमराई मुहल्ला, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली कविता –

अब तौ ई खौं छोड़ौ सैंया

– डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

घरवारी बोली घरवारे सें, कैसे होइ गुजारौ।
तुमने पी–पी दारू सैंया, घर पोलौ कर डारौ।।

जब आई ती ई घर में, तौ खूब हतौ तो डेरा।
चांदी सोने के लद गई ती मैं चढ़ाव की बेरा।।

बखरी के दोरें दस ठउवा, धौरा बैल बंधत ते।
भैंसन की दूधई सें सैया, मटका सोऊ भरत ते।।

घर भरो तो नांज पानूं सें, मजा ऐन उड़रए ते।
दद्दा सोऊ तीन गांव में, साव कक्का बजरयते।।

अब जौ लगो शनीचर घर में, मिट गई सम्पत् सारी।
बैल रये न एकेऊ कैसें, करहौ जा हरवारी।।

चांदी सोनौ बेंच मिटा दयो, नैंया बगल रुपैया।
कैंसे कटै बताव जौ मांगे कौ परौ समैया।।

घरे नईं नाज खावें खों रमियां–छमिया रो रय।
उठौ तनिक काय अबलौ जौ तान पिछौरा सो रय।।

पियत पियत ई विष के प्याला खौं सूख ठठेरे हो गय।
अबतौ ई खौं छोड़ौ सैंया, काय जीवन खो रय।।

– सहा. प्राध्यापक वाणिज्य,
शा.महाविद्यालय, राघौगढ़, गुना (म.प्र.)

बुन्देली कविता –

बसंत विरहणी

– डॉ. शिवाजी चौहान, 'शिवा'

सखीरी आगव ललित बसंत
अबै लौं घरै न आए कंत
भेज दई पत्तन की पतियाँ
प्रेम की लिख लिख कें बतियाँ,
भरम से भरीं इतै मतियाँ
काय कररए मिलकें घतियाँ
गंध गमकत है दसऊ दिगंत। सखीरी आगव ...
झूल रए आमन ऊपर झौंर
झौंर में झाँक रए हैं मौर
मौप पै भरत भाँवरें भौंर
भौंर के मन औरई के और
छटा को दिखबै आदि न अंत। सखीरी आगव ...
भरें फिर रऔ बिरहा बन्दूक
प्रान रए जी के मारें सूक
करेजौ काढ़त कोइल कूक
उठत हिय में हरदारे हूक
रुकत ना अँसुवा हे भगवंत। सखीरी आगव ...
अकेलै घर में रहौ न जाय
न खाबौ पीबौ नेंक सुहाय
लाज बाहर कढ़तन में आय
शिवाजी गीत बसंती गाय
पिया आए आनंद अनंत। सखीरी आगव ...

– नारायणपुरा गुरसरांय, झांसी (उ.प्र.)

प्रतापसाहि की अप्रकाशित कृति - 'महावीर कौ शिख-नख'

-डॉ. गंगाप्रसाद बरसैया

रीतियुगीन सर्वांग निरूपक आचार्य कवियों में चरखारी राज्य के राज्याश्रित कवि प्रतापसाहि का प्रमुख स्थान है। वे चरखारीनरेश विक्रमाजीत और रतनसिंह के निकट और सम्मानित कवि थे। हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों में उनका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है। प्रायः सभी प्राचीन ग्रंथों में उनके छंद संकलित हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियों से उन्हें मतिराम, भिखारीदास और श्रीपति से बीस (अर्थात श्रेष्ठ) स्वीकार किया है। वे लिखते हैं – ''यदि हम आचार्यत्व और कवित्व दोनों के एक अनूठे संयोग की दृष्टि से विचार करते हैं तो मतिराम, श्रीपति और दास से ये कुछ बीस ठहरते हैं। इधर भाषा की स्निग्ध, सुख–सरल गति, कल्पना की मूर्तिमता और हृदय की द्रवणशीलता मतिराम, श्रीपति और बेनीप्रवीण के मेल में जाती है, तो उधर आचार्यत्व इन तीनों से भी और दास से भी कुछ आगे ही दिखाई पड़ता है। उनकी प्रखर प्रतिभा मानों पद्माकर की प्रतिभा के साथ–साथ रीतिबद्ध काव्यकला को पूर्णता पर पहुँचाकर छोड़ दिया। इनकी भाषा में बड़ा भारी गुण यह है कि वह बराबर एक समान चलती है, उसमें न कहीं कृत्रिम आडम्बर का अडंगा है, न गति का शैथिल्य और न शब्दों की तोड़–मरोड़।''

प्रतापसाहि की राज्याश्रित अवधि विक्रमाजीत और रतनसिंह से जुड़ी हुई है। विक्रमाजीत का शासनकाल संवत् १८३९ से संवत् १८८६ तक तथा रतनसिंह का संवत् १८८६ से संवत् १९१७ तक रहा है। प्रतापसाहि ने इन दोनों का बार–बार उल्लेख किया है। उन्होंने रस, छन्द, अलंकार–नायिका भेद संबंधी ग्रंथों की रचना के साथ ही टीकायें भी लिखीं। काव्य के सभी अंगों संबंधी ग्रंथों की रचना करने के कारण ही इन्हें सर्वांग निरूपक आचार्यों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है। अभी तक प्राप्त जानकारी के अनुसार इनके चौदह ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने ग्यारह और डॉ. किशोरी लाल गुप्त ने दस ग्रंथों को स्वीकार किया है। जबकि डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' इनके चौदह ग्रंथों की चर्चा करते हैं। यद्यपि पूर्व के आलेखों में मैं इनके ग्रंथों के विवरण दे चुका हूँ, फिर भी यहाँ उनका उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। उनके ग्रंथ इस प्रकार हैं –

१. व्यंग्यार्थ कौमुदी (सं. १८८२), २. काव्य विलास (सं. १८८६), ३. जयसिंह प्रकाश (सं. १८५२), ४. श्रृंगार मंजरी (सं. १८८९), ५. श्रृंगार शिरोमणि (सं. १८९४), ६. अलंकार चिन्तामणि (सं. १८९४), ७. काव्य विनोद (सं. १८९६), ८. रसराज की टीका (सं. १८९६), ९. रतन चन्द्रिका (सतसई का टीका सं. १८९६), १०. जुगल नखशिख (सीताराम का नखशिख वर्णन), ११. बलभद्र नखशिख की टीका।, पूर्ववर्ती विद्वानों ने उनके इन्हीं ग्रंथों का उल्लेख किया है किन्तु डॉ. किशोरीलाल गुप्त के मतानुसार 'जयसिंह प्रकाश' उनकी रचना नहीं हैं। क्योंकि उसका रचनाकाल उनसे मेल नहीं खाता। इधर श्री उदयशंकर दुबे ने उनके तीन अन्य ग्रंथों की खोज की है।, १. हनुमत पच्चीसी, २. हनुमान विनय और, ३. महावीर को शिखनख, इस प्रकार उनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या चौदह हो जाती है। डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' प्रताप सिंह की ग्रंथावली का सम्पादन कर रहे हैं। आशाकी जानी चाहिए कि ग्रंथावली के माध्यम से कवि का सम्पूर्ण जीवन परिचय और कृतित्व प्रमाणिक रूप में उजागर होगा।

आचार्य कवि प्रतापसाहि ने अपना और आश्रयदाताओं, का परिचय अपने ग्रंथों में प्रायः दिया है। 'काव्य विलास' (संवत् १८८६) में इसका विवरण देते हुये उन्होंने स्वीकार किया है कि इस ग्रंथ की रचना चरखारी नरेश विक्रमाजीत के आदेश से की गई है। जिसमें पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों का भी सहारा लिया गया है –

गिहिरवार कुल जग विदित, जाहिर जम्बूदीप।
प्रगट भये औतार इक छत्रसाल अवनीप।
पुनि प्रगटे ता बंस में, नृपति विक्रमाजीत।
जिनकौ सहज सुभाय यह, काव्यकला पर प्रीत।
निकट रहे तिनके सदा, कवि पंडित परवीन।
कोष व्याकरन शास्त्र पुनि काव्य कलानि प्रवीन।
नृप अरु सुकविन आदेसहि, पाइ सुमति अवकास।
लघुमति सुकवि प्रताप किय, ग्रंथ सु काव्य विलास।
बरनै साहित्य भेद ये, पूरब ग्रंथ अपार।
मम्मट मत मनु में समझि, कहि संक्षेप प्रकार।
काव्य प्रकास, प्रदीप लखि, साहित दरपन देख।
सुकवि प्रताप विचार चित कहौं सुमति अवशेष।
रतनसाहि सुत जग विदित, अरु सिसोदिया भाट।
नृपति, विक्रमाजीत के हुक्म सुपाइ निराट।
संवत् ससि बसु बसु बहुरि, ऊपर सट पहिचान।
सावन मास त्रयोदसी, सोमवार उर आन।

इति कवीन्द्र कुल भूषण रतनेस तस्यात्मज सुकवि प्रतापसाहि विरचितायां काव्य विलासे काव्य दोस बरननो नाम सप्रम प्रकासः।'

अभी तक प्रतापसाहि के कुछ ही ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. आत्माराम शर्मा अरुण ने अलंकार चिन्तामणि काव्यांग कौमुदी तथा काव्य विलास का सम्पादन–प्रकाशन किया है। वे आगे भी जुटे हुए हैं। प्रताप साहि के सारे ग्रंथ प्रकाश में आना जरूरी हैं। वे साहित्य की निधि हैं। प्रतापसाहि के पिता सुप्रसिद्ध कवि रतनेस हैं, उसकी भी जानकारी बहुत कम लोगों को है। इन सबका परिचय भी सामने आना चाहिए। यहाँ मैं उनके ग्रंथ महावीर को सिखनख को प्रस्तुत कर रहा हूँ जो संभवतः प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रंथ बहुत छोटा है जिसमें हनुमान जी के शिख से नख तक के अंगों का पैंतालिस छंदों (कवित्तों) में वर्णन किया गया है। इन ४५ छंदों में प्रारंभ के चार, और अंत के दो दोहा भी शामिल हैं। अंगों में सिर, भाल, भृकुटी, मुख, नाक, अधर, दसन, जीहा, नेत्र, नजरि, कपोल, श्रवण, ग्रीवा, असकंध (स्कंध), भुज, करतल, पंजा, छाती, उदर, नाभी, रोमराजी, कूषैं पीठि, लगूर, कटि, जंघ जानु, पीडुरी, चरन, गुलफ अंगुरी, नख पदतल हैं। इस शिखनख में उल्लिखित तथ्य से पता चलता है कि प्रतापसाहि को असह्य सिरदर्द हुआ था। दवाओं से ठीक न होने पर उन्होंने तुलसीदास के 'हनुमान बाहुक' की भांति पहले हनुमत पच्चीसी' की रचना की किन्तु कोई राहत न मिलने पर महावीर शिखनख लिखकर हनुमान जी से कृपा की प्रार्थना की। प्रारंभ के दोहा क्रमांक २, व ३ में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

प्रथम पचीसी जो करी, सो न करी तुम कान।
ताते अब शिख–नख करत, महादान हनुमान।
सही जात सिरपीर नहिं, अब मुहिं पवन कुमार।
सो अब दूर करीजिये, अपनो विरद सम्हार।

कृति के अंतिम कवित्त क्रमांक ४३ में वे अपने मन की वेदना इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

श्रवन सुनी है चारि जुग ते तिहारी चाल,
सोई वह चाल अब जानी ना परति है।
भनक परे तें कान तनक न देर देखी,
कलिजुग जापे सो प्रमानी ना परति है।
कहै परताप सुधि लीती सदा दासन की,
जानि असमंजस बखानी ना परति है।
निकसि गई है दया ही ते अरु जीतें,
महावीर अब रीति कछू जानी न परति है।

इस महावीर शिख–नख की रचना संवत् १८९६ में हुई जिसका उल्लेख कवि ने कृति के अंतिम दोहों में इस प्रकार किया है –

किय सिख नख बजरंग को, सुकवि प्रताप विचार।
जो बाचै समुझै सुनै, ताको मंगलचार।
संमत ससि बसु नवति, ऊपर रस पहिचानि।
मार्ग मास सित पच्छ तिथि, नौमी मंगल मानि।

संवत् ससि–१, बस–८, नवति–९, रस–६, १८९६ अगहन शुक्ल नवमी मंगलवार, संवत् १८९६ में। नीचे यह पंक्ति पुष्पिका के रूप में अंकित है – ''इति श्री कवीन्द्र कुलभूषण रतनेसात्मज प्रतापसाहि विरचितायां महावीर सिष–नष बर्ननो नाम पूरन प्रकास।१ ।।

यहाँ प्रतापसहि द्वारा रचित सम्पूर्ण 'महावीर को शिख–नख' प्रस्तुत है –

परताप साहि रचित महावीर कौ शिख–नख
श्रीमते अनुमानाय नमः।।
अथ महावीर कौ शिख–नख लिख्यते।

दोहा –महावीर बजरंग के, जुगल चरन सिरनाइ।
तिनकौ सिख नख करत हौं, निजु मति सरल सुभाइ।१ ।।
अर्थ, धर्म, जस कामना, लहियतु मिटत विषाद।
कबहूं तिनके दास की, परी न वाद फिराद।।२ ।।
प्रथम पचीसी जौ करी, सो न करी तुम कान।
ताते अब सिख–नखकरत, महादान हनुमान।।३ ।।
सही जात सिर पीर नहि, अब मुहि पवन कुमार।
सौ अब दूर करीजियै, अपनौ विरद सम्हार।।४।।

सिरवर्णन –

कवित्त–दस मुख मुख वारौ प्रीति भभीषन सदा,
जीवन कौ जीवन सजीवन सुतांत कौ।।
अमल अदोष परपूरन कलानिधि सौ,
करन सदा जौ जानु गंजन के अन्त कौ।
कहै परताप सूरौ रूठौ रविमण्डल (पै),
पानिप कौ पूरौ उग्र ओजस अनन्त कौ।।
वरन सके जो कहि कवि कौ है,
निज जन मन मोहे सीस मोहे हनिमंत कौ।।५।।

भाल–वर्णन –

कवित्त–दस मुख साल सब सजन कौ जाल,
अरुनोदय सौ लाल बल विक्रम अपार कौ।।
जन पै दयाल कलिकाल सौ कराल,
हाल करन सदा जौ भव पारावार पार कौ।।
कहै परताप वाल विमल विभाकर सौ,
दियत मसाल ज्वाल माल विकरार सौ।।
धरनि कौ सु प्रतिपाल महि मित्रन कौ,
सौहत विसाल भाल पवन कुमार कौ।।६ ।।

भृकुटी वर्णन –

कवित्त–रंजित रंगीली राम नाम की कुट पै,
लकुटी है कर मैन अैन आभा अद्भुत की।।
प्रगटी भरी है मनि मरकत रेखवारी,
जुगल जुरी हैं रीठि रंचित प्रभूत की।।
कहै परताप भव सिंधु सक्टी हैं चारु,
चंचित पुटीं हैं उपटी हैं करतूत की।।
सोभा सों सटी हैं कवि छटन छुटी हैं,
डीठि तन की तटी हैं भृकुटी पौनपूत की।।७।।

मुख वर्णन –

कवित्त–लाजै सुनि विहद गराजै मेघ मालन की,
भाजै रजनी चरन गरव अभंग कौ।।
सीधै सब साजै अव राजे–राजै,
गल गाजे बढ़ै वीर रस तरल तरंग कौ।।
कहै परताप छाजै रसना रसिक नाम,
कपिन समानै करै आनद निमंग को।।
साजै सब सुखन निवाजै जो हमेस,
छवि छाजै वैस वदन विराजे बजरंग कौ।।८।।

नाक वर्णन :

कवित्त–पतिका प्रभा की लैन सौरभ की नलिका है,
कलिका अगस्ति तरुबारी अनुहार की।।
खगपति चुंचवारी परम प्रकासिका है,
मासिका असुर दल प्रबल अपार की।।
कहै परताप सुक तुंड की बिनिंद कहै,
विरची विरंचि सी वा सुर वन कै सार की।।
नाक अरि रोके आक करन विवाकवारी,
नाक दैनवारी नाक पवन कुमार की।।९।।

अधर वर्णन –

कवित्त–जावक जपाकै जैतवार हैं ललित,
कुरविंद अरविंद वाही आभा अनुहार कै।।
सुभग पनाट जुत नीचै नासिका के,
सुधा सिंघहि घुलीचै छै वचन अनुसार के।।
कहै परताप राजै तिनके बखान कौन,
........न हरत वर वेदन.........के।।
कालनि कलित राजै सुन्दर सुयक विंव,
अच्छ अलोल राजै पवन कुमार कै।।१०।।

दसन वर्णन –

कवित्त–जाते खल धो मन की महिमा मली सी जात,
दीपति दली सी दसकंठ मजबूत की।।
विकट विलौके बंक लंक ऊ हरनी सी,
.... पाट पत्नी सी. जात वाली पुरहूत की।।
कहै परताप उलटी औ पलटी सी जात,
मयतनया की वैग विभव विभूत की।।
पीसी जात जासौं जातुधान की रतीसी लसी,
आनन में दसन बत्तीसी पौनपूत की।।११।।

जीहा वरनन –

कवित्त–निकली बिमल जातै सत कोटि रामायन,
भेदन सहित वर वेदन उचार की।।
अति अभिराम भरी नाम की भंडार,
गुन गुनन की पारावार संचत प्रचार की।।
कहै परताप कौक नद के दलन कैसी,
कोमल अमल सुद्ध आंकर विचार की।।
महाराम नाम स्वांत बूंद की पपीहा,
हरि जस रस पीहा जीहा पवन कुमार की।।१२।।

नेत्र वर्णन –

कवित्त–मीन से चपल अैन हनकी प्रभा से खासै,
गंजन गरब गति खंजन अमंग कै।।
कानन लौ लागे रस विषय विरागे,
राम नाम रस पागे अनुराग और जंग के।।
कहै परताप अरुनारै कारे सेत,
विसिष विसारे अनियारे अनमंग के।।
रिघ रज राखै नाखै भरम के भिंग धर,
धीरज के धिंग पिंग नैन बजरंग के।।१३।।

नजरि वर्णन –

कवित्त–सुख की सला है वर दैन कमला है,
काम तर की कला है विकला है अद्‌भुत की।।
जीवन की जीवन नसीब वै नसीवन की,
मूर है सजीवन की उपमा अपार की।।
कहै परताप जन पर जब सूधी होत,
साहिबी समूधी देत विमल विभूत की।।
गंजन विधा की भय भंजन सुजन मन,
रंज नेह नजरि प्रभंजन के पूत की।।१४।।
०० ०० ००
जाकी ओर परति कृपा की कोर पार वारी,
ताकी महिमा विचारी हरि भांति अनजानि है।।
कहै परताप का कामधेन की कहानी कहा,
कवित्त बखानी अभिलाष पुजवनि है।।
औढ़र ढरनि दीन पौषन भरन दीह,
दारिद दरन काम तरु की फलनि है।।
मोद की भरनि सदा मंगल करन,
यह देवी महावीर की चितैनि चिंतामनि है।।१५।।

कपौल वर्णन –

कवित्त–छवि के छपाकर दिवाकर से जौतवंत,
ललित लसंत वैस वनक सुढार के।
कारन कला से पैल मलन फलाकै मरै,
पानिप तलाके दीह दीपति उदार के।।
कहै परताप अरुनोदय वरन,
जन मन के हरन सदा उपमा अपार के।।
दरस अमोल आदरस तें अतौल,
गौल कलित कपोल––– के और के ।।१६।।

श्रवन वर्णन –

कवित्त–सीमा सीस मंदिर के सुंदर झरोखा चारु,
सुभग सुढार हरि जस अभिमति के।।
निसि दिन आठौ जाम अति अभिराम,
राम नाम के भंडार सदा दैन जे सुगति कै।।
कहै परताप रूप सागर के कूप भरै,
उपमा अनूपम विदारन विपत्ति के।।
गाये वर वैदन बनाये विधि नीकी भांति,
कहियतु श्रवन सुहाये हनुमति के।१७।।

ग्रीया (ग्रीवा) वर्णन –

कवित्त–सुन्दर सुढार कल कंबु सी विराजै छवि,
छाजै भल भ्राजै दीह दीपति उदार की।।
त्रभुवन तन की त्ररेख जुत सोहै,
संत जन मन मौहै जोहै उपमा अपार की।।
कहै परताप गाई मुदित मुनीसन,
सु पाई तिहि विसद बड़ाई अधिकार की।।
सीमा मरजाद की भयानक न भीमा सब,
जगत की धीमा ग्रीया पवन कुमार की।१८।।

असकंध (स्कंध) वर्णन :

कवित्त–कौरि करी कुंभन के गरब गिरावै कंध,
निदरै वृषभ वल विक्रम अपार कै।।
सेले मेर मन्दिर उठैले गढ़ कोट सुभ,
सरस सराहै जे बनाये वज्र सार के।।
कहै परताप भार धारै तीन लोक ही कौ,
सार मथ सूरै बनै वनक सुढार के।।
तेज तिगमंस बस जगत प्रसंस,
अब नीके अवतंस अंस अंजनीकुमार के।१९।।

भुज वर्णन :

कवित्त–मेंद मेंदनी के खल दलन के खंड लखे,
अखिल अखण्ड वल विक्रम अनन्त के।।
मुंड बिन करत वितुंडन के झुंड–सुंड,
तौरे बरखंड फोरे मोरे दिगदंत के।
कहे परताप गनै प्रबल प्रचंड,
परचंड सुधि लैन वारे सुमन ससंत के।।
चंड कर कलित विहंड बलबंड अति,
उद्धत उदंड भुजदंड हनुमंत के।।२०।।
समर अदाहें पर पूर बल दाहैं,
दीन रच्छक सदा हैं, बल विक्रम अपार कीं।।
मैटन मुधा है छमा वारीं वसुधा हैं,
सुधाकर की सुधा हैं विवधा हैं बज्रसार कीं।।
कहै परताप वर देन की अपरना हैं,
संत सरना हैं झिरना रमागार कीं।।
सुजन निबाहैं खल दल अवगाहैं,
सुर सकल सराहैं बाहें पवन कुमार कीं।।२१।।
जा भुज सौं ल्यायौ द्रोनगिरि लछिमन हेत,
जा भुज सौं पौरिष प्रकास्यौ भुज बीस पै।।
जा भुज सौं अच्छहि पछारयो परतिच्छ स्वच्छ,
जा भुज सौ दीन्है वर कुंभज मुनीस पै।।
जा भुज सौ असुर संघारे गढ़ लंक जस,
जा भुज सों (बांधौ) पायो देव कौटिक तिंतीस पै।।
सो भुज कृपा करि प्रभंजन के पूत सदा,
राखौ मजबूत निज दासन के सीस पै।।२२।।

करतल वर्णन –

कवित्त–आनद के अैन हैं बड़प्पन के दैन,
थान थप्पन उथप्पन हैं चौदह भुवन के।।
रक्षक मुनीसन के भक्षक खलन के हैं,
सुजन निबाहक जे दाइक दुवन के।।
कहै परताप जाप करत जिहान,
भान वेग बल प्रचंड औज उद्दित उवन के।।
कापत रहत सदा तल और वितल,
करतल हैं प्रबल ये समीर के सुवन के।।२३।।

पंजा वर्णन –

कवित्त–असिन से जिनके प्रहार है कठिन,
काल दंड ते प्रचंड बाल विक्रम अपार के।।
रच्छक सुजन भीर भच्छक खलन के हैं,
सिच्छक सुरन राम नाम अनुसार के।।
कहै परताप थान थप्पन–उथप्पन,
बड़प्पन करन वारे भारे सार धार के।।
गिरि गढ़ गंजा दसकंध मुख भंजा,
पनाजा वेस पंजा अंजनी के अेंददार के।।२४।।

छाती वर्णन :

कवित्त–खल दल घाती संत सुजन संघाती,
समर सन अघाती बल विक्रम अपार की।।
ताती दस कंधर के दल पै चबाती,
जंग जुरै उतपाती कर करती सार वाह की।।
कहै परताप संत सुरन सिहाती,
काल नेम से अराती हनिबै कौ बज्रसार की।।
वीर रस राती करै दारिद हिजाती,
प्रभु गुन गन भाती छाती पवन कुमार की।।२५।।

उदर वर्णन –

कवित्त–अमित अजर भरयों सुजस कौ पारावार,
सुन्दर सुढार छवि पुंज छाइयतु है।।
बरनै सुकवि बल बुद्ध कौ अथाह,
गुन गनन की थाह कबहूं न पाइयतु है।।

कहै परताप राम रस को भंडार,
त्रभुवन को अधार जन मन भाइयतु है।।
पीवन उदधि जग जीवन मुदर महावीर
इमि रावरौ उदर गाइयतु है।।२६।।

नाभी वर्णन –

कवित्त–रूप की निवान जन जी की सुख दानि,
मुद मंगल की खानि विसात वारी अद्‌भुत की।।
सोभा सुखसागर की भवन अनूप,
जसन कसन कूप अति उपमा अपार की।।
कहै परताप शेष आकर अमी को मूल,
कमला वसी की विमला है करतूत की।।
फाबी बीच उदर अपीच छवि छाजी,
जन मैटन की भावी नाभी रघुवर दूत की।।२७।।

रोमराजी वर्णन –

कवित्त–नाभी ते निकसि कढ़ी आनंद की अैनी,
मंजु मधुकुर सैनी छवि दैनी अद्‌भूत की।।
सौभा सुख सागर की तरल तरंग,
अब भंग गति अचल अभंग मजबूत की।।
कहै परताप जलधार जमुना की,
परि पूरन प्रभा की खासी उपमा अभूत की।।
सोभा सिरताजी बीच उदर विराजी,
करै जन मन राजी रोम राजी पौन पूत की।।२८।।

कूषै वर्णन –

कवित्त–गाई वर वेदन सुहाई मन भाई,
विधि विसद बनाई सुख सुषमा अपार की।।
जिनकी भलाई भनै कैसे कविराज,
कोऊ पाई जिन विसद बड़ाई सुभ सार की।।
कहै परताप हरि जस की भंडार भरीं,
पौषन भरन संत सुजन सुधार की।।
भूषै तन महत मयूषैं मारतंड कैसी,
खलन विदूषैं कूषैं पवन कुमार की।।२९।।

पीठि वर्णन –

कवित्त–गाई वर वेदन बड़ाई मन भाई जो,
बनाई विधि सरस सुहाई वज्रसार की।।
सुवरन पट्टिका सी कदलि के पत्रिका सी,
सोहे मन मोहे उपमा न अधिकार की।।
कहै परताप जाकी वरने भलाई कौन,
आसन समय दसरथ के कुमार की।।
बल की विहद करतूत अनहद,
पीठि विसद विसाल अंजैनी के अेडदार की।।३०।।

लगूर वर्णन –

कवित्त–पूर करि अगिन कगूरन कगूर लंक,
चूर करि अतुल अतंक के उमंग को।।
पारावार मापन अखंड परचंड दंड,
प्रबल प्रचंड कालदंड रन रंग कौ।।
कहै परताप महा ओज कौ निधान,
कपिदलँ कौ निसान सान वारौ सफजंग को।।
वरन्यौ विवुध मुद मंगल कौ मूल,
भव सूल हर ललित लगूर बजरंग कौ।।३१।।

कटि वर्णन –

कवित्त–ललित ललाम छाम अति अभिराम,
लख्यौ जगत तमाम भाग वारौ बलवंत कौ।।
जाके अवलोकें मान भोकें मृगराजन कौ,
कपिन समाजन में सोभित सुतंत को।।
कहै परताप नीचे नाभी के विराजे,
जुग जंघन पै छाजे राजै उपमा अनंत कों।।
सुघट सवारौ विधि संकट हरन वारौ,
वंकट विकट कटि तट हनिमंत कौ।।३२।।

जंघ वर्णन –

कवित्त–पारावार वार पार मापिबै के दंड,
काल दंड के उदंड बल विक्रम अपार के।।
मार में निपट निहारे लोह लंगर के,
प्रबल प्रचंड जैसवारै बज्रसार के।।
कहै परताप जग तीतल के थंम बल,
तिनके अदंभ अरि करन समार के।।
जिनकें भदंष पहिचानै दसकंध,
अैसें उदधि उलंघ जंग पवन कुमार के।।३३।।

जानु वर्णन –

कवित्त–मानवारै महत प्रमान वारै पौरिष के,
पानि पति वान वारे मारे मजबूत कें।।
भानवारे आतप कृसानवारे तेजवान,
मुनिगन गानवारे विक्रम अकूत के।।
कहें परताप अवसान मघवान वारै,
पूरन प्रमार वारै विमल विभूत कै।।
विविध बखान वारे, सुजस मकान वारे,
सानवारे जानु द्वै बखानै पौन पूत के।।३४।।

पीडुरी वर्णन –

कवित्त–थाकतीं कहूं न पारावार तट ताकती हैं,
नाकती उदधि वल विपुल उमंग की।।
सुभग सुढार बेलनी है विधि हाथन की,
रुचिर बनाई मन भाई रस रंग कीं।।

कहै परताप रजनीचर संघारिबे कीं,
सुजस सम्हारबे कीं जुगति प्रसंग कीं।।
हरतीं सदा जै निज दासन पै ढुरीं,
प्रभा पूरन पुरी हैं पींडुरीं बजरंग कीं।।३५।।

चरन वर्णन –

कवित्त–नायक विजै के वर दाहक दुनी में संत,
सुजन सम्हारत विदारन विपत्ति के।।
कुलिस से जिनके प्रहार है कठिन,
कल कोमल अमल कोकनद की भगति के।।
कहे परताप दीन कोटिन निवाजै,
छवि छाजे अैन आनद सुदैन अभिमति के।।
खेदज करि मारे खेद खलन के खोभ,
बंदौं आजनेय चरन सरोज हनुमति के।।३६।।

गुलफ वर्णन –

कवित्त–रूप सर वीजन में अंकुर सरोजन के,
कंदुल मनोज मंजु मोदक मुनीस के।।
सुमन गुलाब कैसे ललित ललाम,
अभिराम वर दैन देव कोटिक तितीस के।।
कहै परताप गौन गुलिका अमंद,
छल छंदन रहित जग वंद विसै बीस के।।
राम जस मानिक पुरट के कुलफ अैसे,
सुलफ सुढार गोरे गुलफ कपीस के।।३७।।

अंगुरी वर्णन :

कवित्त–कलित कलाम कामतर कों कली हैं,
सोहैं विटप फली है भली भांति मजबूत की।।
आनद की अैन जन मन सुधि लैन वारी,
निसि दिन दिन वारीं विमल विभूत की।।
कहै परताप पंच साखा प्रेम तरु वारी,
रुचिर बनाई विधि कर करतूत की।।
जिनकौ लखत अनी कैयक मुरी हैं,
मनि मानिक पुरी हैं अंगुरी हैं पौन पूत की।।३८।।

नख–वर्णन –

कवित्त–ससि कर हूं से निसि दिवस प्रकास भान,
सोहे परभात वारे ओडगन खासे हैं।
चलत गलीन गंग वीचिन से सौभमान,
रींद रुचि हाथ रचै अमृत बतासै हैं।।
कहे परताप महिमा तिनकी बखानै कौन,
विमल विकासन प्रकासन प्रकासै हैं।।
पाइनि पुनीत नखराजै महावीर कै,
यों पंकज दलन मानौं नखत निकासे हैं।।३९।।

पद तल वर्णन –

कवित्त–अंकुस कुलिस ध्वज चिह्न जुत सौहें,
अवरौहैं मन मोहैं वैस विद्रुम विमल से।।
अरुन अनूप गुल नारन के भूप,
पहिचानैं जात जावक जपा के भूम थल से।।
कहै परताप तैसे सुंदर सुभग चारू,
आवदार सुमन गुलाब झला झलके।।
पग तल विमल विराजै पौनपूत वारै,
कोमल अमल कंज दल मखमल से।।४०।।

०० ०० ००

श्रवन सुनी है चारि जुग ते तिहारी वानि,
अब क्यों विसारी वह दारिद के दाहे की।।
ओढर ढरन दीन पौषन भरन वारी,
भूली सुधि सारी सो विपत्ति अवगाहे की।।
अब कलिकाल ते डराने सौ देखात,
महावीर सुधि लेत ना सुजन चित चाहे की।।
देवे की विभूत हरि लेवे की विषम पीर,
जन सुधि लैबै की तिहारै देर काहै की।।४१।।
सेवत हमेस येक जानि तुमही कौ सदा,
सरन भये तै किहि कौन काज सरौ है।।
जापै कृपा कोर करि हेरे, तुम येक बार,
ताके ग्रह कलप तरोवर से तारो है।।
कहै परताप दीनौ तुम कौ हुकम प्रभु,
बैठो जह सकल मुनीसन को दारौ है।।
करिबौ सु काज कौन सरिबौ महाबीर,
हरिबो कलेस को तिहारे वाट पारौ है।।४२।।

०० ०० ००

त्रवन सुनी है चारि जुग ते तिहारी चाल,
सोई वह चाल अब जानी ना परति है।।
भनक परे तें कान तनक न देर देखी,
कलिजुग जापे सौ प्रमानी ना परति है।।
कहै परताप सुधि लीति सदा दासन की,
जानि असमंजस बखानी ना परति है।।
निकसि गई है दया ही ते अरु जी तें,
महावीर अब रीति कछू जानी ना परति है।।४३।।

दोहा –किय सिख नंख बजरंग को, सुकवि प्रताप विचार।
जो वाचै समुझै सुनै ताकौ मंगल चार।।४४।।
संमत ससि वसु नवति ऊपर रस पहिचानि।
मार्ग मास सित पच्छ तिथि नौमी मंगल मानि।।४५।।
इति श्री कवीन्द्र कुल भूषन रतनैसात्मज
सुकवि प्रताप साहि विरचितायां
महाबीर सिख–नख वर्ननो नाम पूरन प्रकाश।।१।।

– एम.आई.जी. १२, चौबे कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

राय प्रवीन

- डॉ. उमाशंकर पाठक

ओरछा बुन्देलखण्ड का सांस्कृति का केन्द्र रहा है। बुन्देली साहित्य, भाषा एवं संस्कृति को वास्तविक अस्मिता देने का सम्पूर्ण श्रेय ओरछा को है।

साहित्य, संगीत और कला की त्रिवेणी की से एक धारा रायप्रवीण के रूप में प्रवाहित थी।

राय प्रवीन का जन्म ओरछा राज्य की एक जागीर कछौआ ग्राम में हुआ था। वह लोहार जाति की कन्या थी। उसके परिवार वाले लुहार–गिरी का कार्य करते थे। राय प्रवीण असाधारण सौंदर्य की धनी थी। ओरछा नरेश रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह कछौआ के जागीरदार थे। उनकी दृष्टि इस नव यौवना पर उस समय पड़ी जब वह अपने पिता के कार्य में हाथ बटा रही थी। वह लोहा गलाने हेतु मरसान खीच रही थी। उसकी सुन्दरता पर इन्द्रजीत सिंह इतने मंत्रमुग्ध हुए कि उन्होंने अपनी हृदय की वेदना को एक दोहा के रूप में प्रकट करते हुए कहा–

वह हेरनि अरु वह हँसनि, वह मधुरी मुसकानि।
वह खेंचनि मरसान की, हिय महँ खटकति आनि।।

महाराजा इन्द्रजीत सिंह के हृदय की व्याकुलता ही उसे राजदरबार की ओर ले आई जो केशव के साहित्य सृजना का केन्द्र बिन्दु बनी।

रायप्रवीन ओरछा राजदरबार की प्रधान नृर्तकी के पद पर आसीन हुई। वह संगीत एवं नृत्य के प्रति समर्पित थी।

राय प्रवीन स्वयं एक कवियत्री थी उसको कविता करने की कला और कौशल में केशवदास ने अभिवृद्धि की थी। वह लेद ख्याल ध्रुपद धमार एवं तराने गाती थी। उनके आधार पर शास्त्रीय नृत्य करती थी, इस प्रकार केशव का गायन एवं रायप्रवीन का नृत्य दरवारियों को मंत्र मुग्ध कर देता था।

मृदंग पखावज सारंगी, सितार और तम्बूरा आदि वाद्य यंत्रों के साथ वह ख्याल ध्रुपद गाती थी जिसे छः रागों के साथ गाने में वह सिद्धहस्त थी। रायप्रवीन तत्कार और धुमकार वाले देशज नृत्य कला में दक्ष थी। वह भक्ति विषयक पद गान भी करती थी। केशव के श्रृंगार के रस से युक्त गायन पर भाव विभोर हो स्वर ताल में नृत्य करती थी।

लेद को बड़ा ख्याल छोटा ख्याल एक ताल दादरा और फिर तीन ताल तक प्रस्तुत किया जाता था। राय प्रवीन के समय मुख्य रूप से पखावज सारंगी वाद्य ओरछा में प्रचलित थे।

रायप्रवीन कत्थक नृत्य में भी प्रवीन थी। सखी सम्प्रदाय में उसके निम्न पद उनके संगीत पर प्रकाश डालते हैं जैंसे –

उरझ गई को सुरझाय दियौ माधव।

राय प्रवीण को छन्द शास्त्र में दक्ष करने के लिए केशवदास ने कवि प्रिया ग्रन्थ लिखा था नायिका भेद में दक्ष कर उसकी परीक्षा भी ली थी।

कहते हैं कि संगीत सम्राट तानसेन की मृत्यु पर उनकी संगीत प्रवीन वेगम तानी उनका स्थान न भर सकी तब सम्राट अकबर को राय प्रवीन की चाह हुई। राय प्रवीन के रूप गुण पर मुग्ध होकर बादशाह अकबर ने अपने दरबार में उसे बुलाया था। अकबर के आमंत्रण से राय प्रवीन चिंतित थी बादशाह की दृष्टि पर उसे शक था। अतएव अपने हृदय की पीड़ा इन्द्रजीत सिंह के समक्ष निम्नांकित पंक्तियां प्रकट की थी –

आई हो बूझन मन्त्र तुम्हैं निज,
श्वासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजों कि तजों कुलकानि,
हिए न लजों लजि है सब कोई।।
स्वारथ और परमारथ को पथ,
चित्त विचार कहौ तुम सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु
मोर पतिव्रत भंग न होई।।

इन्द्रजीत ने रायप्रवीन की व्यथा को समझा और अकबर के दरबार में भेजने से इन्कार कर दिया जिस पर क्रुद्ध होकर अकबर ने एक करोड़ का जुर्माना ओरछा नरेश पर कर दिया था। केशवदास ने अपनी सूझबूझ कूटनीतिज्ञता एवं राजनीति का परिचय देते हुए बीरबल की सहायता द्वारा जुर्माना माफ करा दिया था। केशवदास की सलाह पर रायप्रवीन को अकबर के दरबार में प्रस्तुत किया गया था वहां रायप्रवीन ने अपनी काव्यकला तर्क शक्ति एवं वाक्यपटुता का परिचय दिया और अकबर के प्रश्नों का उत्तर काव्य के माध्यम से दिया। अन्त में रायप्रवीन ने कहा–

विनती राय प्रवीन की सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भखत है वारी वायस स्वान।।

अकबर ने रायप्रवीन के काव्य चातुर्य से प्रसन्न होकर उसे ओरछा ससम्मान वापिस भेज दिया था। राय प्रवीन ने दो काव्य ग्रन्थों की रचना की थी।

१. नायिका भूषण (१७ छंद), २. प्रवीण विनोद (खण्डित प्रति) उसके काव्यग्रंथों की पुष्टि बुन्देली बांकुरे साहित्य अंक पृष्ठ ३२ से होती है।

वह कुशल संगीत साधिका, उत्कृष्ट नृत्यांगना और सहृदय कवियत्री थी उसके गुणों से प्रभावित होकर केशवदास ने उसकी

तुलना लक्ष्मी पार्वती एवं सरस्वती जी से की है। इससे स्पष्ट होता है कि राय प्रवीण वैभवशालिनी गुणज और दृढ़ प्रणायिनी थी। वह संदेवदनशीला और कलात्मक प्रतिभा से पूर्ण होने के साथ ही सौन्दर्यशालिनी भी थी।

केशवदास को रायप्रवीन की रागात्मक चेतना कला साधना और सदाचार पर गर्व था। रायप्रवीन के लिए प्रयुक्त उपमानों में केशव की संवेदनशीलता अभिव्यंजित होती है जैसे–

सुवरण युग सुखरन कलित पुनि
भैरव को मिलि गति ललित बितानी है।
पावन प्रगट दुति द्विजन को देखियत
दीपत दीपति अति श्रुति सुखदानी है।
सोभा सुभ सानी परभाख्य निधानी दीह
कलुष कृपानी मानी सब जगजानी है।
पूरब के पूरे पुन्य सुनिये प्रवीन राय
तेरी बानी मेरी रानी गंगा सौ पानी है।

इस तरह राय प्रवीण ने गायन वादन और नृत्य कला को विकास की उच्चतम ऊचाईयों तक पहुंचा दिया था। जिससे ओरछा के कलात्मक वैभव मध्यकालीन भारत में दूर दूर तक प्रसारित और प्रकाशित हो गया था।

— मु.पो. लिधौरा, जिला टीकमगढ़ म.प्र.

पनिहारी

-डॉ. ए.के. जड़िया

पनियाँ भरन जात कुअला पै, बुंदेली पनिहारी।
चाल नियारी चलै, और फिर गैल चलै अनियारी।।

नूपुर की धुनि बसी करन में, वशीकरन सौ डारें।
घट अरु घूँघट कौ संघट, पनघट कौ रूप निखारें।।

चढ़्यो कूप पै रूप, जगत [१] के नैंना हरष उठे हैं।
और दूसरी ओर जगत [२] के नैंना तरस उठे हैं।

फाँसी डारी जोरा में, जोरें में गगरा फाँसो।
हँस हँस पानी खिंचवावै, देखौ जीवंत तमासौ।।

कंकण करत किलोल, लपक लजुरी सों खेंचत पानी।
करया घरया जावै, मानों, कसरत करत सयानी।।

टोरें लाज अनंग, अंग अंगन में उठें हिलोरें
ऐसी घनी हिलोरें, ये ज्ञानिन कौ ज्ञान बिलोरें।।

पानी खेंच धर्‌यो गगरा ने, तब गरफाँसी छूटी।
धरी कें खेप अनूठी, लै लजुरी चली ग्राम वधूटी।।

भर्‌यो रूप कौ पानी ता पर धरयो कूप कौ पानी।
कोमलता के ऊपर जा, कठोरता की मनमानी।।

चली भरी गगरी सी, सिर सों रिसत जात है पानी।
घट की घटा बरस रइ, भींजत जात रूप की रानी।।

धरत जात है चरन, आचरन हरत जात दुनियाँ कौ।
विधि ने रूप भलीविधि, बिन टाँके कौ टाँको बाँकौ।।

---
१. कुँआ का जगत २. संसार

— हरपालपुर (छतरपुर) म.प्र.

अपनो गाँव सलौंनो

-नवल किशोर सोनी 'मायूस'

सबरें हार पहार इतै हैं बचो न कौनउ कौंनो।
आजू ई असफेर भरे में अपनो गाँव सलौंनो।।

सब हैं इतै एक के लानें एक सबइ के लानें।
इतै न जानें परत काउ खाँ कभउँ कचारी थानें।

हिलमिल कें सब रात होत ना कभउँ इतै अनहौंनो।।

बासन चार होत तौ घर में खड़र बड़र होतइ है।
काँसे को सुर काँसे में रय रीत इतै जा रइ हैं।

अपने बस भर कभउँ गाव को करत न कोउ मिटौंनो।।

इतै पसेरन रोजउँ देतीं दूद भैंसियाँ गेंइयाँ।
होत मटकियन घी दइ ई में कमी मठा की नँइयाँ।

इयै बैंचकें मोल लेत हैं पौवँन चाँदी सौंनो।।

खाँय करौंदा बेर मकुइयाँ चरवा ऊमर मुरका।
तलवा देत सिंगारे कौंसें और किसुरुवा सुरका।

इतै काउ खाँ कभउँ राय ना भूँक प्यास को रौंनो।।

मौंर बाँदकें बागो पैरें मिलत देखवे दूला।
गेर गाँव में सुना परत अपनो ढपला रमतूला।

होत काँड़श राइ रावला ब्याव होय कै गौंनो।।

अपनो तपनो प्रैम बगैचा दिन दूनो हरयाबै।
ई धरती पै बारउ मइना रीत बसन्त की राबै।

बनो राय 'मायूस' हमेशाँ गाँव अपुन को नौंनो।।

— कोतवाली के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली माटी के सपूत : श्री सन्तोष सिंह बुन्देला

- डॉ. सरोज गुप्ता

बुन्देली गीतों के अमर गायक स्व. श्री सन्तोष सिंह बुन्देला माँ भारती के उन अमर सपूतों में से हैं, जिन्होंने बुन्देली माटी का ऋण चुकाने के लिए देश के कोने–कोने में मातृ–भाषा की ध्वजा फहराई। साहित्य उनके लिए जीवन यापन का साधन नहीं था। वह कहते थें – ''साहित्य मेरा शौक है जिस बुन्देली माँ ने मुझे जन्म दिया है जिस बुन्देली संस्कृति में मैं बड़ा हुआ, पला–पुसा हूँ उस संस्कृति को मैं देश के कोने–कोने तक पहुँचाना चाहता हूँ और यही मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य है।'' कवि सम्मेलनों के मंच से वह उद्घोष करते हुए कहते थे –

'बुन्देलखण्ड में जन्मा हूँ, बुन्देला हूँ
बुन्देली में ही पढ़ता हूँ, अलबेला हूँ
बिन्ध्याचल के आरण्यों में नित खेला हूँ''

बुन्देली माटी की गंध से सुवासित बुन्देला जी ने समाज के निरीह दीन–हीन, सीधे सरल ग्रामीणों की अनुभूतियों से गहरा तादात्म्य स्थापित किया है। उनका सहज, सरल, मनमोहक व्यक्तित्व, विशाल शरीर यष्टि, राजा महाराजाओं जैसा तेजस्वी चेहरा, बलिष्ठ भुजायें, बड़ी–बड़ी आँखें सादा जीवन उच्च विचारों से ओतप्रोत बुन्देला जी ने अपने जीवन को संघर्ष एवं चुनौती के रूप में प्राप्त किया। उनका जन्म १८ मई १९३० को छतरपुर जिले की पहाड़गाँव जागीर में दीवान श्री दिल्लीपत सिंह जू देव के घर हुआ था। परिवार का दायित्व इनके सबल कन्धों पर आ गया, इन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी। आपका विवाह सन् १९४५ में जागीरदार श्री बंका जू देव की छोटी बेटी प्रेम कुँवर के साथ सम्पन्न हुआ। पत्नी सहज, सरल ग्रामीण परिवेश में पली धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। आप सन् १९५४ में फिल्म क्षेत्र में गये। दो वर्ष वहाँ रहे, बाद में माताजी ने फिल्मी जीवन को परिवार की गरिमा के प्रतिकूल बताकर घर बुला लिया। घर आकर हिन्दी के यशस्वी कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी के प्रेरणा पाकर बुन्देली काव्य सृजन प्रारंभ किया। १९६४–१९६५ से कवि सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी की, अपने प्रभावी काव्य पाठ द्वारा दूर–दूर तक अपनी विशिष्ठ पहचान बना ली। बुन्देल भूमि का प्रशस्ति गान बुन्देला जी के शब्दों में –

ऐसौ जौ बुन्देलखण्ड है सौ नौने से नौनों,
ई माटी में आधी माटी और आधी में सोनों।

यहाँ की माटी सोना उगलती है, यहाँ के कण–कण में चेतनता है। धरती मां के समान है, इस माँ के लिए, माटी की मर्यादा के लिएं कवि अपनी आन–बान और शान को न्यौछावर करता हुआ प्रणाम निवेदन करता है। धरती पंचतत्वों में से एक है, मानव देह के लिए यह आधार तत्व ही है। इसी तत्व से सृष्टि की रचना संभव है। कवि इस ऋण से उऋण होने के लिए अपनी बुन्देली माटी को बार–बार स्मरण करते हैं –

'जौन गाँव के पंचतत्व से बनी जा अपनी काया,
माँ से पैलां जी धरती ने, हम खाँ गरे लगाया।
मोरी है सब खाँ परनाम जितै जो बैठो होय,
पनघट, कुआँ, रहुनिया, बखरी वे अथाई गलयारे।
जिनकी गोदन खेल–खेल कैं, हमने होश सम्भारे,
वे नरवा, वे ताल तलइयाँ, जाँ खेलें धूल–धुलइयाँ।
उनसे कइयों जै जै राम, जितै जौ बैठो होय।।'

धरती की जीवन्तता का सजीव चित्रांकन कवि ने किया है। बुन्देली जी ने अपने गीतों में बुन्देली लोक संस्कृति, लोक परम्पराओं, लोकाचरण के साथ लोक जीवन को मूर्तमान किया है। बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत के अणु–अणु का चित्रण इनके गीतों में हम पाते हैं –

चम्बल केन जमुन के तीर, नरबदा के वे निर्मल नीर,
बिन्ध्य घाटी कौ स्वस्थ समीर, हमै ई जान से प्यारी है।
मातृभूमि बुन्देलखण्ड, भगवान से प्यारी है,
चित्रकूट, खजुराहो, पन्ना कालिंजर, जागेश्वर।
भीम–कुण्ड, सोनागिर, प्यारो कुण्डेश्वर अति सुन्दर,
जटाशंकर की प्यारी शाम, बड़े लागे नैना अभिराम।
छत्रसाल मधुकर सा, भए हैं लागे नैना अभिराम,
बखत बली मर्दन पारीक्षत, अमर वीर सेनानी।
इतई पै भए वीर चन्देल न जिन को बार सको कोउ झेल,
है ऐसो प्यारो खण्ड बुन्देल, भओ ऊदल औतारी है।
जौ है दुर्गावती को देश, है ईकी महिमा बड़ी विशेष।।''

बुन्देली लोक जीवन के जीते–जागते ग्राम्य चित्र और प्रकृति दृश्य बुन्देला जी ने उकेरे हैं। देशी ताना–बाना और मानवीय दृष्टि के साथ यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। ये सम्पूर्ण परिदृश्य देखकर कह सकते हैं कि कवि लोक जीवन से सम्बद्ध ही नहीं सहभोक्ता भी है। इन रचनाओं की शक्ति उनकी गहनतम अनुभूतियों और स्वत: प्रादुर्भूत व्यंजनाओं में है। प्रात:काल एवं सायं कालीन दृश्य देखिये –

मोरें बोलन लगी गाय के रमान लगे लबैया,
घम्मर–घम्मर होय मथानी, मोरत मठा दुलैया।
सुनत संख्य साजा कौ सब पिसनारी गाँवन लगी है,
सोए कुआ जगाबे खाँ पनहारी आवन लगी है।

सायंकाल का सुहावना चित्रण जिसमें ग्रामवासिनी भारत

माता बड़ी सहृदयता, सौहार्द्रता के साथ उपस्थित होती है –

गंग धूरी की बेला है, बड़ौ मौसम अलबेला है।
कोलाहल हो रहो गाँव में आ गए भइया ढोर।
बरेदी दै रये लम्बी टेर, हार से ल्याई गइयाँ घेर,
हो आजा धौरी रे, हो काजर धौरी रे।
गाय भैंस की दौनी हो रई बादर से घर्राबै,
लगे अलाव गुरे कोड़न पै किसा कानियाँ काबै।
कहूँ पर सारंगा के संग, कहूँ भारत के छिड़े प्रसंग,
कहूँ आल्हा ऊदल की जंग, कहूँ पर जिह सुमरन सिध होय।
कहूँ पर केवट के सम्वाद कहूँ पर हो रए भरत मिलाप,
हो दद्दा आ जा रे, और ब्यारी करजा रे।

सन्ध्या समय का माधुर्य पूर्ण, सहज सुहावने वातावरण का अनूठा वर्णन कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया। यहाँ सत्यं, शिवं सुन्दरम् की एक झलक मिलती है। हमारा सत्य गाँवों के भोलेपन में है, हमारा शिव गाँवों के जीवन में है और सौन्दर्य पके खेतों में मुस्कराता है फिर गाँवों के ऐसे सत्यं शिवं सुन्दरं को छोड़कर कविता क्यों नगरों की धूल धूसरित गलियों में रहे। कवि को अपने खेतों, खरयानों, अपने ढबुआ, मड़इया जैसे मकानों से अत्यन्त प्यार है ग्राम संस्कृति को पूज्य मानते हुए वह कह उठते हैं –

'खेत हमारे पूजा घर हैं, तीरथ हैं खरयान,
नदी कछारन, अपनौ आँगन, ढबुआ बड़ो मकान।'

ग्रामीण परिवेश का चित्रण करने में सिद्धहस्त कवि चाँदनी रात में ग्राम बालाओं के महुआ बीनते समय का अद्भुत वर्णन करते हैं। महुआ बुन्देलखण्ड का प्रिय वृक्ष हैं गाँव की लड़कियाँ, औरतें, डुकरियाँ महुआ बीनने जाती है। देखिये कवि के शब्दों में –

चाँदी कैसे, फूल झरै और मधु कैसौ बूँदा धारौ,
मिहक रही कांकार करौंदा, है कैसौ मौसम प्यारौ।
लैके गुटौआ गोरी हार खाँ चली, महुआ बीनन पहार खाँ चली,
मौआ तरैं बिछौना डारे और बा लम्बी हो गई।
सपनन की बाहन में मानौ सरद पुर्नमा खो गई,
पलकन में अपने प्रीतम कौ बा चित्त उतार कै चली।
मौआ टपकत गिरत उरोजन उऐं पतौ न भऔ है,
मानौ फूल मार कें चन्दा, जगा चाँदनी रओ है।
देख चाँदनी चन्दा की हरकत अपनौ मन मार कें चली,
महुआ बीनन पहार खाँ चली।

नायिका के बहाने कवि ने चाँद और चाँदनी की रसिकता का माधुर्य पूर्ण वर्णन किया है, चाँदनी के मानवीकरण में मनोहरता झलकती है। इसी प्रकार पानी भरकर आती हुई नायिका के वर्णन में कवि ने जो श्रृंगारिक धारा बहायी है वह दृष्टव्य है–

ईश्वर कैसी चौकड़ियाँ हैं रसबन्ती रसवारी।
या गालिब की गजल पतरी कम्मर बूँदा वारी।
चली रे गोरी पनियाँ भरन को चली।
पानी खेंचत झुकी कुँआ पै अंग अनौखे झलकै,
मानौ जमुना जी मैं झांके, गुम्बज ताजमहल के।
भार जवानी और पानी कौ करया लफ लफ जावै,
ज्यौं कनेर की डार बसन्ती हवा में झौंका खावै।
फूली रे देखो फूली कचनार की कली। चली रे
छल कै खेप बहै गालन से, गिरें नीर के बून्दा।
मानौ शिव पिण्डन के ऊपर अरघ देत है चन्दा,
ढली रे बा तौ सोने के साँचे ढली। चली रे।

रीति कालीन स्वकीया मुग्धा, नायिका की तरह वर्णन करते समय कवि कहीं ईसुरी की श्रृंगार परक रसवन्ती चौकड़ियों को स्मरण करते हैं, उन्हें कभी नायिका गालिब की गजल की तरह प्रतीत होती है। जब घड़े से पानी छलकता है तो कवि की कल्पना शिव जी को चन्दा द्वारा अरघ देने में तल्लीन हो जाती है। यौवन से परिपूर्ण ग्रामीण नायिका के गदराये सौन्दर्य का अद्वितीय चित्रांकन कवि ने किया है। पति–पत्नि के भावात्मक रिश्ते को चरम तक पहुँचाने में कवि सफल हुए 'ए री कर दई भौत अबेर' में खेत पर किसान अपनी पत्नी का इन्तजार कर रहा है कि वह कलेवा लेकर आती होगी। देर होने पर मन की व्यथा निम्न पंक्तियों द्वारा व्यक्त की हैं –

'एरी कर दई भौत अबेर, भूख में भओ जात हौं ढेर'
खात रओ अब लौ बेर–कचेर, राह तोरी तक–तक कें हारो।
जानें कबकौ बदलौ लओ है, भूंकन मांडारौ,
अबै लो आई न, और रोटी ल्याई न।
दोई जोर की पसर चरावै, और सब दिन हर हाँकै,
बिना कलेवा दिन लौटे लौं, निकरी आवै आँखें।
बैठवें हो गओ मोय हराम, तेई पै तोरौ मन भओ खारो,
कछु न बोलत हंसत–बतात, है ऊसी खिसियानी सी रात।
काऊ सें लर आई। कछू कओ कै बाई।।

कवि के नायक–नायिका मिलन में बिना अश्लीलता के संयोगावस्था के ऐसे चित्र खींचे हैं कि छायावादी अभिव्यक्ति की सूक्ष्म सांकेतिकता के प्रयोग यत्र–तत्र दिखाई देते हैं। चित्रात्मकता एवं पारदर्शिता प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ती है। भाव आलोड़न एवं अन्तर मन्थन की प्रक्रिया में भाषा का सौष्ठव संवर–संवर उठता है –

सिहरन सी इक उठी देह मैं, रौंगट हो गए ठाड़े,
खजुराहो के चित्र उभर रए, मन में तिरछे आड़ें
देख इक दूजे खाँ रए दोय, काउ में कछु कहै न कोय,
पीर पर मन की सके न गोय, धीरज छूट गओ सारौ।
बढ़न लगी अन्तर की प्यास, घास मैं हो गए औ सुवास,

सांस की गति बाढ़ी, रौमाबलि भई ठाड़ी।
भाव विभोर उतै भए दोई, इतै घिरी लौलइया,
आओ मस्त हवा कौ झोंका, कांपन लगी मड़इया।
दीप की ज्योति से जोति जली, पंतगन ने जीरा जारो,
जाने कबै बीत गई रैन, है कुकरा बोलत खुले है नैन।

सिंहरन में अमूर्त स्वरूप द्वारा मन को स्पर्श करने की क्रियात्मकता और शीतलता प्रदान करने की मुग्धता भाव व्यापार का यह चित्रांकन अनूठा बन पड़ा है। बुन्देली संस्कृति में अतिथि बहुत पूज्य है – 'अतिथि देवो भव' के रूप में अतिथि का आगमन शुभ होता है और उनका सत्कार यहाँ के निवासियों का धर्म है। कवि ने अपने जीवन की वास्तविकता पर आधारित कविता 'मिठौआ है ई कुआ कौ नीर' में ग्राम बाला द्वारा अतिथि के सत्कार का अनूठा वर्णन किया है। वह अपरिचित होने के बावजूद भी थके बटोही से दो पल के लिए पीपल की छाया में विश्राम करने, जल पीकर थकान मिटाने, सुस्ता लेने के लिए कहती है। ये सहजता गांव में ही देखी जा सकती है। अपरिचित व्यक्ति में अपने भाई जैसी झलक पाकर आत्मीयता प्रकट करना ग्राम संस्कृति में ही देख सकते हैं।

मिठौआ है ई कुआ कौ नीर।
छायरो पीपर कौ गंभीर।।
मिटाले तनिक घाम की पीर, ओ पानी पी ले गैलारे।

कवि ने बुन्देली लोक जीवन के सामाजिक आदर्शों का विवेचन बड़ी ही सहजता से किया है। समाज के निम्न वर्ग के लोगों के प्रति भी कवि की सहानुभूति रही है। गरीबी हमारे समाज की प्रमुख समस्या है। इस समस्या का चित्रांकन कवि के शब्दों में –

कोड़ी काड़ परे हैं जाड़े तन पै उन्ना नइयाँ,
उनकी लाज बचैआ अब तौ, तुम हौ राम गुसइयाँ।

आर्थिक तंगी में सबसे अधिक प्रभाव मन:स्थिति पर पड़ता है बच्चों की शादी ब्याह से लेकर रोटी–पानी की व्यवस्था करना। कवि ने गरीब की चिन्ता को इस प्रकार वर्णित किया है–

अगारे रमकुइया कौ ब्याव, धरो छितिया को अबै चलाव।
डबरियाँ भर आईं, घटाऐं घिर आईं।।
तीन पन जैबे खाँ हो गए, नई नइयाँ हैरानी।
कोउ न देखन आय, गाँव की कैसी करुन कहानी।।

कवि ने प्रकृति सौन्दर्य के सुकुमार चित्रण ऋतुपरक गीतों के माध्यम से किये हैं। पेड़, पक्षी, निर्झर, क्षितिज, बादल, हिरन, पर्वत, आदि के साथ इन्सानी सरोकार को गहरी अर्थवत्ता दी है। ऋतुपति बसन्त का मनमोहक सौन्दर्य कवि के शब्दों में –

कोयलिया रई बोल, सुन जियरा डोलत हैं,
चोटै करत समीर भेद मोरे मन कौ खोलत है।
करत पपीहा सोर मोर सोउ बोलन लागे हैं,
पुरुवा मै पीपर के पत्ता डोलन लागे हैं।
उरियाँ ज्यों चुरियाँ खनकें, बूंदन पैजनियाँ ठनकें।
पैलां बरसे झला झीकरा, फिर लागी झर सावन की सुहानी,
रिमझिम परत फुहार अंग पै, करत अनंग मन मैं मनमानी।

कवि ने षट्ऋतुओं का वर्णन करके प्रकृति के उल्लास को मन भर कर सराहा है तथा अवसरानुकूल प्रकृति के अनेक सुकुमार भीषण एवं सौन्दर्यपूर्ण चित्र खीचे हैं। बुन्देला जी के गीतों में भक्ति और धर्म का वर्णन भी मिलता है। कहीं–कहीं पर आध्यात्मिक पुट देकर कवि आदर्श की बातें करने लगते हैं –

'सरग तरइयाँ कीनै गिन लई कीनै बांचे भाग,
कीनें मनखाँ बादो जानै को अन्तर की आग।
भाई रे कोऊ काऊ को नइयाँ,
जा दुनिया है बदली की छईयाँ।

बुन्देली संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष आदि तत्व पूर्णतः समाहित है। धर्म का दीपक ही वास्तविकता व शाश्वत रोशनी प्रदान करता है कवि के शब्दों में –

दीपक दिया धरम कौ जारौ, सदा रात उजयारौ,
धरम करे बिन करम खुले ना बिना कुची ज्यों तारौ।

धर्म के बिना हमारा भाग्य जागृत नहीं होता। कवि के ये कथन कितने सही हैं। 'धारयते इति धर्मः' धर्म के माध्यम से इन नैतिक मूल्यों को अपनाते हैं जिनसे हमारा जीवन सार्थक होता है। यह संसार एक मेला है इस मेले के झमेले में यदि हम पड़ जायें तो जीवन निरर्थक बना लें। इस संसार में धन, दौलत, महल, अटारी, सब माया के बन्धन हैं इन सब की नश्वरता का वर्णन कवि के शब्दों में –

हंस मिल बोल बैठ लो सबसे, दो दिन को है मेला,
जा दुनिया सपने की सम्पत जै है अन्त अकेला।

बुन्देला जी के गीतों में भाषा सौष्ठव, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, अन्योक्ति अलंकारों तथा बिम्ब विधानों, प्रतीकों का प्रयोग स्वाभाविक भाव प्रवाह में हुआ है। कुछ सरस, छन्दों का प्रयोग कवि द्वारा किया गया। लय व तान को दृष्टि में रखकर नये छन्दों की परम्परा प्रारम्भ की है। आपके गीतों में लोक जीवन की मौलिक उद्भावनायें कूट–कूट कर भरी है। भारतीय धर्म और संस्कृति के अमर पुजारी की तरह श्री सन्तोष सिंह बुन्देला सदैव याद किये जाते रहेंगे।

संदर्भ सूची –

''मिठौआ है ई कुँआ कौ नीर'', स्व. श्री सन्तोष सिंह बुन्देला सम्पादक – डॉ. बहादुर सिंह परमार, प्रकाशक – साहित्य परिषद, छतरपुर (म०प्र०)

– सीमा कॉलोनी, स्नेह नगर,
मधुकरशाह वार्ड, सागर (म.प्र.)

महाभारतकालीन बुन्देली लोक दर्शन

- विवेक निधि घोष

विश्व में दार्शनिक वैभव से सर्वाधिक संपन्न भारतवर्ष की हृदय भूमि बुन्देलखण्ड अपनी नैसर्गिक सुषमा और सांस्कृतिक गरिमा के साथ ही दार्शनिक मनीषियों की तपोभूमि रही है। यहाँ वैदिक काल से ही मनीषियों की चिंतन रूपी गंगा ऐसी प्रवाहित होती रही कि वह ककरीले–पथरीले भूभागों जैसे असंस्कृत भावधारा में विशिष्ट संस्कृति की उपजाऊ फसलें उगाने में अपना वैशिष्ट्य बना सकी। भाग्य से बुन्देलखण्ड ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ प्रकृति अपने दान में मुक्त हस्त रही है और जहाँ के प्राकृतिक दृश्य मनोरम है। यहाँ की प्राकृतिक विषमताओं ने मानव को अनजाने ही विषमताओं में एकरूपता की शिक्षा दी जिसका पर्याप्त प्रभाव बुन्देली चिंतन में दृष्टिगोचर होता है।

महाभारत काल में बुन्देलखण्ड का यह भूभाग चेदि के अंतर्गत शिशुपाल के अधिकार में था। शिशुपाल चेदि का राजा था उसकी राजधानी चन्देरी थी।[१] डॉ. कृष्णराज हंस लिखते हैं कि महाभारतकालीन चेदि नरेश शिशुपाल वर्तमान बुंदेलखंड के ही अधिकांश भाग के शासक थे।[२] महाभारत में ही दशार्ण प्रदेश का वर्णन आया है यह आधुनिक धसान नदी का प्रदेश था। इस प्रदेश का राजां हिरण्यवर्मा था जिसके पुत्र सुधमी नें पांडवों की दिग्विजय के लिए निकले भीमसेन से बाहुयुद्ध किया था।[३] यह भी वर्णन मिलता है कि आधुनिक कर्बी (बांदा के निकट) कारुष पुरु नाम से कारुष राज्य की राजधानी थी।[४] इस विवरण से यह निश्चित हो जाता है कि महाभारत काल में चेदि के अंतर्गत आधुनिक बुन्देलखण्ड का अधिकांश भूभाग था किन्तु इसके अतिरिक्त दशार्ण एवं अन्य राज्यों की सीमाओं में कुछ भूभाग सम्मिलित था। तथापि यह स्पष्ट है कि इस काल में यह भूभाग समृद्ध एवं रमणीय था जिसकी पुष्टि महाभारत के वर्णन से भी होती है।[५] महाजनपद काल में चेदि और दशार्ण प्रसिद्ध जनपदों में से थे इनमें राजतंत्र था। बुंदेलखंड का यह भूभाग इन्हीं में सम्मिलित था।

महाभारत काल बुन्देलखण्ड में आर्य संस्कृति के विकास का काल है इस काल में दार्शनिक विकास पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। धार्मिक मान्यताओं के रूप में बहुदेववादी मान्यतायें लोक में प्रचलित थी। महाभारत में यक्ष पूजा का वर्णन भी मिलता है। यक्ष की पूजा अमृत के लिए की जाती थी। लोक विश्वास था कि यक्ष के पास अमृत है जिसका पान कर मनुष्य अमर हो जाता है। यहां चिंतन के माध्यम से मानवीय सुखों की आकांक्षा दृष्टिगोचर होती हैं। श्रीकृष्ण ने इंद्र के स्थान पर गोवर्धन की पूजा करवाकर लोक में प्रकृति परक चिंतन के महत्व को स्थापित किया। भले ही श्रीकृष्ण का क्षेत्र यह न रहा हो किन्तु बाद में यहाँ के लोक ने इसे आत्मसात किया। इस माध्यम से लोक ने आर्यों की गौपालन संस्कृति को धार्मिक रूप में अपनाया जिसके चिन्ह लोक मान्यताओं के रूप में आज भी मौजूद हैं।

इस काल में बुंदेलखण्ड में वर्णाश्रम व्यवस्था को भी लोक ने अपना लिया था। कर्मों के अनुसार समाज के चार विभाग हो चुके थे। यद्यपि जातिभेद कर्म के अनुसार ही था तथापि बहुधा पिता का व्यवसाय पुत्र सीखा करता था इससे जाति का कर्म परंपरागत होने लगा था। प्रारंभ में अंतर्जातीय विवाह समाज में मान्य थे किन्तु धीरे–धीरे जातियों ने अपने समाज में विभिन्न जातियों के मनुष्यों को आने से रोकने के लिए भिन्न जातियों से विवाह संबंध बंद कर दिये थे। बहुत समय के बाद विभिन्न जातियों के बीच खान–पान बंद हो गया जिसने कालांतर में लोक में एक कुप्रथा का रूप ले लिया। इस प्रकार महाभारत काल के समाज दर्शन ने लोक में व्यापक परिवर्तन किये। नीतिदर्शन के दृष्टिकोण से समाज में अत्यधिक श्रेष्ठ नैतिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा के बावजूद भी इस काल में समाज नैतिक रूप से शिथिल हो चुका था। यद्यपि इस नैतिक शिथिलता के लोक पर अच्छे या बुरे प्रभावों की स्पष्ट व्याख्या करना कठिन है। दैविक उपासनाओं के संबंध में अध्ययन करने से पता चलता है कि इस काल में अनेकानेक प्रकार के मत मतांतरों की स्थापना हो चुकी थी। प्रकृति परक पूजाऐं, यक्ष पूजा, विभिन्न देवों की उपासनाऐं, शैव एवं वैष्णव मत साथ ही निर्गुण एवं सगुण भक्ति के विभिन्न रूप लोक में व्याप्त थे जिनका उल्लेख महाभारतकार ने गीता में किया है। महाभारत में कहा गया है ''यत् प्राश्य पुरुषों मर्त्यो अमरत्व निगच्छति अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा।''[६] अर्थात मनुष्य की वृद्धता और मृत्यु एक समस्या बनी हुई थी जिसका हल यक्ष दर्शन में मौजूद था। इस प्रकार यक्ष दर्शन मनुष्य के जीवन में सुख शांति एवं अमरत्व का प्रतीक था। इस युग में वैदिक बहुदेववाद, उपनिषदों का ब्रह्मवाद या एकेश्वरवाद, सांख्य का द्वैतवाद, योग का ईश्वरवाद, भागवतों, पाशुपतों, तथा शाक्तों का एकेश्वरवाद सभी कुछ मिलता है। वैदिक देवताओं का वर्णन जिनका मुखिया इन्द्र है, नए देवता जैसे – काम, कुबेर, कार्तिकेय, गंगा, लक्ष्मी, और उमा, देवतारूप माने गए जीव जैसे सर्प, शेषनाग, नन्दी, वृषभ। इन सभी की लोक में पर्याप्त महत्ता थी। यज्ञ ही पूजा की विधि था। कर्म और पुनर्जन्म के विचार भी सुनने में आते हैं यद्यपि संप्रदायों का उसमें कहीं पता नहीं। इस काल में एकेश्वरवाद की प्रवृत्ति अधिक प्रचलित

हुई "मैं नारायण हूँ, मैं विश्व का सृष्टा हूँ और मैं ही संहारकर्ता हूँ, मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं इंद्र हूँ, मैं राजा कुबेर हूँ। यम, शिव, सोम, कश्यप, और प्रजापति भी मैं ही हूँ।[७] भक्ति अथवा ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम जो किसी इच्छा विशेष की प्रेरणा से उत्पन्न नहीं होता महाभारतकालीन धर्म का महत्वपूर्ण रूप है। महाभारत काल उस समय के विविध प्रचलित धार्मिक विश्वासों को स्वीकार कर सका क्योंकि यह संदिग्ध विश्वास फैला हुआ था कि ये सब एक सत्य की प्राप्ति के भिन्न–भिन्न मार्ग हैं। महाभारत काल में पुराने वैदिक धर्म का नवीन हिन्दू धर्म में क्रमशः परिवर्तन देखा जाता है। मंदिरों में मूर्तिपूजा और तीर्थस्थानों की यात्रा भी धीरे–धीरे प्रचलित हो गई।

"महाभारत के अध्याय २३ में वर्णित दुर्गापूजा के वृतांत में कृष्ण अर्जुन को युद्ध आरंभ करने से पूर्व सफलता प्राप्ति के लिए दुर्गा को अभिवादन करने का परामर्श देते हैं।"[८]

"प्रथम अवस्था में दुर्गा केवल एक कुमारी देवी के रूप में थी जिसकी पूजा विंध्य पर्वत की जंगली जातियां करती थी।[९] शीघ्र ही वह शिव की अर्धांगिनी बन गई और उमा नाम से पुकारी जाने लगी। यह आर्य संस्कृति पर लोक संस्कृति के प्रभाव का अद्‌भुत उदाहरण है। इसमें संदेह नहीं कि प्रारंभ में शक्ति, पूजा केवल अनार्य जातियों में ही प्रचलित थी और धीरे–धीरे आर्य जाति नें उसे अपना लिया। चूंकि वह एक भयानक देवी थी जो संसार की संहारक शक्तियों का अधिपत्य करती थी, इसलिए उसे रुद्र की पत्नी बना दिया गया।

महाभारत काल में योग और तपस्या के प्रति कोई एक निश्चित एवं संगत प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। हमें ऐसे ऋषि मिलते हैं जो एक टांग पर खडे होकर तपस्या करते थे और ऐसे भी मिलते हैं जिन्हें दुष्ट कीड़ों ने खा डाला था, दूसरी ओर दुर्वासा जैसे ऋषि भी मिलते हैं जो साधारण सी बात पर क्रुद्ध हो जाते थे। आश्रम अवस्था इस युग में लोक स्वीकृत थी। जब तक कोई व्यक्ति अन्य आश्रमों के कर्त्तव्य पूरे नहीं कर लेता तब तक सन्यास आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी। इस काल में कुछ सामान्य नियमों का भी विधान किया गया जैसे अति को हर कहीं छोड़ दें यहाँ तक कि अत्यधिक सहनशीलता, या सहिष्णुता भी वर्जित ठहराई गई है। यद्यपि सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को अनिवार्य माना गया है। तथापित उनके अंदर अपवाद को भी स्थान दिया गया है। महाभारत काल में नीतिशास्त्र को सुख की प्राप्ति का साधन मानकर बहुत महत्वपर्णू स्थान दिया गया है।" सब प्राणी सुख की अभिलाषा करते हैं और दुख से परे रहना चाहते हैं।"[१०] "हम जिस वस्तु की इच्छा करते हैं वह सुख है जिससे हम घृणा करते हैं वह दुख है।" इस संसार में दोनों मिश्रित पाए जाते हैं।"[११] मनुष्य के पुरुषार्थ का लक्ष्य एक ऐसी अवस्था प्राप्त करना है जिसमें पहुंचकर हम सुख एवं दुख दोनों का समान रूप में शांत भाव से बिना विचलित हुए ग्रहण कर सकें। धर्म मोक्ष की ओर ले जाता है एक साध्य है तो दूसरा अंतिम लक्ष्य किन्तु लोकदर्शन धर्म के इस दुरूह अर्थ को ग्रहण नहीं कर सकता उसका उद्देश्य तो केवल धर्म के माध्यम से नैतिक नियमों का पालन करते हुए एक निर्मल आनंद की सहज अवस्था में विहार करना है। यह दुरूह विचारों की सहज अभिव्यक्ति में विश्वास करता है। यह सहज सुखों को त्यागकर मोक्ष की प्राप्ति नहीं चाहता इसीलिए यह प्रेमरूपी भक्ति मार्ग का समर्थक है। भक्ति अथवा ईश्वर के प्रति श्रद्धा युक्त अनुराग ही यहां नैतिक पवित्रता का साधन है।

महाभारत काल में हम यह प्रक्रिया देखते हैं जिसके द्वारा कृष्ण को सर्वश्रेष्ठ देवता बना दिया गया। किसी–किसी स्थान पर उन्हें महादेव की पूजा करते हुए दिखाया गया है। ऐसे भी प्रकरण हैं जहाँ उनके देवत्व को अमान्य ठहराया गया। सभापर्व में शिशुपाल कृष्ण को देवत्व पद देने का विरोध करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण को देवता रूप देने का यहाँ प्रबल विरोध था। उन्हें कभी–कभी द्वारका का शूरवीर योद्धा एवं अधिपति कहा गया है। समय–समय पर वह एकेश्वरवाद का धार्मिक प्रचारक बन जाता है। जिसका पूजनीय देवता भगवत था किंतु कभी कभी उसे स्वयं भगवत कहा गया है। स्पष्ट रूप से इस काल में विचार के अनेकों स्तर हैं जो कि युग–युग में एक दूसरे के ऊपर उगते गए और जो कृष्ण को सब श्रेणियों में प्रदर्शित करते हैं अर्थात एक ऐतिहासिक पुरुष से लेकर विष्णु के अवतार तक। किन्तु बुन्देली लोक अपनी दर्शन परम्परा में कृष्ण के अवतारवाद को स्थान देकर उन्हें भी अपनी बहुदेववादी परंपरा में शामिल करता है जो अब तक वर्तमान है।

संदर्भ संकेत –

१. महाभारत भीष्म पर्व १/४० एवं सभापर्व ४५/४६
२. बुंदेली और उसके क्षेत्रीय रूप – डॉ. कृष्णलाल हंस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९७६ पृ. ३
३. बुंदेलों का इतिहास – भगवानदास श्रीवास्तव एवं भगवानदास खरे १९८२, पृ. २२
४. प्रागैतिहासिक विंध्यभूमि और उसके आगे कुंती देवी अग्निहोत्री, पृ. २७
५. महाभारत – आदि पर्व अ. ६३, श्लोक २,-८, १२
६. महाभारत – उद्योग पर्व – ६२/२४–२५
७. भगवत गीता – १५/१५, ४/७, ८, ९, १३
८. महाभारत अध्याय – २३
९. भारतीय दर्शन – राधाकृष्णन – पृ. ३९८ संस्करण १९८०
१०. महाभारत – शांति पर्व, १३९, ६१
११. वही, २९५, २७, १९०, १४, २५, २३ वनपर्व २६०, ४९

– चमन चौक, घूर डाँग, सतना (म.प्र.)

ऊ की बत्तई

- डॉ. लखन लाल खरे

ऊ की बत्तई दो दिना से कुलबुला रओ तो सबेरेई सें वो उठो, झुटपुटेई में झाड़े–फड़ाकत हो कें तला के जूड़े पानी में डुब्ब हो गओ। अंदयारो अबे तन–तन हतो, पे ऊ की बत्तई ने जब आज लौ अंदयारन की फिकर नइं करी तो आज का करतो। ''रांम धुआरे तुम रखबारे होत नें आग्या भिन फैटारे'' दोहराउत–दोहराउत वो तला सें निकरो और आंग पोंछ–पांछ के गड़ई में जल भरकें मड़िया के शंकरजी खों चड़ाउन लगो – ''रांम धुआरे तुम रखबारे होत ने आग्या भिन फैटारे''–पाठ चालू हतो। भुंसरा होबे में अबे भोत टेम हतो, पै गाँव में जगवार हो गइ ती। ऊ की बत्तई ने चन्दन घिसो, बीच में बिराजे शंकर जी खों चड़ाव फिर उनें घेरें बैठी सालिगराम की बटइयन पे छिड़को और हनुमान चालीसा की जाई चौपाई जपत मड़िया से बाहर आ गओ, जड़कारे कौ जाड़ौं हाड़ टोरें डार रओ तो। भोटर–भुंसरा की पैनी बाय सें देह के टूंका–टूंका से हो रये ते। ऊ की बत्तई – राम धुआरे तुम रखबारे जपत–जपत एक कुलिया में पोंचो और एक बाखर के आंगे ठाड़ो हो कें नन्ना–नन्ना टेरन लगो। तनक देर में बाखर के किवार खुले और मताई की गारी देत नन्ना बायरें निकरें – ''काय खों रे भुंसरा से हल्ला दे रव, काय नई सोउन देत?''

ऊ की बत्तई को हनुमान चालीसा रुक गओ – नन्ना देखो, अपुन ने कई ती – चिरइयां बोलबे के पेलां तला के पानी में सपर कें शंकर जी की पूजा करकें आइये सो मैं आ गओ। आज भोट गिन्ने। अब तो मिले मोय डारबे?''

''मा डारो रे तैने। भीतर भग आ।'' – ऊ की बत्तई खों नन्ना भीतर लुआ गय। बाई ने आगी जला दइ ती। दो बिसीं से कम उमर हती बाई की और नन्ना धरे ते तीन बिसीं और पांच के। बाई ऊ की बत्तई खों भोत चाउत तीं। ऊ को जो रूप देख कें सबेरे से बाई को गरो भर आव, पे कई कछू नईं।

''नन्ना, अब तो अपने बत्तल को भोट हमसें डरवा देओ के नईं?'' – अपनी ठिठुरन खों आगी से दूर करतन ऊ की बत्तई बोलो।

''बारी नीचट है रे। ऐसे जूड़े पानी में सपर आओ। पे बेटा, हमने तो हांसी करी ती, तैने सांसी समझ लई?''

''हांसी काय की नन्ना। बड़ो चुनाव निकर गओ, मंझलो चुनाव निकर गओ, अब आज गिन्ने पंचयात के भोट। दस सालें हो गईं। दो दो बेर जे चुनाव हो गये। मैं आज लौ जोइ नईं जान पाओ के जो भोट होत कैसे हैं। कोऊ कात भोट गिरत हैं कोऊ कात परत हैं। कोऊ जने कात के मसीन पे उंगरिया धरो सो बा चिल्लात है?''

''तें तो है मूसरचन्द। ऐसी ठण्ड में पौ फट नईं पाई और मूड़ खाबे आ गओ।'' नन्ना की नाक फूल गयी – ''मूरख, भेंट वे डार पाउत जी को नाम और जी के बाप को नाम भोटर लिस्ट में लिखो होत। अब, न तो तोरें नाम को पतो न बाप को पतो। भोट को डारन दे तोय?''

बाई के हांतन में चाय की कव–बसी (कप–प्लेट) खड़क गयी। जल्दी सें घर कें वे भीतर दे भर्गीं। ऊ की बत्तई नन्ना के संगे प्लेट में चाय डार कें सुड़कारे भरन लगो – ''नांव कैसें नइयां नन्ना, मोरो नांव तो तुमई ने नइं लिखवाव।''

''ऊ की बत्तई – जो कोनउं नाम यां?'' नन्ना बोले – गांव वारन ने धर दओ सो सबरे कान लगे। अब जा तें। टेम हो रव। भोट डरवाबे आदमियन खों छेंक कें ले जाने।'' – नन्ना उठ परे सो ऊ की बत्तई ने उनके पांव पकर लय – ''तोरे पांव परें नन्ना। एक बेर मोय भोट डरवा दे। मैं देख तो लेओं के भोट कैसे आ होत। फिर का पतो आगें के भोटन लौ मैं जियो के मरो।''

बाई के हांत से गड़इ छूट गई। नन्ना ने उने देखो। 'जाड़े के मारें हांत लो काम नईं कर रये' – कत बाई ने गड़ई उठाई और ऊ की बत्तई खों देखन लगी। नन्ना खों दया सी आ गई। एक तनक सी परची निकारी और ऊ की बत्तई खों दे कें बोले – ''जा ले जा। भोट वारे साब तोसे नाम पूंछे, ये अपनो ने बतइये। मोरो नाम बता दइये। और कउं वे बड़याव किनर मिनर करें सो के दइये के नन्ना के बत्तई आओ भोट डारबे। अब तें जा।''

ऊ की बत्तई चलो गओ। बाई ऊ खां जातन देखत रईं।

०० ०० ००

गाँव में कोऊ नईं जानत के ऊ की बत्तई को असल नाम का हतो। रामसजीवन सुकुल सत्तनारान की कथा बांच कें आ रय ते। गैल में परीं देवी के दरसन की विचार कें उनने अपनी साइकल टिकाई और परदनी समारत सिढ़िया चढ़त ऊपर चले गये। अबार माई की मड़िया पे बित्ता भर को अबई को जनमों तनक सो लरका के हें – के हें... कर रओ तो। सुकुल महराज ने दुनिया देखी ती, तनक में सब जान गए। भुमानी की किरपा समझ कें ऊ खों उठा लिआय। जा बात गांव भर में फैल गई। दिन डूबें अथय कें लोग जुरे। केऊ बन्न की बातें होन लगीं। सबने कई – सुकल महराज खों ऐसो नईं करो चइये। को जाने कोंन जात को आ। सुकल महराज हते ग्यानी, बोले – हम कोऊ सें मांगबे तो गय नईं हते। रई पाप की बात, सो मैया के दरबार

में पोंच कें तो ऊसई सबके पाप कट जात। बनारस–कासी में रे कें हमने सास्त्र पढ़े तो का तुम हमसे अतकारो जानत?''

सुकुल महाराज खों सब मानत ते। उनके सामूं सबरन के मों सिल गए। भगवती को परसाद जानकें ऊ को नाम भगवती धर दव सुकुल महाराज ने।

विध को विधान! साल भर में सुकुल–सुकलाइन दोई जनें बड़ा गय। गांव वारन ने भगवती खों असगुनया समझ लव। लोग तो कुत्ता के पिल्लन खों पाल लेत, फिर भगवती तो मानुस को जाव हतो। सहोदरा उठा ल्याई। भगवती पलन लगो। जैसइ–जैसई वो बढ़त गओ, ऊ की बुद्धि कमत गई। सहोदरा ने जान लई कि जो तो पूरो सिर्री आ है। आठ–नौ साल की उमर में बड़ी माई आई और भगवती की एक आंख की बलि ले गईं। दस–ग्यारा साल में सहोदरा राम खों प्यारी हो गयी। भगवती अकेलो रे गव। गांव में नन्ना को अच्छो चरचराटो हतो। नन्ना के घर से भगवती खों रोटीं मिलन लगीं और रोटी के बत्तईं भगवती नन्ना के टउका करन लगो। गांव में कोऊ ने गछू कई ने, के भगवती तुरत तइयार। एक बेर तो ऐसो भव, के कनइया ने अपनी बत्तईं ऊ खां इसकूल मोंचा दव, काय सें कें सबक पूरो नईं करे सें कनइया खों ठुकबे को डर हतो। मास्साब ने काने लरका खों पेली बेर देखो सो पूंछ धरी – ''को आ रे तें?'' दो तीन बेर पूंछबे पे ऊ को मों खुलो – ''मैं तो मास्साब ऊ की बत्तई आ आवतो।''

''की की बत्तईं?''

''ऐ, ऊ की...... कनइया की बत्तईं।''

''तो कनइया की बत्तन ठुकई लो फिर।'' – मास्साब ने ऊ की कान की लोंड़ियन में पेलां ककरा गड़ाय, फिर मुरगा बनाव, फिर इत्ते सें मन नईं भरे सो हूंका की दुचलाई करी। ऊसें तो मास्साब भोत नोंने हते, पै ऊ दिना इसकूल में दोरेइ पे जो कनवा पे आँख परी, सोई वे भिन्ना गये और असगुन होबे को डर ऊ खों मारकें निकारो। गांव भरे में हल्ला मच गओ, के भगवती कनइया की बत्तन इसकूल गओ तो, मास्साब ने ऊ की खाल खेंच लई। गेल खुल गई ती। भगवती कबे 'ऊ की बत्तन' बन गओ, ऊ खों पतोई नईं चलो। अब चाय जो कोऊ ऊ सें चाय जोन–टउका करवाउन लगो। नन्ना के घरे संजा सबेरें चार बासी–कुबासी रोटी टोरबो और तला की मड़िया पे सोबो – जोई काम हतो ऊ की बत्तईं को। भगवान ने को जाने कां से ऐसो मीठो गरो दओ तो, के जब कोऊ ऊ सें गाबे की कत्तो, सो कोयल सी कूक जात ती। एक बेर तो ऊ के संगे बड़ो कुन्याव हो गओ। ऊ की बत्तई खों मंजले राजा अपने खेत पे बिहीं खुआबे की कै कें लुआ गये। उते पोंच कें वे बोले – काय रे, तें सबकी बत्तई को काम करत रहत, आज अपनी भाभी साहिबा की बत्तई को काम कर दे?''

''काय खों हांसी करत राजा, भाभी साब तो चार मइना से नइयां। मैं उनकी बत्तई को का काम करहों?''

''अच्छा जा, मड़इया में मटर धरी, वा उठा ल्या पेलां खांय अपन।''

मंजले राजा ऊ की बत्तईं के पाछूं–पाछूं मड़इया में जा पोंचे। मेंड़ पे ठांड़े आम के गुल्ला की एक डगार, को जाने कैसें सूकी डगार पे गिरी और दोई डगारें मेंड़ पे संगे–संगे जा गिरीं। नेचें सूकी डगार डरी ती ऊके ऊपर हरीरे आम के पत्ता टूटे डरे ते। ऊ की बत्तई ऊ दिनां रात के नन्ना की बाखर पे रोटी लेबे नईं पोंचो। छपरी में दिन काट रई खजेलू कुतिया खों ऊ की बत्तईं की बत्तईं रोटीं मिलीं। ऐसई होत तो। ऊ की बत्तईं की रोटी कभउं खजेलू कुतिया खात ती, खजेलू कुतिया की बत्तईं की रोटीं कभउं ऊ की बत्तईं खों मिल जात तीं।

ऊ की बत्तईं कोऊ के खेत पे जाबे सें अब छरकन लगो तो पे एक दिना बराईं चोंखबे वो कमोदी से नाईं ने कर पाव। ऊ की बत्तई ने चार–पांच बराईं चोंखी। गुर बन रओ तो सो गुर खाव। कमोदी ने एक बेलवा की जगां ऊ की बत्तई खों जोत दव!! ऊ की बत्तई ने बैल की बत्तई को काम कर दओ। कमोदी सेठ की बराई कोऊ फोकट में चोंख लेतो? गुर सेंतमेंत में खा लेतो?

०० ०० ००

नन्ना की भोत बड़ी बाखर हती, कैऊ बीघा जमीन हती और केऊ नौकर–चाकर हते; पे कोनऊं औलाद नईं हती। पेली बाई की किरिया–करम के बाद नन्ना को एक भतीजो अपने बाल–बच्चन के संगे आ के रहन लगो तो। कछू दिनन तो ठीक–ठाक चलो। एक दिना पतो चलो के नन्ना अपनो ब्याव कर रये। कोउ ने अच्छो कई, कोऊ ने कई–का जमानो आ गओ। नन्ना ने कोऊ की बातन पे कान नईं दय। एक दिना नई बाई की पालकी नन्ना की बाखर में उतर गयी। ई नये ब्याव खों पन्द्रा सालें हो गईं। अब तो नन्ना सठया गय – साठ के – पूरे तीन बिसीं के हो गए। अब का हुइये औलाद। कैउअन ने कई नन्ना सें, के अपने भतीजे खों, के भतीजे के लरका खों अपनी औलाद से बत्तई गोद ले लो। नन्ना ने कोऊ की नईं सुनी। नन्ना के नय ब्याव के कोऊ खों कैसउ लगो होय, सबसे जादा खुसी भई ती – ऊ की बत्तई खों। खूब खाबे मिलो तो – लड़ुवा, लुचई, पपरियां, दईबरा, कड़ी, भात, केऊ तरा की तरकारीं... को जानें का का। नामई नईं जानत केउअन के तो – ऐसे ऐसे बिंजन। खजेली कुतिया सोऊ खा–खा कें ऐसी गर्रा गयी ती, के सूकी रोटी की कुदाऊँ आंखइ नईं उठाउत ती।

ऊ की बत्तईं नन्ना की बाखर में दुपर में और रात में अपनी चार रोटी और ओई पे तनक सी दार लेबे आउत तो। नई बाई ने जब पेली बेर ऊ की बत्तई खों रोटी देत में देखो, सो को जाने काय, माता को खाव ऊ को एक आंख को मों, बाई खों

भोत सुन्दर लगो। ऐसें लगो, जैसें मन ऊ की बत्तई की कोदाऊं खींच रओ होय। नन्ना नईं हते एक दिना। ऊ की बत्तई अपनी रोटी लेबे आव सो बाई ऊ खां भीतर लुआ गईं। ऊ की बत्तई डरत–डरत सो बाई के पाछूं चलो गव। बाई भीतर से टाठी लगा ल्याईं। बेर–बेर के कय पे ऊ की बत्तई ने सकुचात–सकुचात खाव। बाई जो देख के दंग रे गईं, कि वो हतपथू (हाथ से बनायी) बारा रोटी खा गव। बाई बोलीं – "काय बेटा, तुम इतने भूंके आ रहत? नन्ना सें अबे लौ काय नईं कई अतकारी रोटियन खों।"

ऊ की बत्तई रोउन लगो – "बाई, कोऊ ने आज लो मों से बेटा नईं कई, नें भीतर बिठार कें खुआव। तुमने तो बाई, मताई की घांई खुआव मोय।", ऊ की बत्तई हिलकन लगो – "बाई, नन्ना ने चार रोटीं लगा दईं ती, न उनने बढ़ाईं न मैंने कईं।"

"काय?"

"जो सरीर चलबे फिरबे जोग बनो रबे, ई के लानें चारइ रोटीं भोत हैं।" – ऊ की बत्तई हरां–हरां मोंगत जात तो – बाई, जा खजेलू कुतिया मो सें तोऊ नोनी है। बाखर खों रखाउत तो है। मैं तो कछू नईं करत। फिर कौन मों सें कंय नन्ना सें के हमाई रोटीं बढ़ा दो?" बायरें कड़न लगो ऊ की बत्तई – "काय बाई, बाप–मताई कैसे होत, तुमई जैसे?"

बाई के भीतर कछू चटक सो गओ, कई कछू नईं।

ओई रात बियारी करतन में बाई ने नन्ना से पूंछी – "जो लरका को आ जोन रोज रोटी लेबे आउत?"

"का पतो ! भोत पेलां गांव के सुकल महाराज खों अबार माई की मड़िया पे डरो मिलो तो सो वे उठा ल्याय ते। को जानें कौन पापी अपने पाप खों मइया के दोरे में डार गओ तो।"

चूले में रोटी सेंकतन बाई की उंगरियां जर गईं। झमा सो आओ और उतईं लुड़क सी गईं।

"का हो गओ?" – कात नन्ना ने बाई खों उठाव और कोठा में बिछी खाट पे पार दब – "का हो गओ?"

"का पतो काय झमा सो आ गओ।" – बाई करौंटा ले कें पर रईं।

"तुम परीं रओ। वैद खों लुवांय लंय आउत।"

बाई ने हूं–हां–कछू नईं कई। चूले में लगी नकरियां फर्र–फर्र बरत रईं। को बुजाउतो? बाई खों झींम सी आ गई...

बड़े दाऊ की बाखर में ओरी ठोंकें पोंचाउन लगी ती कंडा थाप बे। एक दिना ऊने ठुनक कें कई ती – मोय नईं जानें काल सें। बड़े दाऊ को जाने का का कात रात मो से।"

"अरे उनको तो ऐसो सुभाव आ है री।" – ओरी बन बैठी – "वे कौन तोय सुरकें आ लेत।"

पे, एक दिना बड़े दाऊ ने सांसउं सुरक लओ अंगूर सी अंगूरी खों। अंगूरी रोई, गाई, छटपटाई पे ऊ को रस निचुर गव। ओरी से बड़े दाऊ की करतूत कई, सो ओरी ओई पे बन बैठी – "काय खों ठनगन बगरा रई। पैदा होतन अपनी मताई खों खा गई, बाप आठ–आठ मोड़ा–मोड़िन खों पैदा करकें मोटर सें दोई पांव कटा कें बैठो–बैठो खा रओ। बड़े दाऊ न होते, तो सबरे भूंकन मर गए होतें।"

अंगूरी की आंखें फैल गईं। छपरी में डरी झूल परी खटिया पे बैठ रामेसुर की डबयाई (भरी हुईं) आंखें अंगूरी के असुअन सें मिलीं और ऊ ने अपनी घिंची नेचूं कर लई।

केऊ मइना निकर गए। एक दिना अंगूरी खों सबेरेई से कै होन लगी – सूकी कै। अंगूरी की ओरी ऊ खों लुवा कें बड़े दाऊ की बाखर में पोंची। बड़े दाऊ ने वैद की दवाई कराई, पे फुरी नईं। अंगूरी खों कोठा में बन्द करकें धरो। एक दिना ऊ के पेट में भारी पीर भई। अंगूरी खों कछू पता नईं के का हो रओ। छै–सात घण्टा बाद ऊ खों पतो चलो के लरका भओ और बड़े दाऊ को नौकर ऊ नन्नी सी जान खों अबार माई की मड़िया पे उन्ना में लपेट के घर आव। अंगूरी खों का पतो हतो के एक दिना ऊ की सौतेली मताई ऊ खों नन्ना के हांतन बेंच देहे...

खेजलू कुतिया के रोबे से बाई की बरोंटी टूट गई। अंदयारे में उठन लगीं, सो नन्ना ने चपेट लओ – "सो जाओ, कुतिया रो रई ती। भगा दओ ऊ खों।"

०० ०० ००

परची लेकें भी भेटन वारे साब ने कनवां खों देखो – "का नाम है?"

"लिखो तो है परची में।"

"तू बता?"

"ऊ की बत्तई।"

"ऊ की बत्तई? – यह कौन सा नाम है?" – भोट वारे साब खों शक हो गओ – "अपना सही नाम बता।"

"ऐ..ऐ.. मोरो नांव तो ऊ की बत्तई है। मैं तो नन्ना के बत्तई पेली बार जो तमासो देखने चलो आओ साब।"

भोटन वारो साब समज गओ, के जो फरजी है। ऊ की बत्तई खों एक कुदाऊं बिठार दओ। एक अजण्ट (एजेण्ट) बोलो – "छोड़ दो साब ई खों। हम जानत हैं। भोट डार लेन देव। जो फरजी–अरजी नइयां।"

दूसरे अजण्टउ ने भी कोनऊ उजर नईं करी। भोट वारे साहब ने सोची – गांव–गाड़े की बात, को परे अलाय–बलाय में उनने ऊ की बत्तई को ऊँठा लगवाओ, उंगरिया पे स्याई लगाई और भोटन पे मुहर लगाबे की विध समझा दई।

ऊ की बत्तई फूलो नईं समा रओ तो। भोटन के बगसा के छेद में से जैसई ऊ की बत्तई ने भोट डारो, मंजले राजा मोटर वारे साब के संगे आ धमके – "देखो साब, देखो कैसे फरजी भोट डर रय। ऊ की बत्तई को भोटर लिस्ट में नाम लो नइयां और नन्ना अपने आदमी के लाने फरजी आदमियन को पोंचा रय।"

मोटर वारे साब के संगे आये थानेदार ने ऊ की बत्तई को पकर लओ। छिन भर में ऊ की हाल–फूल बिला गई – ''मोय पुलस सें न पकराओ मंजले राजा। भूल गय अपन? केऊ साल पेलों मैंने भाभी जू की बत्तई को काम करो तो अपुन के लानें? अब नन्ना की बत्तई को भोट डार दओ सो अपुन खुंसया गये?''

मंजले राजा की झक्की सी खुल गई। हल्ला–गुल्ला मचन लगो। मंजले राजा ने सोची के – ऊ की बत्तई ने अब फोरी कारी हंडिया, सो बोले –''पकर ले जाव साब इते सें, नइंतर उपद्रौ मच जैहै।''

थानेदार ने ऊ की बत्तई खों पकर के एक रापट दई और गाड़ी में बिठारन लगो। ऊ की बत्तई की आंख में जो अचंभो हतो, के ऊ ने ऐसो कौन सो कसूर करो? गांव भर के मुंस–लुगाई आ आ कें भोट डार रय, सो कछू नईं, मैनें नन्ना की बत्तई को भोट डार दओ, सो मोय पुलस ने पकर लओ?

घर्र–घर्र करकें गाड़ी चलन लगी। ऊ सें निकरे धुआं से ऊ की बत्तई को भोलो सो मों दुक गओ।

– सहा० प्राध्यापक, शास० महावि० कोलारस, (शिवपुरी)

बुन्देली लघुकथा –

तुमाए लाने

- डॉ. सुश्री शरद सिंह

मुन्ना सकूल से अपने घरे लौटो सो ऊको दादाजी न दिखाने। ऊने अपने बापू से पूछी, 'काए बापू! दादाजी नईं दिखा रये। कऊं गये हैं का?'

'तुमाये दादाजी बृद्धाश्रम खों चले गये।' बापू ने बताई।

'कां चले गये? जे बृद्धाश्रम का होत है?' मुन्ना खों कछु ठीक से समझ में न आओ। 'वृद्धाश्रम में बूड़े लोग रैत हैं। तुमाये दादाजी सोई बूड़े ठैरे सो उनखों बृद्धाश्रम पोंचा दओ है।' बापू ने कही।

'मोए सोई बृद्धाश्रम लिवा चलो।' मुन्ना ने अपने बापू से अरज करी।

'काए, तुम का करहो उते जा के? तुमें बताई न, के उते बूड़े–ठूड़े रैत हैं। तुम तो बच्चा आओ।' बापू ने मुन्ना खों समझाई। ई पै मुन्ना ने कछु सोचत सो बोलो, 'हम तो ई से कै रये हते के अबई से चल के बृद्धाश्रम देख लेवी सो पांछू कोनऊ मुसकल न हुइए.. काए से के जब आप बुढ़ाजेहो सो आप खों उते भेजबे के लाने मोए जानेई परहे।'

मुन्ना की बात सुन के मुन्ना के बापू सन्न रै गये, मनों मुन्ना ने उनखों ऐना दिखा दओ।

– रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

रानी झाँसी

- जगन्नाथ प्रसाद 'सुमन'

आजादी के खातिर जीने, दई इतै ती कुर्बानी,
लक्ष्मीबाई नाव हतो तो, थी झांसी की रानी।
दीप शिखा बनकें, भारत में, गरजी ती महारानी,
भेष बना मर्दाना रन में जूझी ती – सेनानी।
फिरंगी की गोरी सेना खों, जीने भौत–खदेरो,
धोके सें घुस के दुश्मन नें, करो तो भौत–वखेरौ।
झांसी के दुरग खों घिरौ देख बा – पसोपेस में पर गई ती,
बैरी से लोहा लैबे खों, सेना चौकन्नी–करदई ती।
श्रोणित की नदी बहावे खों, तलवार उठाई–रानी ने,
मारो काटो और जूझ पड़ो, आवाज लगाई–रानी ने।
इतिहास गवाह है झांसी कौ, बीरन ने दई ती कुर्बानी,
लक्ष्मीबाई नाव हतो तो, ती झांसी की रानी।
गोरन खों चकमा दैबे की, महारानी ने इक चाल चली;
हमसकल सखी झलकारी खों, तलवार थमा के धरी–गली।
घोड़े पै चढ़कें पच्छम से, रानी गुम्बद से कूँद–गई,
रस्ते की गोरी सेना खों, बा चलत–जात में रौंद–गई।
तब झलकारी रन में झूसी ती, साक्षात बन महारानी,
आजादी के खातिर जीने, दई इतैती–कुर्बानी।
तबई रक्षक गद्दार दूला जू ने जौ अनर्थ अचानक करडारो,
अंग्रेजन से मसकऊँ मिलकें दरवाजौ मुख्य खोल–डारो।
बीर बहादुर गुलाम गौस की, कड़क बिजली तब थर्रानी,
अंग्रेजी सेना के आगे, बाला बुन्देली–कुम्हलानी।
वीरगती खों प्राप्त भई 'झलकारी' बीरांगना–मर्दानी,
आजादी के खातिर जीने दई इतै ती कुर्बानी।
अपने प्राण निछावर करकें, अमर भये जो क्रांतिकारी,
स्वतंत्रता संग्राम की पैली, याद करो बा–चिनगारी।
खुदीराम, अस्फाग, बिस्मिल की फांसी याद करो।
महारानी लक्ष्मीबाई की झांसी याद करो।
भारत देस स्वतंत्र करावे लहर उठी ती–तूफानी,
लक्ष्मीबाई नाव हतो तो, ती झांसी की–रानी।

– ४९१/ए, शिवाजी नगर, झांसी

फागुन

फागुन में फर गयीं फुलार फूल फलियाँ सब
आमन् में अमिया अनार फल फूल रहे।
लौंगन की लम्बी लतायें किलौर करै
कदबन् की डारन पै श्यामा जू झूल रहे।
किलकत है केर, बेर बौराये महुवा हैं
बरगद अशोक थोक मन ही मन फूल रहे।
पीपर प्रफुल्लित पलाश बास पंगतु है
जंगल जलेबी नवोदित बबूल भये।

– मनोहर लाल मिश्रा, टीकमगढ़ (म.प्र.)

आड़ी धरीं तोपें तरीछे धरे वान, घूम घूम मारें पलेरा वारे ज्वान

- चिन्तामणि वर्मा

यह कहावत लगभग पूरे बुन्देलखण्ड में पिछले लगभग ङ्ढ़ सौ वर्षों से प्रचलित है। इसके बारे में जब मैंने अपने बचपन = तत्कालीन बुजुर्गों से पूछा जो इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे तो न्होंने इस प्रकार बताया। वे सभी वयोवृद्ध कई वर्ष पहले भगवान को प्यारे हो गए हैं।

पलेरा पुरानी टीकमगढ़ रियासत का तथा वर्तमान के टीकमगढ़ जिले का आबादी की दृष्टि से सबसे अधिक लेकिन विकास की दृष्टि से सबसे अधिक पिछड़े ग्रामों में से एक है। पलेरा और उसके आसपास के लगभग बयालीस ग्राम टीकमगढ़ राज्य की सबसे बड़ी जागीर के अन्तर्गत थे उनकी वार्षिक आय उस समय सवा लाख रुपये थी। वहाँ के जागीरदार जो राव साहब कहलाते थे। वे पहाड़ी पर निर्मित किले में सपरिवार निवास करते थे। अन्य बुन्देलखण्डियों की तरह वे बहुत वीर, साहसी तथा स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वे अपनी प्रजा को बहुत प्यार करते थे और प्रजा भी उनके लिए सब कुछ करने के लिए तत्पर रहती थी।

राव साहब को हाथी पालने का बहुत शौक था और उनके पास एक विशालकाय हाथी था जिसका नाम जानकीप्रसाद था। उसके महावत ने उसको ऐसा प्रशिक्षित किया था कि वह प्रतिदिन पूरे गांव में घर–घर घूमता था तथा रास्ते में मिलने वाले बच्चों और ग्रामीण युवकों को अपनी सूंड़ पर बिठाकर झुलाया करता था तथा अपनी पीठ पर सवारी कराया करता था। बच्चों और ग्रामवासियों में वह ऐसा घुलमिल गया था कि किसी को भी उसे किंचित डर नहीं लगता था। उसने कभी भी किसी को किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाई थी। सभी लोग उसे प्रेम से रोटियाँ और अन्य भोजन के पदार्थ खिलाया करते थे।

उस समय टीकमगढ़ के राजा महाराजा प्रताप सिंह थे जो बहुत धार्मिक प्रवृत्ति के लेकिन कान के बहुत कच्चे थे। महाराजा प्रताप सिंह को भी हाथी पालने का बहुत शौक था उनके फीलखाने में भी सदैव बीस हाथी पले रहते थे लेकिन पलेरा के रावसाहब के हाथी की तरह विशालकाय तथा समझदार एक भी हाथी नहीं था। महाराजा प्रताप सिंह ने राव साहब से उनका हाथी मांगा और उसके बदले में चार हाथी तक देने का प्रस्ताव किया। राव साहब ने अपना हाथी देने से इन्कार कर दिया। उस पर महाराजा साहब को बहुत बुरा लगा। वह मन ही मन राव साहब से नाराज रहने लगे।

इधर एक बार राव साहब की टीकमगढ़ रियासत के दीवान नत्थे खां से किसी बात पर कहा सुनी हो गई तो वह भी राव साहब के विरुद्ध समय–समय पर अवसर पाकर महाराजा साहब के कान भरता रहा। परिणाम यह हुआ कि महाराजा साहब ने राव साहब को हर प्रकार से बर्बाद करने की ठान ली।

महाराजा साहब ने अपनी फौज लेकर बिना पूर्व सूचना दिए चढ़ाई कर दी और पलेरा से लगभग आधा किलोमीटर पहले जुबली सागर से लगे मैदान में उनकी फौज ने डेरा डाल दिया। वहां से तोपों से गोले बरसाए जाने लगे तथा उनके सिपाही अस्त्र शस्त्र लेकर पलेरा ग्राम में प्रवेश करने का प्रयास करने लगे। राव साहब के पास महाराजा साहब की फौज की अपेक्षा बहुत कम फौज थी तो भी राव साहब की फौज ने भी अपनी इनी गिनी तोपों से जवाबी गोले दागने शुरू कर दिए और राव साहब के सिपाही भी महाराजा साहब की फौज से वीरतापूर्वक लड़कर उसे पीछे धकेलने लगे। राव साहब की फौज का पलेरा के कुछ जंगली निवासियों ने तीर कमान लेकर लड़कर अच्छा साथ दिया। दोनों पक्षों में जमकर युद्ध हुआ। राव साहब के पास महाराजा साहब की फौज की अपेक्षा कम सिपाही तथा सैन्य सामग्री होते हुए भी उनकी फौज तथा ग्रामवासी इतनी बहादुरी से लड़े कि महाराजा साहब की सेना के पैर उखड़ गए तथा उसे वापिस टीकमगढ़ लौट जाना पड़ा। इस शर्मनाक हार से महाराजा साहब अपने आपको और अधिक अपमानित अनुभव करने लगे। इस लड़ाई में दोनों पक्षों के कई सिपाही मारे गए जिनमें से कुछेक मकबरे आज भी जीर्ण शीर्ण हालत में पलेरा की पहाड़ी के आसपास और तालाब के किनारे इस घटना की साक्ष्य के रूप में खड़े हैं।

अब महाराजा साहब ने छल कपट का सहारा लेकर राव साहब को नष्ट करने की ठान ली। उन्होंने राव साहब के विरुद्ध नौगांव में रह रहे अंग्रेज पौलिटिकिल एजेन्ट से राजद्रोह की झूठी शिकायतें करते रहकर उसे अपने पक्ष में ले लिया और फिर उसके द्वारा राव साहब को नौगांव बुलवाकर वहीं नजरबन्द करवा लिया।

महाराजा साहब ने राव साहब की अनुपस्थिति में अपनी फौज लेकर पलेरा पर फिर चढ़ाई कर दी। इस बार भी राव साहब की फौज तथा वहाँ के कुछ ग्रामवासियों ने महाराजा साहब की फौज को करारा जवाब देने लगी। जब दूसरी बार भी टीकमगढ़ की फौज के पैर उखड़ने लगे तो राव साहब का एक फर्जी पत्र बनाकर नौगांव से राव साहब के भाई के पास पलेरा भिजवाया गया जिसमें लिखा था "यदि तुम हमारे प्राणों की रक्षा करना चाहते हो तो किले के पीछे की सुरंग से बाहर भाग जाओ

और लड़ाई बन्द कर दो।' इस पत्र को सही मानकर लड़ाई बन्द कर दी गई और राव साहब का परिवार किले की पीछे की सुरंग से निकलकर अज्ञात स्थान की ओर चला गया। राव साहब के परिवार को तब से आज तक किसी को कोई पता ठिकाना नहीं मिला।

महाराजा साहब की फौज ने अपनी बहादुरी की झूठी छाप छोड़ने के लिए पहाड़ी पर स्थित किले को तोपों के गोलों से नष्ट कर धूल में मिला दिया। आज भी किले की ध्वस्त दिवालों, विशाल चौकों और गुर्जों के चिन्ह दृष्टि गोचर हैं।

पलेरा की फौज के सिपाहियों और ग्रामीणों की वीरता और अद्भुत साहस का समाचार सारे बुन्देलखण्ड में फैल गया और तब से यह कहावत प्रचलित हो गई कि –

आड़ी धरीं तोपैं तरीछे धरे बान।
घूम घूम मारैं पलेरा वाले ज्वान।।

– चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली कविता –

तन पै डार ले लो रंग रोरी

- डॉ. हरिसिंह घोष

होरी में गई ऐसी होरी,
भिड़ा दई परदनियां कोरी।
बुकल्याबो जांदा साजो नई,
नोनें राव बहू सी गोरी।।
बड़ो सौक तौ रंग से खेलौ,
जौ का नरधा खाँ उलीच दओ।
ऐसी हँसी पुसात न मोखां,
परदनियां को छोर खेंच दओ।।
तुम औरन सें कोउ न कैहै,
दैहै दुनियां हमखां खोरी।।
होरी में गई.........।।१।।
सिरिन हौ का, बुरओ मान गईं,
कौल तुमें जी हलकौ करलो।
घरी भरे की हंसी–काये खां –
बरसन खां बुरवासन करलो।।
मनमाने की बात और है,
रस नई रात करें बरजोरी।।
होरी में गई.........।।२।।
जैसो आय कायदा करलो,
हम राजी अपनो मन भर लो।
पिड़ी–पटा पै हमें बिठा कें,
फगुआ अपने मन कौ करलो।।
रंग लो हियरौ प्रेम रंग में,
तन पै डार लेओ रंग–रोरी।।
होरी में गई.........।।३।।

– घोषयाना, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली कविता –

बिजली बिन्नू

- हरीमोहन सरावगी 'हरि'

जितने इनमें मुन्स करें, वे निकले सब लोला संइयाँ।
बिजली बिन्नू गोरमेन्ट की, काऊ खाँ दबती नंइयाँ।।
जे हो रईं है अपने मन की, प्यारी हो गई है जन जन की।
सीधी साधी इने न जानो, काली नागिन है बेफन की।।
कभऊं इतायें, कभऊँ उतायें, एक जंगा बनती नइयाँ।
बिजली बिन्नू........।।१।।
जबसे जे जी घर में आंई, जेई जेई घर भर में छाई।
लालटेन, डिब्बी, और चिमनी, अब देते ने कितऊं दिखाई।
इनके जैसी इनकी गुइंया, काऊ खां फबती नइयाँ।
बिजली बिन्नू........।।२।।
बनी बनाई धरी ब्यारी, कर रये करबे की तैयारी।
चंचल चपला तो लो चमकी, पूरे घर में भई अंधियारी।
अंधयारे में बैठे बैठे, रोटी तो खबती नइयाँ।
बिजली बिन्नू........।।३।।
उठे ब्यारी छोड़–छाड़ के, चिमनी लाये ढूंड़ ढांड़ के।
बड़े जोर की भूंक लगी थी, खांई रोटी मीड़ माड़ के।
अधिकारी, नेता और मंत्री, काऊ खाँ नबती नइयाँ।
बिजली बिन्नू........।।४।।

– ७१९, अलयाई मुहल्ला, मऊरानीपुर (उ.प्र.)

बुन्देली कविता - पं. श्याम सुन्दर शुक्ल

फिर बन फूले छेवले बिरह अगन अंगार
फिर जोगी मन जा फँसे मदमाती कचनार
भोतउ जतन कर टारौ
मनों जो मन भौंरा न मानों।
भोत कही राजा के बाग में न जइये
करिया रे अपनी औकात समज रइये
पै जो तो बास को मतो रे
ई सें जो मन भौंरा न मानों।
तारों की काँटों की बारगान देखी
फाँद गओ ऊँची दीवारें अनदेखी
भोत कही पेहरो लगो रे
मनों जो मन भौंरा न मानों।
गैंदा के गरैं झूमों बेला सें बतयानों।
गाल पे गुलाब के जा बैठो न मानों
काँटों में पंखा फँसे रे
मनों जो मन भौंरा न मानों।
अब रामई राखैं तो उबरे जो प्रानी
नातर फँस सम्पुट में जैहै जिन्दगानी
कैंसें निभहै उनसे यारी
अरे जो मन भौंरा न मानों।

– मां गंज नं.१, गार्ड लाइन, दमोह (म.प्र.)

भक्त शिरोमणि महारानी कुंवरि गणेश

- सी०एम० खरे 'अविनाश'

बुन्देलखण्ड के जिला टीकमगढ़ में स्थित पवित्र तीर्थ ओरछा धाम अपने आप में अनेक महत्वपूर्ण कथायें समेटे हुए हैं, जिनका वर्णन करते कवि और लेखक अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं। बुन्देलखण्ड के प्रत्येक नर–नारी और बालक की जुबान पर एक दोहा हमेशा रहता है –

''राजा मधुकर शाह की, रानी कुँवरि गणेश।
अबधपुरी से ओरछा, लाई अवध नरेश।।''

सन् १५५४ ईस्वी में महाराजा भारतीचन्द्र की मृत्यु के पश्चात उनके छोटे भाई मधुकर शाह ओरछा के राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। महाराजा मधुकर शाह महान धार्मिक, निर्भीक और पूजा पाठ में रुचि रखने वाले थे।

महाराजा मधुकर शाह की छः रानियां थी। इनमें सब से बड़ी परम भक्त महारानी गणेश कुंवरि थीं। महारानी गणेश कुंवरि का जन्म विक्रमीसम्वत् १५६९ में करईया (डबरा) के अनुरुद्ध सिंह परमार के यहां हुआ था। आपके पिता श्री अनुरुद्ध सिंह बड़े ही धर्म निष्ठ एवं वीर पुरुष थे। महारीन गणेश कुंवरि के बचपन का नाम कमला देवी था। कमला देवी की माता श्री विजयकुंवरि श्रीराम की परम भक्त थीं। अतः उनकी ही देखरेख में पली बेटी कमला का मन भी बालक रूप में श्री रामभक्ति में लीन हो गया।

ओरछा नरेश महाराजा मधुकर शाह की भक्ति की प्रशंसा से प्रभावित होकर ही श्री अनुरुद्ध सिंह ने अपनी पुत्री का विवाह विक्रमी सम्वत् १५९६ में अगहन शुक्ल पंचमी दिन गुरुवार को महाराजा मधुकर शाह के साथ कर दिया था। महाराजा मधुकर शाह भगवान श्री कृष्ण की उपासना श्रेष्ठ मानते थे और महारानी गणेश कुंवरि बालक रूप में श्री रामराजा की उपासना सर्वश्रेष्ठ मानती थीं। इसी विषय को लेकर विक्रमी सम्वत् १६३० में राजमहल में महाराज एवं महारानी के बीच वाद–विवाद चल रहा था। बातों ही बातों में महाराज ने महारानी को वृन्दावन चलने हेतु कहा, किन्तु महारानी जी ने अपनी भक्ति भावना प्रकट करते हुए बालक रूप में अपने उपाष्य देव को अयोध्यापुरी में बतलाते हुए कहा – ''मैं वृन्दावन न चलकर अयोध्यापुरी ही जाऊँगी।'' महाराज ने व्यंग्य रूप में महारानी से कहा आप के उपाष्य तो केवल पुरषोत्तम थे। महारानी वहीं उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष सर्वनाम वगैरह – वगैरह जानती हो न।'' महाराज के मुख पर क्रोध के लक्षण देखकर महारानी जी चुप हो गई। किन्तु महाराज का क्रोध कम न हुआ। वह बोले ''तो ठीक है तुम अयोध्या जाओ परन्तु अपने इष्ट को बालक रूप में साथ लेकर ही लौटना खाली हाथ नहीं।''

महाराज तो इतना कहकर अपने इष्ट के दर्शन करने हेतु वृन्दावन चले गये, लेकिन महारानी जी ने सायंकाल के समय अपने राजगुरु व्यास जी के चरण छूकर कहा – '' महाराज अब मैं आपके दर्शन नहीं कर सकूँगी क्योंकि मैं सदा के लिए अयोध्या जा रही हूँ। महाराजा साहब ने आज मुझे साकार रूप में अपने इष्ट को लेकर ही वापिस आने को कहा है।''

व्यास जी ने सांत्वना देते हुए कहा – ''पति से रूठना अच्छा नहीं है। स्त्री के लिए तो पति ही देवता है। फिर आप तो हमेशा रामायण का अध्ययन भी करती हैं। भगवती सीता माता का आचरण तो देखो।'' गुरु व्यास जी की यह बात सुनकर महारानी जी ने पूछा – ''क्या श्री रामचन्द्र जी के दर्शन साकार रूप में हो सकते हैं महाराज?'' गुरूजी बोले – ''क्यों नहीं? प्रभू तो सर्वत्र हैं। परन्तु वे चित्रकूट और अयोध्या में श्री राम रूप में ब्रज में श्री कृष्ण रूप में तथा काशी जी में शिव रूप से साक्षात विराजमान रहते हैं।'' महारानी बोली – ''आप ही मेरे गुरू हैं, परम पूज्य हैं जो आज्ञा हो वही करूंगी। मैं बड़े धर्मसंकट में फंस गई हूँ महाराज।'' व्यास जी ने पूछा – ''क्या महाराज साहब ने कोई कठोर बात कही है?''

महारानी जी बोली – ''और तो कुछ नहीं कहा। बस अयोध्या से अपने उपाष्य देव को साक्षात् रूप में लाने का ताना दिया है।''

सुनकर गुरु व्यास जी विन्हल हो गये। ऊपर की ओर हाथ जोड़कर कहने लगे – ''हे प्रभू! रामायण काल में श्रीरामचन्द्र जी इस भूमि पर पधारे थे क्योंकि दण्डक वन सीमा बुन्देखण्ड के अन्तर्गत मानी गई है। क्या पुनः इस बुन्देलखण्ड भूमि को पवित्र करेंगे भगवन?'' गुरु जी की बात सुनकर महारानी जी ने कहा – ''मन वचन और कर्म से मेरी लाज रखना प्रभु उचित समझेंगे तो साक्षात बालक रूप में मेरे साथ जरूर पधारेंगे।'' महारानी जी की भक्ति से प्रसन्न होकर गुरु व्यास जी ने आषाढ़ शुक्ल द्वादसी विक्रमी सम्वत् १६३० दिन सोमवार को प्रातः काल प्रस्थान का शोधन कर महारानी जी को आर्शीवाद दिया और कहा – ''सोमवार शंकर जी का दिन है। उनका पूजन करके उन्हें प्रशनन करके जाओ। उनकी कृपा से ही श्रीराम के साक्षात बालक रूप में दर्शन अवश्य होंगे।''

महारानी जी ने व्यास जी के चरण छुये और उनका आर्शीवाद पाकर प्रसन्न हो गई। महारानी जी व्यास जी द्वारा बताये समय पर अवधपुरी में जाकर लक्ष्मण किले के पास सरयू नदी के किनारे कठिन तपस्या करने लगीं। तपस्या करते हुए एक

माह बीत गया किन्तु महारानी साहिबा को भगवान के दर्शन नहीं हुए। तब रात्रि में १२ बजे महारानी जी अपना शरीर त्यागने हेतु सरयू नदी में कूद पड़ी। तब बीच जल धारा में बालक रूप में श्री राम गोदी में आकर कहने लगे – "मैं आप की भक्ति से प्रसन्न हूँ। आप वरदान मांग लीजिए।" महारानी जी ने गदगद होकर कहा – हे नाथ !

मैं नारी अपावन प्रभु जग पावन, रावन रिपु जनसुख दाई।
राजीव विलोचन भव भय मोचन, पाहि पाहि सरनहि आई।।

ऋषि पत्नी अहिल्या द्वारा की गई प्रार्थना दुहराते हुए वे प्रभु के चरणों से लिपट गई और बोलीं –

"नाथ साक्षात रूप में मेरे साथ ओरछा, चलकर मेरी भक्ति की रक्षा कीजिए। प्रभु!" बालक रूप में श्रीराम राजा ने कहा – "माँ मैं तुम्हारी भक्ति के वश में होकर अवश्य ही ओरछा चलूंगा। परन्तु हमारे तीन वचन तुम्हें भी स्वीकार करना होंगे। प्रथम मैं केवल पुख्य नक्षत में ही चलूंगा, नक्षत्र समाप्त होते ही उसी जगह ठहर जाउंगा। पुख्य नक्षत्र आने पर पुनः प्रस्थान करूंगा। दूसरा यात्रा पैदल ही होगी और साधुओं के समूह के साथ होगी। तीसरा हम सर्व प्रथम जिस स्थान पर बैठेंगे उस स्थान से दूसरे किसी मंदिर में नहीं जायेंगे।"

महारानी गणेश कुंवरि को बालक रूप में श्री रामराजा के दर्शनों की जानकारी अयोध्या के महात्माओं एवं भक्तजनों को प्राप्त हुई तो अयोध्या के विद्वानों ने उनकी उपमा महारानी कौशिल्या जी से कर डाली। उनकी प्रशंसा में एक दोहा आज भी प्रसिद्ध है –

"बैठे जिनकी गोद में, मोद मान विश्वेश।
कौशिल्या सानी भई रानी कुंवरि गणेश।।"

दूसरे वचन के अनुसार महारानी जी ने अयोध्या के महात्माओं से ओरछा तक चलने का निवेदन किया। महात्मा लोग इस बात से असंतुष्ट हुए। उन्होंने भगवान को ओरछा ले जाने का विरोध किया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने समझाया भगवान ने ओरछा अकेले जाने का वरदान दिया है। श्री किशोरी जी को ओरछा नहीं जाना है। इस सम्बन्ध में एक दोहा भी प्रसिद्ध है –

"सुख निवास श्री राम के, दो निवास हैं खास।
दिवस ओरछा रहित हैं, रैन अयोध्या बास।"

रामराजा का निवास ओरछा धाम में दिन में ही रहेगा, रात्रि में सयन तो अयोध्या में ही होगा, तब गोस्वामी तुलसीदास जी का उपदेश सुनकर सभी महात्माओं ने भारी समारोह के साथ श्रावण शुक्ला पंचमी विक्रमी सम्वत् १६३० पुख्य नक्षत्र में आयोध्या से ओरछा के लिए प्रस्थान किया और चैत्र शुक्ल नवमी दिन मंगलवार पुख्य नक्षत्र विक्रमी सम्वत् १६३१ में ८ माह २७ दिन के बाद ओरछा में प्रवेश किया। यह भी संयोग की ही बात है कि त्रेता युग में इसी तिथि बार एवं नक्षत्र में भगवान श्री राम ने अयोध्या में महाराजा दशरथ जी के यहां जन्म लिया था। सौभाग्य से आज भी वहीं दिन तिथि एवं नक्षत्र पाकर परमपूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस की रचना का श्री गणेश किया, जिसका उदाहरण मानस में स्पष्ट रूप से मिलता है–

"सम्वत् सोलह सै एकतीसा। करऊँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भोमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकाशा।

भगवान श्रीराम महारानी गणेश कुंवरि के महल में विराजमान हो गये। तीसरी शर्त के अनुसार फिर किसी अन्य मंदिर में नहीं गये। आज भी ओरछा में रामराजा का जो मंदिर है वह महारानी गणेश कुंवरि का महल था।

विक्रमी सम्वत् १६४२ ज्येष्ट शुक्ल एकादशी यानी निर्जला ग्यारस को महारानी गणेश कुंवरि का स्वर्गवास हुआ था। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के निवासियों का यह विश्वास है कि महाराजा मधुकर शाह और महारानी कुंवरि गणेश पूर्व जन्म के महाराजा दशरथ एवं माता कौशल्या जी थीं।

– किशोरी कुंज, हनुमान टौरिया के पीछे,
छतरपुर (म०प्र०)

अधर तुम्हारे जैसे फागुन...

– मणि 'मुकुल'

अधर तुम्हारे जैसे मुकलित, कचनारों की दो कलियां।
अधर तुम्हारे जैसे मिलती, गांव द्वारे जो गलियां।।

अधर तुम्हारे जैसे मेरे, गीतों के अंतिम मुखड़े हों।
अधर तुम्हारे जैसे जुड़वां, हीरों के मध्यम टुकड़े हों।।

अधर तुम्हारे जैसे होता, सीपी में मोती का शैशव।
अधर तुम्हारे जैसे उतरे, सौर–जगत से मंगल वैभव।।

अधर तुम्हारे जैसे बंधक, शिव की लट में गंगाजल हो।
अधर तुम्हारे जैसे चारू, चंदनवन की दावानल हो।।

अधर तुम्हारे जैसे मिलता, बचपन यौवन के पनघट पर।
अधर तुम्हारे जैसे कोई, कंचन–कलश रखे घूंघट पर।।

अधर तुम्हारे जैसे कोई, चकवा–चकवी का जोड़ा हो।
अधर तुम्हारे जैसे नभ में, कामदेव ने सर छोड़ा हो।।

अधर तुम्हारे जैसे तृष्णा, सागर को आंचल भर लेती।
अधर तुम्हारे जैसे बिंदिया, बिना बात बातें कर लेती।।

अधर तुम्हारे जैसे सावन, भादों से मिलने आया हो।
अधर तुम्हारे जैसे फागुन, मधुवन के झौंके लाया हो।।

– जे.पी. नगर, अधारताल, जबलपुर (म.प्र.)

दतिया का सिलहखाना

- डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

प्रस्तुति - विन्ध्यकोकिल भैयालाल व्यास

दतिया के महाराजा का पुराना शस्त्रागार (सिलहखाना) शहर में गढ़ के भीतर जो महल उसके सामने दो सिधे (आधीनाल की तोप जो अंग्रेजी मॉरटर के तुल्य हुई) रखे हुए हैं। किले के बाहर से और भीतर से द्वारों के बीच का घूमा हुआ भाग राजस्थान में घूंघस और बुन्देलखण्ड में रैनू कहलाता है, वही एक भारी लगभग आठ फुट नाल और दो फुट व्यास की तोप रखी हुई है, जिस पर एक लेख खुदा है। उसके अनुसार अकबर द्वितीय के समय में सम्वत् १८८८ में पारीक्षत महाराज के राज्यकाल में दलीप नगर (दतिया का पुराना नाम) के मुहीउद्दीन नामक लुहार ने यह तोप ढाली थी। आश्चर्य है केवल सवा सौ वर्ष पहिले एक साधारण लुहार की भट्टी इतनी बड़ी ढलाई का काम कर सकती थी, जो आज भी उने-गिने कारखानों में हो सकता है।

यहाँ (दतिया में) पहली बार हमने लोहे की महीन कड़ियों से बनी हुई हाथी की रक्षात्मक झूल देखी, यह चार हिस्सों में बनती थी। मुंह को ढकने का भाग 'सिरी', दोनों बगलों में लटकने वाला भाग 'पाखट' और दुम की ओर पुट्ठों का बचाने वाला भाग पिछाड़ी कहलाता था। हाथी के दातों पर खांग लगे दो ढक्कन रहते थे जिन्हें मुहाला कहा जाता था। घोड़े का मुँह ढकने वाला लोहे का कड़ीदार पट्टा अंधियारी कहलाता था।

आदमी का जिरहबख्तर भी देखा। अच्छा सिपाही सिर से पैर तक बख्तर से अपने आपको ढककर बारह हथियार बांधता था, ऐसा प्रसिद्ध है। इसे बाने की 'बारहवान' कहते हैं। पूछने पर बारह हथियारों की यह सूची बताई गई, १. तलवार, २ तमंचा, ३ बिछुवा, ४ जमदाड़ या जमदहिया, ५. कटार, ६. चक्र, ७. कमान, ८. बन्दूक, ९. सांग, १०. ढाल, ११. बांस, १२. बख्तर। जिरह और बख्तर का भेद तथा झिलम और टोप का भेद मुझे उस दिन पहली बार मालूम हुआ। लोहे की कड़ियों का बना अंगरखा जिरह कहलाता था। बख्तर एक प्रकार का जिरह था, जिसमें आगे-पीछे लोहे के तवे लगे रहते थे। उन्हें चार आइना (आइने की शक्क के दो आगे दो पीछे के लोहे के तवे) कहते हैं। आइने में आड़ी सलाखें जड़ी रहती हैं जिन्हें पसली कहते हैं जो पसलीदार हो उसे बख्तर कहा जाता है। जिरह के ढंग का ही पजामा बनता था। सिर पर लोहे का टोप पहनकर कड़ियोंदार झालर गर्दन पर लटकाई जाती थी, जिसे झिलम कहते थे। दोनों के लिए झिलमटोप शब्द हिन्दी में चल पड़ा। नाक की रक्षा के लिए आगे लटकता झिलम नकाब कहलाता था। टोप को गर्दन से बांधने की कड़ीदार जंजीर पवाई कहलाती थी। अन्दर सई भर बनाया हुआ किमखाव का अंगरखा जिसके ऊपर लोहे के परत जड़े रहते थे, 'चिलता' कहलाता था उसके भीतर मगर की पसलियां भी रुई में भर देते थे।

मस्त हाथी को वश में करने के लिए पूरे लोहे का भारी अंकुश गजघाव कहलाता था। यहां एक दुहरा गुर्ज भी मिला, जिसमें ऊपर नीचे के दोनों सिरों पर चीमरी की भांति का एक-एक लौहे का फांकदार फूल लगा हुआ था। एक नाली की चौनाली तोड़ेदार बन्दूक थी, कुछ दुनाली भी थी, छोटी और बड़ी 'रन्दापनाश' बन्दूकें देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। किले की दीबार में जिसे यहां 'शू' कहते हैं। ऊपर कुछ सुराख या मोरवे बने रहते हैं, जिन्हें आजकल तीरकस कहते हैं और पुराने समय में 'रन्ध्र' कहते थे 'रन्ध्र' से रांद बना है उसी के लिये बड़ी बन्दूकें 'रन्दापनाश' कहलाती थीं।

कुलंग हथयार भी पहली बार देखने को मिला। यह एक लोहे के डंडे में दूसरा नुकीला डंडा लगाकर बनाया जाता था। जिससे माथे पर चोट करते थे। कुलंग पक्षी की चोंच की तरह होने से इसका नाम पड़ा। गुफ्तीदार कुलंग भी बनाये जाते थे। कई तरह की तलवारें देखी, जैसे झोका, तलवार, नागदमन जिसकी धार दांतेदार या लहरिया होती थी, 'सोसन कत्ता' और चौड़ा तेगा दो जीभ की दुभालिया कटार लहरदार कटार और छोटी कटारियां भी देखी। बिछुवा नामक हथियार पर जगदम्बा की मूर्ति बनी थी। पांच अंगुली और छब्बे वाला बंघनखा भी देखा, जिसके छल्ले में तर्जनी और छिगुनी डाल कर गिरफ्त की जाती थी।

एक गुफ्तीदार फरसा था, जिसके वेंट पर हाथी का मुंह बना था। मारू ढालदार एक नया हथियार देखा, जिसके बीच ढाल लगी थी और दोनों ओर नोकदार दो छोटे भाग लगे थे। इसे बीच से पकड़कर लड़वैया बचाव और मार एक साथ कर सकता था। कड़ावीन बन्दूक वह भी, जो एक तरफ लटकी रहती और केवल पैंतरे से चलाई जाती थी उसमें आंख से निशाना नहीं साधा जाता था। छोटे-बड़े अनेक प्रकार के तमंचे और बन्दूके भी लड़ाई में काम आती थी लथरकला की बन्दूकें और तमंचे पुराने ढंग के थे। उनमें चकमक पत्थर की रगड़ से चिनगारी उत्पन्न होकर बारूद से आग लगती थी। पथरकला का दुनाली तमंचा पथरकला की कड़ाबीन पथरकला की बन्दूकों के कई नमूने थे।

'हाथी चीक्कार' एक प्रकार का लोहे का बना हुआ भारी भाला था जिससे पैदल सैनिक हाथी पर वार करते थे। एक छोटी अद्दा तोप का नाम 'तोप गोरे की' बताया गया। ज्ञात हुआ कि

इसमें गोरे पत्थर (एक प्रकार के मुलायम सफेद पत्थर का नाम) के गोले भरकर चलाये जाते थे।

(शस्त्रों के गोदामों में) सबसे पहिले मेरा ध्यान गोलचक्र पर गया, जो बीच में अंगुली या डंडा डालकर तेजी से घुमाते हुए गर्दन पर निशाना लगाकर दूर तक फेंका जाता था। पृथ्वीचंद चरित की सूची में चक्र का नाम आया है। गिरे हुए तीर उठाने के लिए फूल नामक एक यंत्र होता था, जिसके सिरे पर फांकदार फूल लगा रहता था। कुल्हाड़ी की तरह का एक हथियार मिला, जो तवल कहा जाता था, और जो सुजान चरित की सूची में है।

दतिया के सिलहखाने में कमाने रखी देखकर हमने अनुमान किया कि ये वे बांस या लकड़ी की बनी होंगी पर हमें बताया गया कि रेशम कूटकर उसे सरेस से पतली लकड़ी पर चिपका कर धनुष बनाते थे, जो मुड़ने या झुकने पर भी टूटता न था। तीर के पिछले सिरे पर एक खांचा बना रहता है, जिसे डोरी या गोशे पर रखकर तब डोरी को पीछे की ओर खींचते थे वह चिराहुआ सिरा सूपाल कहलाता था। डोरी तांत की या रेशम की बनाई जाती थी। तीर कई प्रकार के थे। नावक का तीर भी देखा। एक तिमालिया (तीन नोक की) गुफ्ती, नाहरमुखी वेंट की गुफ्ती, तिपहला वल्लम, अणियादार (अणी=नोक) पेशकब्ज भी देखा।

कटार हिन्दूकाल का हथियार था। उसकी बनावट इस प्रकार की होती है दो सीधी पत्तियों के बीच दो आड़ी डंडी लगी रहती है। पत्तियों से ऊपरी सिरा खुला हुआ और नीचे का एक कमांचे से जुड़ा रहता था। इसी कमांचे में फल लगा रहता है। खड़ी पत्तियों को टालें, आड़ी डंडियों को भोगली कमांचे को कन्धा कहते हैं। फल में ऊपर के हिस्से में सुन्दरता के लिए पान की आकृति और बीच में नस बनी होती है, और अगल–बगल का हिस्सा सींग कहलाता है।

तलवारों के अनेक भेद हैं, मूठ और फलों की रचना से उनके अलग अलग नाम पड़ते हैं। (यहां पर) ज्ञात हुआ कि फल के ऊपर की गोल फुटक निबौरी कहलाती है। कहीं कहीं निबौरी में एक कड़ी रहती है जिसे नंथनी कहते हैं। दतिया में उसका नाम दस्कती भी मिला। 'दस्तखत करने वाली मुहर की आकृति से मिलने के कारण उसका नाम पड़ा होगा। इस विषय की शब्दावली अपार है और विषय भी रोचक है।

ढाल भी कई तरह की होती थी। मुरादाबादी ढालें धातु की बनी होती थी। गेंडे की खाल की ढालें तो सुनी और देखी थी पर यहां रेशम से कूटकर बकरे के खून के साथ जमाई हुई ढालें दिखाई गई जो सिलट कहलाती है। ढाल के पीछे हाथ डालने का फन्दा हथमासी (हस्तपाशिका) कहलाता है।

इस प्रकार ३१ मई को चार घण्टे दतिया का सिलहखाना देखते रहे। (स्व. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल,हिमी के पुरातत्वविद बड़े लेखकों में गिने गये हैं। उनकी शोध यात्रायें और उनसे प्राप्त जानकारियां भारतीय राज्यों तथा क्षेत्रों की विविधता कौशल शौर्य और साधनों की ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। दतिया राज्य के रहते (जाते–जाते) स्व. महाराजा गोविन्द्र सिंह जू देव ने १३, १४ मई सन् १९५१ में विद्वान लेखक को दतिया बुलाया था जहाँ से वे राष्ट्रीय संग्रहालय में कुछ नमूने चुन ले गये थे।)

'दतिया की यात्रा' से साभार ये लेख लेकर प्रस्तुत करना एक यज्ञ की पूर्ति में मानता हूं। इस लेख में जो वर्णित है मैंने स्वयं अपनी बाल्य और युवावस्था में इन शस्त्रों को देखा और उस समय के इक्काडील (बल्लमधारी विशेष ड्यूटीदारों को कुछ कुछ चलाते भी देखा है।)

— व्यास भवन, नरसिंहगढ़पुरवा,
छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली लघुकथा —

बिटिया

- डॉ. सुश्री शरद सिंह

'देखो, तुमें अपनी बैन को खयाल रखो चइये! वा तोरे से लोहरी भली कहानी पर वा को अपने बराबर समझो करे, नई तो वा को अच्छो न लगहे!' मुन्ना के बापू सात बरस के मुन्ना खों समझात भये बोले।

असल में बात जे भई रई के मुन्ना की लोहरी बहन मुन्नी खेलत–खेलत कोनऊ बात पे आपस में झगड़ परे रहे। मुन्ना ने मुन्नी खों दो–चार झापड़ें लगा दई, संगे एकाद ठूंसा दे मारो रओ। मुन्नी रोउत भई बापू के लिंगे पोंची सो बापू मुन्ना खों बुला के समझान लगे के कोनऊ कि बिटियन के संगे मारा–पीटी नई करो चइये।

मुन्ना अपने बापू की बातें कान दे के सुनन लगो। कछु देर सुनत–सुनत अचानक वा पूंछ बैठो, 'बापू! मोए आपकी सबई बातें साजी लग रई, आप ठीक कैत हो के बिटियन के संगे मारा–पीटी नई करो जाओ चइये काए से के उने सयानी होबे पे पराये घरे जाने परत है।.... पर बापू! जे बताओ के का पराई बिटियन के संगे तो मारा–पीटी करी जा सकत है। काए ऐसोई है न!'

'नई बेटा! बिटियां सो बिटियां होत हैं, चाये अपनी होय चाये पराई... कोनऊ को पारबो–पीटबो नई चइये!' बापू ने मुन्ना को फेर के समझाई।

'लेकिन बापू! आप बात–बात पे अम्मा खों काए मारत–कूटत रैत हो? बे बी तो हमाये नानाजी की बिटिया आएं. ..?' मुन्ना अपने बापू से पूछ बैठो। जा सुन के बापू को मों फक्क पड़ गओ।

— रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

स्वर्गीय बासुदेव गोस्वामी की कहानी : उनई की जुबानी

- वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक"

कैऊ बरस पैलां बुन्देलखण्ड के बिलात विख्यात सुकवि दतिया निवासी स्व. वासुदेव गोस्वामी की चिठिया उनकी पत्नी के स्वर्गवासी होवे कौ शोक–सम्वेदना व्यक्त करने वाले पत्रोत्तर के रूप में इन शब्दों में मिली ती –

प्रिय बंधुवर कौशिक जू,

सप्रेम नमस्कार। दतिया, २३–३–९२

मोरी धरमपत्नी के निधन पै अपुन कौ शोक संदेश मिलो जो धैर्य में सहायक होवेगौ। इस प्रकरण पर जे चार पंक्तियाँ भेज रओ–

"विवश होकर परम प्रिय कौ विरह
अब सहने लगे,
जो कभी अनिवार्य थे उनके
बिना रहने लगे।
समय की मरहम ने जख्मों
को सुरवाया इस कदर,
मौत के मनहूस दिन को
पुण्यतिथि कहने लगे।।"

भवदीय,

हस्ता० वासुदेव गोस्वामी

फिर तौ गोस्वामी जू सें ऐसो जुड़ाव जुड़ो कै हम दोनों के बीच कैऊ चिठियन कौ आदान–प्रदान भओ। उनकौ मोरे तांय ऐसो, प्रेम बढ़ो कै मैंने उनसें मिलकें एक भेंटवार्ता बुन्देली में लिखने की ठानी औ जा चिठिया उनें लिख दई –

परमादरणीय गोस्वामी जू, छतरपुर (म.प्र.)

सादर जुहार पोंचे। २४–०४–९२

अपुन की चिठिया मोय कैऊ दिना पैंला मिल गई ती पै जुआब के लानें कछु आलस, कछु प्रमाद आड़े आगओ सो पत्रोत्तर में देर हो गई। क्षमाप्रार्थी हों, क्षमा तौ मिलइ जैहे – गोस्वामी बाबा पैलऊं कै गये –

"क्षमाबड़न खों चाहिये, छोटन के उत्पात"

अपुन सें फिर एक बेर और जा विनती करत हों कै अगाऊँ कछु प्रश्न लिख रओ तिन के जुआब किरपा करकें जरूरई भेज दइयो तासें उनें पढ़कें जो कछू और प्रश्न उभरें उनकौ जुआब लेवे के लानें रूबरू अपुन की सेवा में दतिया में हाजिर हुइ हों। मोरे लाने जो सेवा होय कृपया लिखियो औ सदा ऐसोअइ स्नेह–कृपा भाव बनायें रइएगा।

अपनोई–वीरेन्द्र

ई चिठिया कौ जुआब हमें इन शब्दन में सिलसिलेवार इस तरां मिलो –

श्री

सिद्ध श्री वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक" जू कों जोग लिखी दतिया से वासुदेव गोस्वामी की नमस्कार पौंचे। आपर २४–४–९२ की पाती में अपुन नें जो जानकारी चाई है सो मैं निवेदन कर रओ हों –

<u>प्रश्न –</u> अपुन कौ जन्म कबै औ कितै भओ तो? अपनौ पारिवारिक परिचय सोउ नैक लिख दइयो। प्रेरक कवियन के नाम भी लिखियो।

<u>उत्तर –</u> मेरौ जनम संवत् १९७१ वि. की वैसाख बदी आठे शनिवार खों दतिया में भऔ (१८–४–१९१४ ई.)। पिताजी व्यास–बंसी पं. मुकुन्द लाल गोस्वामी शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता रए। समाज गायन में बड़े कुसल, हजारन कबित्त सबैया उनें मुखाग्र हते। माताजी श्रीमती कुंजकुँअरि (कुंजन) खों हजारन सूरदास, हरिराम व्यास आदि के पद, लोकगीत और दोहा याद हते। रोजई घर में उनकौ पाठ कछु न कछु होतई रात तौ। अग्रज पं. बृजभूषण गोस्वामी हाई स्कूल में हिन्दी अध्यापक रए। कविता करत ते और लेख लिखत ते। सो इनको सनेह और आसीर्वाद मिलो। दतिया के फौजदार पर्वत सिंह, श्री स्वामी जी (पीताम्बरा–पीठ), झाँसी के स्व. नाथूराम माहौर, सेवकेन्द्र, मऊरानीपुर के राष्ट्रकवि घासीराम व्यास, अनेक विद्वान कवियन कौ सत्संग मिलौ। उनसें प्रेरणा पाई। विंध्य–प्रदेश बनौ सन् १९४८ में। सो मैं रीवा असिस्टेण्ट एकाउण्टेंट ज़ैनरल के पद पै बई साल जा पौचो। दतिया रियासत में एकाउण्टेंट जनरल हतौ। उतै रीवा में छतरपुर के श्री महेन्द्र कुमार मानव जी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और स्व. राममित्र चतुर्वेदी जैसे मित्रन ने उत्साह बढ़ाऔ। नाव तौ इतेक हैं कै उन सब खों कां तक लिखों?

<u>प्रश्न –</u> कबिताई करबौ औ लिख लिखबौ कब सें शुरू करो तो? पैली रचना कौन हती? कितै, कबै छपी ती? तबै कैसो लगो तो?

<u>उत्तर –</u> कबिताई तौ सन् १९२८ सें नैक, नैक सुरू कर दई ती। पैली कविता की डायरी हिलविलान हो गई, सो कै नई सकत कै सबसें पैलें कौन कविता और कबै काय में छपी हती। काय सें कै बौ छपी कबिता कतर कें बई डायरी में चिपका लई ती। पै इतेक टिक्का बनो है कै जैसई बौ कविता छपकें आई, तैसई मैं बौ अखबार लैकें बजारै एक पुराने प्रतिष्ठित कनू लाल

सराफ की दुकान पै पौंचौ। बे पढ़े लिखे तौ नैकऊ न हते पै हमाये बड़े शुभचिन्तक हते। उनके बड़े परिवार की कैऊ दुकानें हतीं; रोज अथय कैं उनकी दुकान पै हम जात हते। सो हमने उनसे कई कै कक्का, जौ हमाई कविता छप कैं आई है।' उनने पूंछी कै आपने भेजी हुए छपवे खों कै अपने आप छप गई? हमने कई कै हमने भेजी हती। सुनतनई सनाका खा कैं रैगए। फिर बोले कै 'पंडित जी! हम तौ आपखों भलौ आदमी जानत हते।' हम तौ उनकौ मौ देखत रै गए कै जे का आय कै रए! हम तौ सोचत ते कै जे हमाई प्रसंसा कर हैं पै उननैं तौ लट्ठ सौ पटक दओ, हमाई तौ सिट्टी-बिट्टी भूल गई, तौऊ हमने पूंछी कै 'कक्का! जा में का बात पर गई?' बे बोले कै अखबारन में छपाबौ भले आदमियन कौ काम नई होत।' १९३२-३३ के अरकें-करकें की जा बात आय और जांतक ध्यान है झांसी के साप्ताहिक प्रजामित्र में बा कबिता छपी हती। सामाजिक कविता-राजनीति कौ तौ नाव न हतौ। सो पैली छपी कविता पै जा तरां की 'दाद' हमें मिली हती।

प्रश्न – अपुन के साहित्य-सृजन करवे में दाम्पत्य-जीवन कितनौ साधक/बाधक रओ?

उत्तर – साहित्य-सृजन करबे में दाम्पत्य कभऊँ बाधक नई भओ।

प्रश्न – अपुन की सर्वोत्तम कृति कौन सी आय है? कित्ती कृतियां छपी? कित्ती छपवे सें रै गईं? जो नई छपीं, उनकी का व्यवस्था कर रए?

उत्तर – 'भक्तकवि व्यास जी' ग्रंथ (१९५३ ई. में प्रकाशित) खों मैं अपनी सब रचनन में अधिक प्रिय मानत हों। अब तक १६ कृतियों, जिनमें १. 'भक्त कवि व्यास जी', २. हरिराम व्यास, ३. उड़ते छींटे, ४. बुद्धि के ठेकेदार, ५. विद्रोही बानपुर, ६. केनोपनिषद (हिन्दी पद्यानुवाद सहित), ७. बुद्धदेव (लघु प्रबन्ध काव्य), ८. त्रिवेणी के संगम पर (विविध कवितायें), ९. करील कुंज (वृजभाषा कवितायें), १०. जातक कहानियों (नवशिक्षितों के लिए) प्रमुख हैं। छपी हैं। छोटी-बड़ी ३०-३२ पुस्तकें अबै अनछपीं रै गईं। कछु तौ खुद छपाबे कौ विचार है। शेष कौ जब जैसौ होबे कौ औसर मिलै।

प्रश्न – अपुन खों कौन बेरा लिखबे में सुख मिलत? रोज कितनौ लिख लेत?

उत्तर – लिखवे में सबसें ज्यादा सुख बा बेरां मिलत जब कछु ऐसौ लिख जाय कै जो अबै तक लिखो न गओ होय। नित्य लिखवे कौ तौ नियम है नई। जब जैसो मन भऔ सो दै लिखौ। इतेक न तौ समय है, न इतेक अब बनतई है जा सरीर सें।

प्रश्न – अपने आरम्भिक लेखन में आई विवूचनन खों अपुन नै कैसे निनवारो?

उत्तर – आरम्भिक लेखन में हमें कौनऊ बिबूचन नई आई।

प्रश्न – अपनौ बीतौ जीवन मुड़कें देखवे पै अपुन खों कैसो लगत?

उत्तर – बीती ताय बिसार दै, आगे की सुख लेय।

प्रश्न – अपुन पत्रकारिता और साहित्यकारिता में का फरक मानत?

उत्तर – पत्रिकारिता की का काने! आज के पत्रकार पुराने राजकवियन के प्रतिनिधि माने जायें चइये। समाज में पत्रकार पुराने राजकवियन के प्रतिनिधि माने जायें चइये। समाज में पत्रकार स्थान ऐसो है जैसे भोजन की थारी में 'पापर' अंग्रेजी में पापर खों PAPER लिखौ जात है – रोमन लिपि में। पापर जैसें थारी भर खौं दबायें रऊत है, फैलौ फैलौ सब जगा घेरें रत। नेंक दाब देऔ तौ ऐसौ सोर मचाऊत कै जैसें पहाड़ टूट परौ होय। मुराउत्त में मजेदार पै बासें पेट नई भरत।

और साहित्यकारिता में तौ नैतिक आग्रह होंय अई चाहियें। पत्रकारिता मैं ये न भी होंय तौ क्षम्य हैं पै साहित्यकारिता में इनकौ न हौवौ खटकत है। अपनी मान्यता निर्भीकता सें न लिख कें राजनीति तथा अर्थकरी विचारधारा सोच-सोच कैं लिखवे सें बात बनहै नईं। अपुन खों आदर्श मानकें चलव लगे हैं सब जने। पैलें 'बुद्धिजीवी' शब्द नई चलत हतौ। साहित्य की धंधेबाजी सें जौ शब्द सामने आओ है। सो पैलां पत्रकारिता गंदली भई औ अब साहित्यकारिता। सो भैया! हमें तो जोऊ फरक समझ में आऊत। फिर जैसो आपखों नौनो लगै ऊसई विस्तार आप कर लइयो।

प्रश्न – अपुन ने अबै तक को कछु लिखो है, ऊ में कित्तो, कैसो सुख-संतोष मिलो? अपुन ई सम्बंध में और अन्य कौनऊ बात कय चाउत सो भी कै देओ।

उत्तर – अबै तक मैं जो लिख सको, बौ हैई कित्तौ? साहित्य-सागर में एक बूंदई तौ है। तौऊ जित्तौ है ओई में पूरौ सुख-संतोष मानत। कैऊ सम्मान-पुरस्कार मिले, कैऊ जांगा-उत्तरप्रदेश, बिंध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि के सम्मानों, अलंकरणों, पुरस्कारों सें नबाजे गओ तौऊ का सुख-संतोष न हुइयै मोय! न भैया, न् मैं तौ पूरी तरां सुखी-संतुष्ट हूँ। पै इत्तौ जरूर कंय चाउत कै सबसें ज्यादा सुख मोय ज़े दो सम्मान एवं पुरस्कार पाकें जरूर भओ तो –

१. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा १९८३

का श्री मैथिलीशरण गुप्त नामित पुरस्कार, जो १४ सितम्बर १९८७ के सम्मान समारोह में उनें रुपये ७०००/– तथा शाल–नारियल सहित मिलो हतो।

२. राजस्थान सरकार द्वारा 'बुद्धदेव' : लघु प्रबंध काव्य : और 'जातक कहानियाँ' पर बाल साहित्य–सम्मान।

प्रश्न — मोय ऐसो पतो चलो तो कै अपुन के व्यक्तित्व और कृतित्व पै सोऊ कछु शोध–प्रबन्ध लिखे गये हैं। का कात अपुन?

उत्तर — सन् १९७८ ई. की हिन्दी एम.ए. की परीक्षा के लानें श्री जयकृष्ण पाल नामक छात्र ने 'वासुदेव गोस्वामी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत करो तो जी के कारण ऊ छात्र खों परीक्षा में अच्छी श्रेणी में सफलता मिली हती। जुलाई १९९१ ई. में मोरी पन्तिन (पौत्री) कुमारी गीता गोस्वामी ने जीवाजी विश्वविद्यालय में ही एक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करो तो जी के शीर्षक हतो 'दतिया जिले के अन्य समकालीन साहित्यकार और वासुदेव गोस्वामी'

प्रश्न — अन्य कौनऊ बात जौन रै गई होय?

उत्तर — हओ (पुनश्च) उत्तर प्रदेश शासन की संगीत नाटक अकादमी ने अपनी एक पुस्तक 'चन्दन चौक' के लानें एक लेख 'बुन्देली के लोक गीत' विषय पर लिखवाओ तो। ऊ ग्रंथ में आज उत्तरप्रदेश की आठ बोलियों पर आठ अध्याय हैं। सन् १९४२ ई. सें मैं 'गोस्वामी होम्यो सेवालय' चला रओ हों। कछु दिनन तौ हम औषधि निःशुल्क बांटत रए। ८–१० बरसन सें औषधि कौ मूल्य मात्र लेत। परामर्श की फीस नैकऊ नई लेत। 'गणित' सम्बन्धी पुस्तक 'दशमिक वेतन तालिका' हिन्दी तथा अंग्रेजी में है। कण्ट्रोलर तथा आडीटर जनरल ने ई किताब की खूबई सराहना करी ती औ ई के बारे में एक परिपत्र प्रसारित करो हतो, जिये देश–देशांतरों में भी भेजो गओ। फल जौ भओ कै जा पुस्तक विदेशों में भी खूब प्रचारित भई। काए सें कै ई में वेतन–विषयक हिसाब–किताब जिस आशुगणक सें करो जात है वा मोरी स्वयं की बनाई नवीन वैज्ञानिक प्रणाली आय।

प्रश्न — कौनऊ संदेश, जो अपुन नवलेखकन खों देंय चाऊत होंय?

उत्तर — नवलेखकन तौ स्वयं काऊ सें कौनऊ संदेस चाउतई नैंयां, फिर जबरन कछू कय तौ बासें होने का है। बैसे सीदी बात तौ जौ है कै जौन विधा में रचना करने कौ विचार बनै वा विधा के जाने–मानें विद्वानन कौ साहित्य पैलें कछू पढ़ो–समझौ, फिर अभ्यास करौ और छपावे में उतावली न बरतौ। कछू दिनां पीछें अपनी रचना स्वयं देखौ तौ तुम खुद बामें अच्छौ संसोधन कर लैहौ।

अन्त में उनने मोय लिखौ आपके पत्र के उत्तर में बुन्देली लिखें चाउत ते, पै अभ्यास–व्यवहार तौ कछू है नईं सो कैऊ जांगा भूलत गये कै बुन्देली में लिखनें है। सो अब आपई जां जैसी जरूरत होय, संवारत रइयो। किरपा तौ आपकी हैई।

आपकौ और सबकौ

हस्ता०–वासुदेव गोस्वामी

सुप्रसिद्ध कवि, समालोचक, निबंधकार, अनुवादक और श्रेष्ठ प्रशासक रहे स्वर्गीय वासुदेव गोस्वामी के विद्या, विनय, विवेक भरी वाणी की गरिमा तौ ई पाती में लिखी अंतिम लकीरन में साफ झलक रई। उनको समग्र बुन्देली साहित्य सराहनीय और शिक्षाप्रद बन पड़ो है, जीकी जितनी प्रशंसा करी जाय थोरी है। उनके बारे में चन्द विद्वानों और पत्र–पत्रिकाओं की राय अवलोकनीय है–

१. 'भक्त कवि व्यास जी' — 'भक्त कवि व्यास जी' की समस्त वाणी आपने प्रकाशित की यह निःसंशय एक लोकोपयोगी काम आपने किया है। — विनोबा भावे।

२. कनोपनिषद (पद्यानुवाद सहित) — अनुवाद की पदावली अत्यंत ऋजु, स्फीत और मधुर है। — डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

३. उड़ते छीटें (हास्य–व्यंग्य कविता संकलन) — गोस्वामी जी हास्य–रस के सिद्धहस्त कवि हैं। उनका हास्य शिष्ट और सुसंस्कृत है।

४. बुद्धदेव — बुद्ध देव एक लघु प्रबंध काव्य है, जिसमें महात्मा बुद्ध की जीवनी कविता वर्णित की गई है। सभी के लिए शिक्षाप्रद और उपयोगी है। — जीवन साहित्य, नई दिल्ली

५. दशमिक वेतन तालिका — (१) तथ्यों का संकलन और लेखनशैली दोनों श्लाघनीय हैं। — डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल (२) सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि एकाउन्ट्स के बालुकामय रेगिस्तान में आप यह काव्योपवन लगा किस तरह सके हैं। — बनारसी दास चतुर्वेदी

— मऊरानीपुर, झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देली चौकड़ियां

– एल.एम. चौरसिया

खेती नगरवार जो करियो, तौ मोरां कर लइयो।
ओद सूख न जाय खेत की, इतनौ देखें रइयो।
ओद गयें दानों न उगहै, कैसउ नोनों बइयो।
होय पछारी तौ बैबे कौ, मन न कबहुँ बनइयो।

भइया है भारी हैरानी, सूखी जात किसानी।
जबसैं पंप लगाऔ तब सें, छोड़ी रीत पुरानी।
डोंड़ी, रांट, रमइया, तरसा, छापे बने कहानी।
सात दिना सैं बिजली नइयाँ, कैसे दइये पानी।।

— सीताराम कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

लोक जीवन का आधार है लोक कथायें

- सुधा रावत 'क्षमा'

लोक साहित्य की यात्रा अनंत की यात्रा है। इसका कोई पार नहीं है और सुबिधा की बात यह कि यह यात्रा अपने स्वयं के घर–आँगन से प्रारम्भ होती है। सच्चा लोक साहित्य पुस्तकों में नहीं लोक मानस के कण्ठों में विद्यमान है। यह जिह्वा पर विराजमान है और यही कारण है कि लोक बोलियों में जो चुटीलापन है जो कोमल आकर्षण हैं वह खड़ी बोली या दूसरी भाषाओं में नहीं है। भाषा की लटक मुहावरें–कहावतों का चलन बात–बात पर किस्सा कहानियों का प्रचलन यही सब तो विशेषता है लोक साहित्य की। जो मौखिक या वाचिक परम्परा के क्षेत्र विशेष की पहचान कराता है। लोक जन जीवन का सही परिचय लोक साहित्य से ही मिलता है फिर चाहे वह लोकगीतों के माध्यम से हो मुहावरे–कहावतों अथवा किस्सा कहानियों या लोक कथाओं के माध्यम से।



लोक संस्कृति में लोक कथायें लोक जन–जीवन का आधार रहीं है। इनमें जीवन के हर पहलू हर रंग को विस्तार देने की पूर्ण क्षमता है। हर गाँव–गली, चौपाल, खेत, और घरों के द्वारों पर संध्या से लेकर देर रात तक लोग आग तापते हुये अथवा हवा खाते हुये (मौसम के हिसाब से) इन लोक कथाओं का आनंद लेते हैं और सुसंस्कार ग्रहण करते थे। लोक कथा कहना या सुनना मानो अतीत से साक्षात्कार करना है।

बुन्देलखण्ड में लोककथाओं का बहुत प्रचलन है। यहां गांव के हर मुहल्ले में दो–तीन लोग ऐसे अवश्य होते हैं जिन्हें ये कथायें कहने में महारत हासिल होती है। हर कोई लोककथा नहीं सुना सकता और सुनाये भी तो वो आनन्द नहीं आता जैसे हमारे मुहल्ले में रजन फुआ जो डूब कर कथा सुनाती थी वैसी दूसरा कोई नहीं सुना पाता था। उनके इतना कहते ही ऐसें–ऐसें एक हते राजा – हम लोग साँसों को रोक कर आश्चर्यचकित हो बस उनके चेहरे के हाव–भाव देखते थे।

अधिकांश लोककथाओं में राजा–रानी, राजकुमार–राजकुमारी को माध्यम बनाकर न्याय–अन्याय तीज–त्योहार, खेल, कूटनीति, लोक कलाओं आदि का बहुत ही सजीव और मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही राक्षस–राक्षसनियों के कारनामों को दर्शाते हुये अन्त में एक बहादुर राजकुमार द्वारा उसका अन्त करवा कर बुराई पर अच्छाई की विजय का वर्णन करतीं ये लोक कथायें बाल–मन पर नैतिक और व्यवहारिकता की छाप छोड़ती हैं। दूसरी ओर श्री राम–सीता, श्री कृष्ण–राधा, श्री कृष्ण–गौरा, पाण्डव–कौरव, आदि–आदि धार्मिक पात्रों को लेकर अनेक धार्मिक ग्रन्थों, वेद पुराणों के कथानकों पर आधारित लोक कथायें भी लोक जीवन में प्रचलित हैं। जिनका उद्देश्य प्रत्येक वर्ग के लोगों को अपने–धर्म, धार्मिक ग्रन्थों और देवी–देवताओं के बारे में सही जानकारी प्रदान करना है।

तीसरा पक्ष है पशु पक्षियों को मुख्य पात्र बना कर सुनाई जाने वाली लोक कथायें। इनमें लड़ईया दाऊ जू, बंदरा मम्मा, हाँती कक्का, मगर मम्मा, लुखरो काकी जैसी अनेक मनोरंजक कहानियाँ हैं जिन्हें सुनकर लोग लोटपोट तो होते ही हैं, साथ ही शिक्षा और प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं। इसी क्रम में तोता–मैना, कौआ, गौरइया, गल–गल, कोयल आदि पक्षी मात्र भी अपने मजेदार कारनामों से बच्चों में सुसंस्कार और सभ्यता के बीजारोपण करते हैं और तो और बाल लोक कथाओं में तो काठ का घोड़ा, मिट्टी का हाथी सोने की राज कुमारी जैसे जड़ पात्र भी चलते, बोलते हैं।

उड़न खटोला में बैठकर राजकुमार देश–विदेश की यात्रा करने निकल पड़ता है। और कई बार तो उसी उड़न खटोले पर बैठ कर वह दूर देश में राक्षस द्वारा कैद की गई राज कुमारी के पास भी पहुँच जाता है और राक्षस को मारकर राजकुमारी को वापस अपने देश पहुँचाता है। और इसी तरह परी या नागरानी बच्चों और दीन दुखियों के दु:ख दूर करने के लिये जादू की छड़ी घुमाकर चमत्कार कर देती है। और मनचाही वस्तु प्रदान करती है। यह चमत्कार सिर्फ बाल कथाओं में ही नहीं होते वरन् महिलाओं द्वारा कही गई अनेक कथायें भी ऐसे चमत्कारों से भरी

हुई होती है। बांड़े भैया जैसी कहानियां इसी क्रम में आती है। बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में तो हर दिन तीज त्यौहार है। यहाँ पूरनमासी से अमावस्या तक और अमावस्या से पूरनमासी तक, हर तिथि एक त्यौहार है, एक पर्व है और हर पर्व की एक कथा है। इसके अलावा बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में कुछ लोक देवी देवता भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनमें दशारानी बहुत प्रसिद्ध देती है। इनके व्रत का दसवें दिन पूजन होता है अत: दस दिन तक रोज कथायें होती हैं इस कारण सिर्फ दशारानी की ही अनेक लोक कथायें है। इन लोक कथाओं और व्रत उपवासों से जुड़ी अन्य लोक कथाओं में लोक जीवन का रहन–सहन रीति–नीति, संस्कृति संस्कार, परम्परायें और लोक व्यवहार सब कुछ प्रतिबिम्बित होता है। इनके अतीत में झाँककर हम धर्म, समाज, संस्कृति और संस्कारों को ग्रहण करते हुये विकास और सभ्यता की ओर अग्रसर हों और अपनी सामाजिक परम्पराओं से खुद को जोड़े रहें तो मेरा दावा है कि पाश्चात्य सभ्यता का हमला भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा।

बुन्देलखण्ड की नारी के सुसंस्कारों के पीछे यही लोक कथायें होती हैं। हर तीज त्योहार, व्रत उपवास से जुड़ी कथायें जीवनपथ में पग–पग पर उनका मार्ग दर्शन करती हैं तथा कठिन समय में बड़ी से बड़ी मुसीबत व समस्याओं से निपटने का सम्बल प्रदान करती हैं। ये लोक कथायें ही हैं जो अनेक जीवनोपयोगी रहस्य और समाधान अपने आप में छुपाये हुये हैं। जिन्हें यथा समय बार–बार दुहरा कर महिलायें इनसे ज्ञान प्राप्त करती हैं। इन लोक कथाओं के माध्यम से ही रिश्तों के महत्व को समझा जा सकता है। संवेदनहीन मनुष्य को भी संवेदनशील बनाती है ये लोक कथायें। अकर्मण्य को कर्मठ बनाना और कर्तव्यहीन को कर्तव्यबोध कराना भी इन लोक कथाओं का उद्देश्य है।

यदि हमें अपना स्वस्थ समाज बनाना है। हिंसा, अपराध, हत्या, स्वार्थ और पतन के गर्त से भावी पीढ़ी को बचाना हैं तो लोक संस्कारों को अपनाना होगा। हम अपनी जड़ों से कट कर अभी पनप नहीं सकते। लोक साहित्य इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि हम लोक कथाओं को अपने जीवन में महत्व दें और उनका प्रचलन पुन: प्रारम्भ कर सकें तो यह एक सार्थक पहल होगी। लोक साहित्य ऐसा मरहम है जो समाज में फैली विकृतियों और भयंकर रोगों से नई पीढ़ी को बचा सकता है। इस दिशा में हमें थोड़ा सा प्रयास करना होगा और लोक साहित्य के प्रति भावी पीढ़ी की अभिरुचि बढ़ाये उन्हें लोक साहित्य से परिचित करायें तो उनकी बहुत सी समस्याओं के समाधान चुटकी बजाते ही हो जायेंगे।

— एफ–७, गीत बंगले फेस–।।।,
दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

बुन्देली कविता —

गांव की लूटमार

– जगदीश्वर

साउकारन के मजा खूब हैं, दीन तौ भूंकन मर रये।
सालन से जे उनके घर बँधुआ मज़दूरी कर रये।
चुका न पायौ ब्याज मूर कौ, उमर बीत गइ दद्दा की,
समा–फिकार, कोदों–कुटकी की रोटी खाबें अद्दा की।
फटौ–पुरानौ अद्दा पैरें, थिगरा लगो कुचैलो मैलो,
बड़े ब्याज पै व्याज चुका न पा रए देखौ जे पैलां।
का कहावत है आजादी इनखों अबै पतौ तैंया,
बने बैल–से जे कोलू के, घर की जनी बनी हैं गैंया,
अद पेटां रै रै जाबें जे पानी पी कें पर्रय, साउकरान ....।।

खून पसीना कोउ बढ़ा रओ, कोउ खा रओ सारे कों सारौ,
कोउ सरमारदार मुठी भर, पा रओ है सारे कौ सारौ,
उन्ना नैंया फिरें उगारे, हाड़ कड़े पछता रओ कोऊ,
बड़ी तोंद गद्दन पै धर कें, पाद–पाद गर्रा रओ कोऊ।
कोऊ खा रओ हलुआ–पूड़ी, लचका खों ललचारओ कौऊ।
मालिक बन कें बैठ महल में कुलन सौ चिल्ला रओ कोऊ।
लम्बरदार गरीबन की छाती पै दार–सी दर्रय, साउकरान ....।।

दिन भर कठिन काम करने तऊ रूखी रोटी खाबें
सोन चिरैया के रहवासी काली रात बितावें।
कुत्ता धांई कुन्ना रय हैं तन पै नैंया उन्ना,
पैरें फिरत विदेशी कपड़ा, धन्ना सेठन के मुन्ना।
एक कुतांऊ महल खड़ो है, एक कुतांउ मड़ैया,
नैया डूबी है गरीब की नैंया कोउ खिवैया,
आंचर सूको दूद, देइ आंखन हो अंसुआ झर रये, साउकरान ....।।

पूंजीपती सर्वहारा कौ खून चूंस भुस भर रओ,
झुग्गी और झोपड़ी के संग, श्रमिक बेचारौ मर रओ।
सदियन के सुख भोग रये हैं इनके मोड़ा मोड़ी,
इतै गरीबन की गांठन में, पूज न पाई कौड़ी।
धन औ धरती कौ जग में होबै समान बटवारौ,
हम सोई ई में जनमें हैं हक है कछू हमारौ।
हम भूंकन मर रये जे भैंसा, चारौ सबकौ चर्रय। साउकरान ....।।

कितै समाजवाद की बातें, कीतै विनोबा कौ सर्वोदय,
का गांधी बाबा कौ भारत, कितै है सुख कौ सूर्योदय।
खो गई तन की कितउ लंगोटी, सेठन कौ सुख बढ़ रओ।
इनके सुख कौ सूरज निश दिन आसमान पै चढ़ रओ।
हमने सुख की भोर न देखी, देखो अधिक अंधेरौ,
वन के फिरदौसी के फशिव बना न पाओ बसेरौ,
अपने भाग बिगर रये, उनके ज्यादा और सबर रये। साउकरान ....।।

— नया पन्ना नाका, छतरपुर (म.प्र.)

ओरछा में रामनवमीं

- डॉ. ब्रजेश कुमार द्विवेदी

चैत्र शुक्ल पक्ष (रामनवमी) का दिन ओरछा के इतिहास में स्वर्णिम दिन है, परम यशस्वी घटना है और अनमोल क्षणों की उद्भावना है। यह दिन भक्त की भगीरथ यात्रा की विजय पताका है। आज के एक–एक क्षण भक्ति–भावना से अनुप्रमाणित हैं। ओरछा में तो जन–सैलाव उमड़ पड़ता है। नंगे–पैर, भींगा तन और मन, खुले–बिखरे बाल हाथ में लोटा और फूल लिए बुन्देली में लोकभजन गाते–नाचते, प्रेम में मगन रामराजा की जय बोलते दूर–दूर से आए नर–नारी बेतवा में स्नान कर रामराजा के दर्शन के लिए जाते हैं। यहाँ कोई किसी की जात–पाँत नहीं पूँछता। किसी से कुछ नहीं छिपाता। मन्दिर में दहलीज की धूल सिर पर लगाता है। घंटा बजा अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर आतुर व्याकुल चौकस 'जगमोहन' में जाकर खड़ा हो जाता है। हाँथ जोड़े। सिर झुकाए। पुष्प और प्रसाद अर्पित कर बहुमूल्य मणिजड़ित चरणों के दर्शन पा धन्य हो जाता है। बार–बार दर्शन करता है, मन नहीं भरता। चरणामृत की एक–एक बूँद में तो मानों तीन लोक की सम्पदा समायी है। कहीं हाँथ से उसकी एक बूँद भी दहलकने न पावे। इन्हीं बूँदों में मानो जीवन का स्वप्न संकल्प सिमट आया है।

राम की ध्वनि हो गूँजता समूचा ओरछा नगर तीर्थ लगता है। ओरछा की धूल पतित पावनी प्रतीत होती है। वेतवा की धारा में तो मानों त्रिवेणी की तरलता और पावनता है। रामराजा का मंदिर आंगन, चौक का विस्तार आदि के अतिरिक्त जहाँ तक नजर जाती है निर्निमेष मंदिर को निहारते महल दिखाई देते हैं। इन्हीं महलों में रहते थे वे भक्त जिनकी गहन साधना, तप और त्याग में, अपने निजत्व में, राज्य की जनता की भोली सूरत और ओरछा की माटी की साँवली मूरत बसी थी। इन छत्रप भक्तों ने अपने बड़प्पन को गम्भीरता से साधा था और संस्कृति की गरिमा को जाना था। सर्वत्र संस्कृति को मान दिया था। इन महलों और मन्दिरों का रिश्ता बहुत सघन है पुराना है। भक्ति की इसी साधना और तल्लीनता के साक्षी हैं – रामराजा–मन्दिर और चतुर्भुज मंदिर। हिमालय से चमकते रूपहले कलश में इस धरती की संस्कृति और इतिहास की महागाथा छिपी है। भक्ति का आख्यान अंकित है और भूगोल की हरित महत्ता को सहेजे चार दीवारी, तथा कल–कल बहती बेतवा की धार निरूपण करती है।

ओरछा की स्तुति महाराजा और महारानी की सराहना है, प्रशस्ति है। जो उनके राजनैतिक आग्रह का परिणाम नहीं, तप, साधना, संकल्प प्रखरता का शतसः सत्य बयान है। इनका व्यक्तित्व और कृतित्व एक आत्म–चिंतन है। सत्य का उद्घाटन है। इनके भक्ति की सघनता और घनत्व अद्वितीय है। भगीरथ की तरह। मनु और सतरूपा के तप की तरह। महाराज मधुकरशाह और महारानी कुंवरि गणेश ने ओरछा की जो छवि गढ़ी है, उसमें प्राण फूँके हैं – आज वही आत्म विस्मृति जन–जन में दिखायी देती है। यह आत्म–मुग्धता ही नहीं जागृत विवेक का प्रभुत्व है। यह भारतीय जन को भाईचारा, सुख और संतोष का अलौकिक संदेश भी है। ओरछा के विकास की कहानी मानवीय विश्वास की कहानी है। जिसकी इबारत यहाँ के मन्दिरों, महलों और खन्डहरों में लिखी है। इनके आत्मिक बल और संयम ने राम जन्मोत्सव को ओरछा में राजतिलकोत्सव के रूप में परिणत कर दिया है। रामनवमी का उत्सव ओरछा के इतिहास का बहुमूल्य और महान उपलब्धियों का क्षण है। आज की परम पावन बेला में ही –

"मधुकरशाह महाराज की रानी कुँवर गनेश।
अवधपुरी से ओरछा ल्याई अवध नरेश।।"

इसी लीला भूमि में आज ही कवीन्द्र केशव जन्मे थे। जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों की सर्जना कर ओरछा के साहित्यिक और साँस्कृतिक गौरव को बढ़ाया। हिन्दी साहित्य को एक नया दार्शनिक आधार दिया। सामान्य जनों से विशिष्ट जनों का संवाद स्थापित किया। तात्पर्य यह कि ओरछा में रामनवमीं के दिन जिस प्रेम का, उदारता और विश्वास का सार्वजनिक भाव आकार लिया उसमें राजा–प्रजा गुरु शिष्य सभी की खुली हिस्सेदारी थी। ओरछा में इस पूरे विमर्श पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि ओरछा में आत्मीयता, सत्य, ईमानदारी और भक्ति के निहितार्थ हमेशा शामिल हैं। राम जन्मोत्सव, ओरछा का जन्मोत्सव भी है। जिसकी नींव महारानी कुँवरि गणेश ने रखी थी।

महारानी आत्म–समर्पित भावनाओं और जीवसत्ता के अस्तित्व को श्री राम के चरणों में विलीन कर पुलकित थीं। राजकीय अहम् को विसर्जित कर श्रीराम का सम्पूर्णता का ध्यान उनका चरम साध्य था। भक्ति–भावना की उमड़ती जलराशि में साम्राज्ञी का मान, जन–कल्याण, नारीत्व की सरसता, सतीत्व की हार्दिकता आदि मानवीय मूल्य रत्न की भाँति प्रदीप्त होते हैं।

कहते हैं कि एक दिन मधुकर शाह और गणेश कुँवरि परस्पर कृष्ण और राम की भक्ति और भक्त–वत्सलता पर चर्चा कर रहे थे। भक्ति की विविध दशाओं, परिणति, और प्रभाव चर्चा

के मुख्य विषय थे। सत्व और सहज दो केन्द्र बिन्दु थे दोनों की भक्ति–भावना के। एक भाव–भूमि में दोनों के चरित्र अलग थे। दोनों भक्तों का अपने प्रभु में सहज समर्पण था। मधुकरशाह के पास अपना पुष्ट दार्शनिक मत था तो गणेश कुँवरि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आश्रित थीं। महाराज गोपी भाव में जिस भाव साधना में संलग्न थे, उसके वृहत्तर सौन्दर्य का दर्शन उन्होंने महारानी को कराया था और महारानी को राम के दर्शन कराने की चुनौती दी थी। कुँवरि गणेश को महाराज की इस चुनौती में अपनी तथा पूरे समाज की छवि की उज्जवलता प्रतिभाषित होने लगी। महारानी महाराज को राम का दर्शन कराने का संकल्प पूर्ण करने हेतु तत्पर हो गई।

इस प्रकार महारानी और महाराज भक्ति–भावना के परिप्रेक्ष्य में एक–दूसरे से भिन्न थे। राम और कृष्ण की भक्त–वत्सलता दाँव पर थी। मानों दोनों परस्पर आमने–सामने हैं। पर, यहाँ और कुछ नहीं, दोनों में भक्ति और जीवन के सन्निकट होने का दृढ़ संकल्प ही था। दोनों एक–दूसरे के विरोधी नहीं पूरक बन कर जनता का कल्याण चाहते थे। ओरछा को तीर्थ बना रहे थे। महारानी दूरी की हर परिभाषा को दूर कर राम को मूर्त रूप में पाकर महाराज की चुनौती का उत्तर देना चाहती थी। मनोज्ञ राम के दर्शन की जिद ने महारानी की साधना को सम्बल दिया। वो अयोध्या चली गईं। महारानी की अयोध्या यात्रा भागीरथ की गंगा अवतरण की यात्रा थी। वह वेदना की विशद्ता और रागात्मकता की याचना थी जिसे वे राम के चरणों में बैठकर पाना चाहती थीं। राजपथ छोड़ कर लोकपथ में बढ़ने की यात्रा थी। राजा को रंग के सुख–दुःख पहचानने की यात्रा थी। शाश्वत प्रेम और सत्य के रहस्य को उद्घाटित करने की कल्पना थी। भगवान के ओरछा गमन की शर्तों पर दृष्टि डालें तो इसकी पुष्टि होती है।

पति की चुनौती स्वीकार कर महारानी अयोध्या प्रवास पर चली गयीं। भगवान राम के दर्शन की लालसा बढ़ती गई। सतरूपा की भाँति साधना की प्रबलता बढ़ती गई। भक्ति की दिव्य महक हृदय में गहरे उतरती गई। महारानी की साधना और संकल्प अब आए दिन उनके धैर्य की परीक्षा लेने लगी। संकल्प और विकलता का द्वन्द्व महारानी की भावना को झंझा की तरह झकझोर दिया; वे एक दिन सरयू में कूद गईं। सरयू के पावन नीर में अलौकिक और अदृश्य ईश्वर ने अपने भक्त के मान को रखने के लिए चित्र बना रहा था, शिल्प के सौन्दर्य में अपनी कमनीयता उतार रहा था, अवतार का अर्थ भर कर। जिसे श्रुतियों ने, स्मृतियों और पुराणों ने गाया है। गणेश कुँवरि के सरयू प्रवेश होते ही यह सगुणात्मक सौन्दर्य रामराजा की मूर्ति के रूप में कुँवरि गणेश की गोद में थी। इस अनन्तछवि को पाकर वे स्तब्ध थीं। रोम–रोम पुलकित थे। स्तुति की कोमल तथात्मकता आँसुओं से प्रकट हो भगवान की प्राप्त छवि का अभिषेक कर रही थी। नाना विध कामनाओं से मुक्त भक्त के विजय की काँति जो भक्त होने की चित्ति से अनभिज्ञ थी प्रकट हो रही थी। गोद में भगवान राम को लेकर बाहर आ गईं। भगीरथ की भाँति सरयू से प्राप्त यह मूर्ति आत्मा और अनादि के सम्बन्धों का मूर्तिकरण था। जिसे ओरछा में प्रतिष्ठित करने के पूर्व स्वयं भगवान की शर्तें थीं।

१. आप मुझे अयोध्या से ओरछा पैदल लेकर चलेंगी।
२. मात्र पुष्य नक्षत्र में ही लेकर चलेंगी।
३. एक बार जहां स्थापित कर देंगी वहाँ से उठेंगी नहीं।
४. राज्य उजड़ जायेगा।

महारानी ने पूरी शर्तें सहर्ष स्वीकार कर लीं। पुष्य नक्षत्र में पैदल चलकर अयोध्या से भगवान को चैत्र शुक्ल–पक्ष नवमी भौमवार सम्वत् १६३१ में ओरछा आईं और भगवान की मूर्ति को रनिवास में प्रष्ठित कराया। रामराजा मन्दिर में लेख है –

"तुंगारैंन प्रसिद्ध है नीर भरे भरपूर,
वेत्रवती गंगा बहें पातक हरें जरूर।
राजा अवध नरेश का सिंहासन दरवार
सह समाज विराजें प्रभु लिए ढाल तलवार।
राजमहल से रथ पीनस चढ़ गईं देश विदेश
व्याकुल हो विनती करतीं मेटहु कठिन कलेश।
राम विरह वस सरयू जल में कूद पड़ी कस केस
कूदत नीर उछल ओली में प्रगट भए अवधेश।
ले गोदी बाहर जल आईं सुख कह सकि न शेष
पुष्य नक्षत्र में चलीं ओड़छा धर सन्तन को वेष।।"

भगवान जिस दिन महारानी की गोद में आए थे उसी दिन से ओरछा से उत्सव हो रहे थे। रामनवमीं के दिन जब भगवान का नगर आगमन हुआ महाराज मधुकरशाह के उल्लास का तो पारावार नहीं था। दर्शन की पिपासा में पल–पल युग की भाँति व्यतीत हो रहे थे। उल्लास की असीमता वर्णनातीत है। तुलसी के शब्दों में –

'गिरा अनयन नयन बिनु वानी'

रामनवमी के पावन पर्व का स्वागत है। रामजन्मोत्सव, केशव जयन्ती समारोह और भगवान रामराजा के ओरछा आगमन के सौन्दर्य और गरिमा को कहा नहीं जा सकता, अनुभव गम्य है। भक्ति की ज्ञान की और कर्म की अनाहत अबाधित गंगा की धारा में हम सब स्नान करते हैं।

– सर्वेक्षण अधिकारी,
महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसंधान केन्द्र,
अवधेश प्रताप सिंह वि.वि., रीवा

बुन्देलखण्ड में प्रवासी जातियों से सांस्कृतिक परिवर्तन

- राधाकृष्ण बुन्देली

बुन्देलखण्ड का सीमांकन विविध विद्वानों ने अलग—अलग दृष्टिकोण से किया है, किन्तु मुख्य रूप से चार सरिताओं से आवृत्त परिक्षेत्र को बुन्देलखण्ड माना गया है। यथा —

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस।।
उत्तर समथल भूमि गंग जमुना सु—बहति है।
प्राची दिस कैमूर, सोन, कासी सु—लसति है।।
दक्खिन रेवा विंध्याचल तन सीतल करनी।
पच्छिम में चंबल सोहति मनहरनी।।
तिनमधि राजे गिरि, वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्तिस्थल बुन्देलन कौ बुन्देलखण्ड वार।। [१]

इस सांस्कृतिक क्षेत्र का क्षेत्रफल ४८३०० वर्ग मील है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ३ करोड़ ५० लाख है। वर्तमान समय में इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के २७ जनपद आते हैं तथा प्राचीन काल में यह क्षेत्र विभिन्न नामों से पुकारा गया। जब से बुन्देलों का शासन यहां स्थापित हुआ, उस समय से यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात हुआ।

इस सांस्कृतिक प्रदेश में अनेक प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति चिह्न उपलब्ध होते हैं। जिनसे यहाँ की जानकारी उपलब्ध हो जाती है। सबसे प्राचीन स्मृति चिन्हों में शैल चित्र हैं। जो बुन्देलखण्ड के विविध स्थलों में उपलब्ध होते हैं। विंध्याचल की पर्वन श्रेणियों में अनेक चित्र गुफाओं के अन्दर और बाहर उपलब्ध हुए हैं। इन चित्रों में विभिन्न प्रकार के जानवर, पशु, पक्षी और मनुष्यों को विविध रूपों में दर्शाया गया है। बांदा जनपद एवं चित्रकूट मण्डल के विविध ग्रामों में इस प्रकार के चित्र उपलब्ध हुए हैं। जिनसे तद्‌युगीन मनुष्यों के जीवन के सन्दर्भ में व्यापक प्रकाश पड़ता है। इन चित्रों को बनाने वाले आदिवासी लोग थे जिनका यहाँ युगों से निवास था तथा इन चित्रों का काल ईसा पूर्व से लेकर ईसा के दसवीं शताब्दी तक माना जा सकता है तथा इन चित्रों को मानव—विकास के इतिहास से जोड़ा जा सकता है। ज्यादातर लोगों का यह मानना है कि ये शैल चित्र प्रस्तर काल के हैं। [२]

प्राचीन काल में यहाँ अनेक जातियां निवास करतीं हैं। ये जातियाँ विविध नामों से पुकारी जाती थीं। इन्हें कोल—भील, किरात, शबर, गौंड, बैगा आदि विविध नामों से पुकारा जाता था तथा ये लोग अपने आवास—स्थल जंगलों के मध्य में और पर्वतीय क्षेत्र में बनाते थें तथा प्राकृतिक संसाधनों से अपना जीवन—यापन करते थे। [३] बहुत से विद्वान यहां के निवासियों को जातुधान और राक्षस आदि शब्दों से पुकारते थे। वेदों में भी इनका यही नाम आया है ये लोग श्याम वर्ण के थे। [४] आर्यों से पूर्व यहाँ द्रविड़ और जंगली जातियाँ निवास करतीं थीं। बाल्मीकि रामायण में इनका उल्लेख मिलता है। इन्हें, रक्षस, शबर, कोल—भील, पुलिन्द, मुण्ड और द्रविड़ नाम से संबोधित किया गया है। [५]

''अज्ञाकरान् पीलिनिवासिनोऽयं चकार भिल्लांछबरान् पुलिन्दान्''

इनका रंग काला, कद ठिगना, नाक चौड़ी, बाल घने और काले होते थे। जब तक अन्य विदेशी जातियाँ बुन्देलखण्ड में प्रवेश नहीं कर पायीं उस समय तक इनकी संस्कृति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

कालान्तर में यहाँ आर्यों का आगमन हुआ। इनकी वेश—भूषा यहाँ के मौलिक निवासियों से भिन्न थी। आर्य लोग लम्बे आकर्षक आकृति, मुलायम, घुंघराले बाल, घनी मूंछे और दाढ़ी, नुकीली ऊँची नाक, लम्बा सिर और बड़ी—बड़ी आँखें उनकी विशेषताएं थीं, जो स्थानीय अर्द्धसभ्य जनों से भिन्न थीं। [६]

आर्यों की सभ्यता का यहाँ के मूल लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। ये लोग ४ वर्णों में विभाजित थे। ये वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र थे। इनके प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ वेद थे। ये लोग विविध देवताओं के उपासक थे तथा समय—समय पर अनेक प्रकार से यज्ञ किया करते थे। आर्यों का व्यापक प्रभाव अनार्यों पर पड़ा तथा अनार्य लोग आर्यों से पराजित होकर उनके आधीन चतुर्थ वर्ण में शामिल हो गए तथा अपने नाम के बाद दास आदि शब्द लगाने लगे।

पूरे बुन्देलखण्ड में आर्य और अनार्यों की संस्कृति का समन्वय होता रहा। आर्यों ने यहां के लोगों को व्यापक रूप से प्रभावित किया और अनार्यों ने आर्यों को भी अपनी संस्कृति में समाहित किया। इस प्रकार अनेक देवी—देवता जिन्हें आर्य लोग नहीं मानते थे, उन्हें भी आर्य लोग मानने लगे। वृक्ष—पूजा, ग्रामीण—देवताओं की पूजा इन्हीं के प्रभाव से प्रारम्भ हुयी तथा अन्य परिवर्तन सामाजिक—व्यवस्था और राजनीतिक—व्यवस्था में भी हुए, जो आज तक स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। [७] वस्त्र, केश—विन्यास, वेश—भूषा, आचरण आदि का प्रभाव व्यापक रूप से यहां के मौलिक निवासियों पर पड़ा। जिनके स्मृति चिन्ह विविध स्थलों में उपलब्ध होते हैं। प्राचीन बुन्देलखण्ड में अनेक राजवंश निवास करते थे। जिनके शासन काल में शक वंशीय विदेशी आक्रमणकारियों का आक्रमण हुआ किन्तु बुन्देलखण्ड में इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तत्पश्चात् यहाँ कुषाण वंशीय

राजाओं का आक्रमण हुआ। ये लोग भी विदेशी थे। इनका प्रभाव पश्चिम बुन्देलखण्ड में पड़ा। इन राजाओं में कनिष्क, हविष्क और वासुदेव नाम के प्रसिद्ध राजा थे। इन्होंने बुन्देलखण्ड को प्रभावित किया किन्तु ये लोग बुन्देलखण्ड की संस्कृति में ऐसे घुल–मिल गए कि इनकी पृथक पहचान करना मुश्किल था।[८]

जब यहाँ गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुयी उसके कुछ समय बाद यहाँ हूण राजाओं के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। ये आक्रमण स्कन्द गुप्त के शासन काल में हुए। स्कन्द गुप्त ने हूणों को रोकने का प्रयास किया किन्तु बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों में हूणों का प्रभाव और अधिकार हो गया था। इस वंश का सबसे शक्तिशाली नरेश 'तोरमाण' था। अनेक स्मृति चिन्ह इसके बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते हैं। इस वंश का दूसरा नरेश मिहिरकुल था। इसके अभिलेख मंडसर और ग्वालियर में उपलब्ध हुए हैं। इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि इसे यशोधर्मन ने पराजित किया था। हूणों का शासन यहाँ ४० वर्ष रहा।

चन्देलों के शासनकाल में यहाँ तुर्क मुसलमानों के आक्रमण हुए। बुन्देलखण्ड में आक्रमण करने वाला पहला तुर्क मुसलमान 'महमूद गजनबी' था। उसका आक्रमण बुन्देलखण्ड में सन् १०१९ से लेकर १०२२ के मध्य हुआ। इसके आक्रमण से यहाँ के निवासी इस्लाम धर्म से परिचित हुए। इसके आक्रमण के दौरान यहां के निवासियों को बलात् मुसलमान बनाया गया तथा अनेक मन्दिरों को ध्वस्त करके उन्हें मस्जिद में परिणित कर दिया गया। अतः उस युग से ही यहाँ निवास करने वाले हिन्दू धर्मावलम्बी इस्लाम धर्म तथा उनके अनुकरणकर्ताओं से प्रभावित हुए तथा अनेक प्रकार के सांस्कृतिक परिवर्तन भाषा–वेशभूषा और धर्माचरण के सम्बन्ध में यहाँ हुए।

सन् १५२६ के पश्चात् मुगलों का आक्रमण भी बुन्देलखण्ड में हुआ। बाबर तथा उसके उत्तराधिकारियों ने बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्र को विजित किया और उसे जीता किन्तु तुर्कों और मुगलों में कोई फर्क नहीं था। बलात् धर्म परिवर्तन के कारण हिन्दू और मुसलमानों में दूरियाँ भी बढ़ी और नफरत की भावना पैदा हुयी। सन् १७३० में यहाँ मरहठों का आगमन हुआ तथा बुन्देलखण्ड के कुछ भागों में मरहठों ने शासन भी किया। इससे दक्षिण भारतीय संस्कृति से बुन्देलखण्ड परिचित हुआ।[९]

सन् १८०३–०४ में यहाँ अंग्रेजों का आगमन हुआ। ये लोग उस युग से सन् १९४७ तक किसी न किसी रूप में बराबर यहाँ रहे तथा इनकी सभ्यता का सर्वाधिक प्रभाव यहां के लोगों पर पड़ा तथा लोगों ने उनके धर्म, वेश–भूषा, शिक्षा–प्रणाली और उनकी भाषा को अपनाया। अंग्रेज भले ही बुन्देलखण्ड और भारत वर्ष से चले गए हों किन्तु हम अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा को सम्मान की दृष्टि से देखते है और उसे अपनाते हैं। यही कारण है कि समस्त भारत में अंग्रेजी सभ्यता का प्रचार–प्रसार अधिक है।[१०]

संदर्भ सूची –

१. दीवान प्रतिपाल सिंह, बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग), संस्करण १९३०, पृ. ६
२. Mitra, P., Pre-historic India, 1927, P.151
३. Kirit K. Shah, Ancient Bundelkhand, Gain Publishing House Delhi, 1987, P. 19
४. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् १९९०, पृ.२
५. बाल्मीकि रामायण, भाग–१, पृ. ३३४
६. कन्हैयालाल अग्रवाल, विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, संस्करण १९८७, पृ. १८२
७. Kirit K. Shah, Ancient Bundelkhand, Gain Publishing House Delhi, 1987, P. 107-120.
८. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् १९९० पृ. १७
९. पं. कविमणि कृष्णदास, बुन्देलखण्ड का इतिहास (तीसरा खण्ड) सन् १९७४ पृ. १८३–१९७
१०. डॉ. राजकुमार भाटिया, बुन्देलखण्ड समग्र (बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का प्रथम प्रवेश–लेख) १९९८, पृ. ३०

– विजय पुस्तक भण्डार, बाँदा (उ.प्र.)

बुन्देली कविता –

गीत

– डॉ. एस.बी.एल. पाण्डेय

प्यारी पुरवइया की गति मंथर हुई, अब तो पश्चिम से यहाँ आती हवायें।
वतन की माटी की सौंधी सी गमक, हैं नहीं मुमकिन कि उसको भूल जायें।।
लोरियाँ माँओं को अब आती नहीं, उनींदे बच्चों को अब कैसे सुलायें।
छन्द गीत गजल न अब भाये इन्हें, ओले ओले चोलियों की धुन बनायें।।
अब तो गुरुकुल और ऋषिकुल कम हुये, वेद पाठी से सुने कैसे ऋचायें।
वह कदम्ब व कूल कालिन्दी कहाँ, अब कहो कान्हा कहाँ वंशी बजायें।।
कामयाबी हर खुशी मिल जाये 'श्याम', बुजुर्गों की चलो तो लेकर दुआयें।
प्यारी पुरवइया की गति मंथर हुई, अब तो पश्चिम से यहाँ आती हवायें।।

– बड़ा बाजार, मऊरानीपुर (उ.प्र.)

व्यावहारिकता की कसौटी और बुन्देली साहित्य

- डॉ. सन्तोष भदौरिया
डॉ. निधि सिंह

भारत के मानचित्र में अंकित बुन्देली धरा अपनी अलग पहचान और अस्तित्व रखती है। बुन्देलखण्ड का अतीत उन्नतशील, समुज्जवल एवं गौरवशाली है। बुन्देली जनता ने समय–समय पर देश का गौरव बढ़ाया है। इस धरा ने शताब्दियों से भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा स्थापत्य, साहित्य और संगीत के क्षेत्र में अपनी मुकम्मल पहचान बनाई है। यह भारत का हृदय प्रदेश है इसका साहित्य एवं संस्कृति अतिप्राचीन है। यह सुदूर अतीत में किरात, पुलिंद एवं निषादों का क्षेत्र रहा है। वैदिक काल से बुन्देली के शासन काल तक दो हजार वर्षों में बुन्देलखण्ड में अनेक जातियों और राजवंशों ने शासन किया। सभी की सांस्कृतिक जातिगत एवं सामाजिक व्यवस्थाओं को व्यापक रूप से बुन्देलवासियों ने आत्मसात किया, साथ ही अपनी मौलिकता को कायम रखा।

'भारत माता ग्रामवासिनी' पंक्ति का चरितार्थ रूप हमें बुन्देली साहित्य और संस्कृति में प्राप्त होता हैं। बुन्देली साहित्य एवं लोक में मिट्टी की महक, खेत, खलिहान एवं किसान सभी अपनी पूरी ऊर्जा के साथ जीवंत हैं। किसान और प्रकृति का गहरा संबंध है। बुन्देली साहित्य प्रकृति और बुन्देली किसान के इस रिश्ते को अनुभव के आधार पर व्याख्यायित करता है। वह कागज की लेखी की बात न कर आँखन देखी कहता है। यह लोक का अनुभव सिद्ध ज्ञान हमें संपूर्ण बुन्देली साहित्य में परिलक्षित होता है। वस्तुतः बुन्देलखण्ड का जीवन संघर्ष का जीवन है, इसी संघर्ष के धरातल पर उनका अनुभव प्रमाणित रूप लेकर लोक साहित्य में प्रतिफलित होता है। अपने अपढ़ एवं कुपढ़ होने के बावजूद उनमें यथार्थ का तीखा बोध मिलता है। उनके संस्कार का स्वरूप जमीनी है। कृषि पर अवलंबित जनता प्रकृति का मनोविज्ञान समझती है। उनके अनुमान मौसम विज्ञानी की तरह खोखले सावित नहीं होते, उनकी भविष्यवाणी शत प्रतिशत के पार जाती है। उनकी परंपरा को अगर खगालें तो ऐसी अनेक लोकोक्तियां मिल लाएंगी जो कृषि विज्ञानी होने का पुख्ता प्रमाण पेश करती हैं।

बुन्देली लोक साहित्य में भड्डुरी का नाम आदर से लिया जाता है। किसान के लिए वह देवतुल्य हैं उनकी वाणी अनुभव की भट्टी में तपी है। वह वही कहते हैं जिसको उन्होंने अनुभव से जांचा–परखा है और यही अनुभव बुन्देलखण्ड के किसान का पत्रा है, जो किसान को सचेत करता है और आवाज देता है कि खेत चलो, खलिहान चलो। भड्डुरी के पवन ज्ञान को देखें, वे कहते हैं ''जो पै पवन पुरवैया, आवे, उपजे अन्न मेघ फिर लावै।'' और ''अग्नि कौन जो बहै समीरा, पूरे काल दुखद ये शरीरा।'' पूर्व वायु यदि पर्याप्त वर्षा और खाद्यान्न लाती है तो अग्नि कोण की हवा अकाल को न्यौतती है। ''दक्खिन बहे जल–थल अलमौरा, ताब समय जूझे बहुवीरा'' एवं ''तीरथ कौन बूंद ना परै, राजा पिरजा भूखन मरे।'' दक्षिणी पवन वर्षा के साथ युद्ध भी लाती है और दक्षिण–पश्चिम के मध्य की हवा अगर चलती है तो वर्षा होती है, मगर अकाल की प्रबल संभावना रहती है। सहज बुन्देली भाषा में व्यक्त यह व्यवहारिक ज्ञान आज भी बुन्देलखण्ड के किसान को राहत देता है साथ ही चिंता में भी डालता है।

लोक सर्जना की प्रतिपूर्ति भड्डुरी को बादलों के रंग, रूप, गंध की गजब पहचान है और किसान का बादलों से आत्मीय रिश्ता है। यह बादलों का गणित है जिसमें वह कहते हैं कि ''शुक्करवारी बदरिया रहै शनिचर छाय, ऐसे बोले भड्डुरी बिन बरसै नहीं जाय।'' अर्थ स्पष्ट है जो बादल शुक्रवार और शनिवार को आसमान में छाये रहते हैं वे बिना बरसे वापिस नहीं जाते। और इन पंक्तियों के आधार पर बुन्देलखण्ड का किसान अपनी तैयारी कर सकता है एवं आश्वस्त हो सकता है। ऋतु वर्णन में असाढ़–सावन–भादो माह की अलग महिमा है और इन महीनों में नक्षत्र अपना अलग प्रभाव रखते हैं। आद्रा, स्वाति, मघा एवं हस्ति ऐसे नक्षत्र हैं जो वर्षा ऋतु में अधिक मारक क्षमता रखते हैं। स्वाति नक्षत्र में जल अत्यधिक बरसता है और स्थिति यह होती है कि ''जौ कहूं बरसे स्वांत विसांत, चले न रांटा बजै न तात।'' न तो रांटा चलता है और तांत बजती है यानि रुई का धुनना और सूत कातना दोनों को विराम लग जाता है। गेहूँ कब ज्यादा पैदा होगा, इसका व्यवहारिक ज्ञान भड्डुरी को खूब हैं हस्ति नक्षत्र में पानी बरसता है तो गेहूँ की पैदावार बढ़ जातीहै – ''जो कऊं बरसै हाथी, गेहूं लग है धाती।'' माघ शुक्ल सप्तमी के बादल अपना अलग रंग रखते हैं। असाढ़ मास की वर्षा किसान को प्रसन्नचित करती है – ''माघ सप्तमी ऊजरी वादर मेघ करंत, तौ असाढ़ में भड्डुरी घना मेघ बरसंत।'' द्वारा इसको परखा जा सकता है। सावन मास की मार्ग कृष्ण अष्टमी भी समुचित वर्षा को दर्शाती हैं भड्डुरी स्वयं कहते हैं –

अगहन बदीं आठें घटा, बिज्जु समेती जोय।
तौ सावन बरसै भलां, साख कुसवाई होय।

भड्डुरी के यहां वर्षा की वैज्ञानिक समझ व्यवहारिकता की कसौटी पर मौजूद है और उसका उपयोग किसान बड़े आत्मविश्वास के साथ करता है। और देखिए असाढ़ माह में यदि सूर्य के पीछे

मंगल ग्रह की स्थिति बनती है तो वर्षा और उल्लास दोनों भरपूर प्राप्त होते हैं। "आगे रवि, पीछे चले मंगल जो आसाढ़, तौ बरसै अनमोल हो धरती उमगे बाढ़।" यह तो हुई सूर्य की बात, अब चन्द्र की महिमा देखिये। लोक कवि कहता है कि यदि आसाढ़ की कृष्ण अष्टमी को चन्द्रमा बादलों के मध्य दिखाई दे तो तीन महिने तक व्यापक वर्षा होती है यथा –

आसाढ़ मास अंधियारे–चंदा निकरै जल–धारी।
चंदा निकरे बादर फोर–तीन मास को वर्षा जोग।।

लोक कवि की प्रस्तुत पंक्तियाँ वर्षा ऋतु का व्यवहारिक ज्ञान प्रस्तुत करती है और बुन्देलखण्ड के किसान को इस बात का आसरा देती है कि भड्डुरी पर विश्वास कर अपनी खेती–वारी को उन्नत बनाया जा सकता है।

बुन्देली साहित्य का लोक अत्यंत समृद्ध है वहां दैनिक जीवन की परेशानियों के तोड़ मौजूद हैं। बात चाहे हारी–बीमारी की हो या ज्योतिष ज्ञान की सबका सरल–सहज जवाब हाजिर है। खान–पान की सतर्कता व्यक्ति को बलवान और निरोगी बनाती है। यह रहस्य बुन्देली लोक कवि जानता है तभी तो आत्मविश्वास से कहा है कि "साबन ब्यारी जब कऊँ कीजै, भादों ब्यारी नाव न लीजे" और 'कुवारं' के दो परख, जी जतन–जतन सौ राख' आगे कहते हैं – 'कातिक मास दिवारी, ढेलम, ढेल ब्यारी।' यानि सावन में कभी–कभी भादों में बिल्कुल नहीं, कुंवार माह में सतर्कता और कार्तिक में जो जमकर भोजन करेगा वह तमाम शारीरिक व्याधियों से मुक्त रह सकता है। बात, कफ, चित्त ये तीनों शरीर के नियामक तत्व हैं। इनका संतुलन शरीर को स्वस्थ रखता है। और असंतुलन बीमारी को न्यौता देता है। बुन्देली लोककवि को इसकी पर्याप्त समझ है। भोजन में वस्तुओं की बारम्बारता का ज्ञान उसे है। खीरा शीतल और षातयुक्त तथा मक्का गरिष्ठ है तो कदुआ का साग बात और कफ उत्पन्न करता है इनको लगातार खाने से अनेक व्याधियां अपने आप आती हैं –

पैले ताय खीरा में बसी, देख भुटिया खिल–खिल हसी।
फिर खाई कदुआ की भुंजी, तुरतई ताप झड़झड़ उठी।।

बुन्देली साहित्य में जनता का लोकतंत्र है और इसी से साहित्य का लोकतंत्र उपजा है। 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का मुहावरा आधुनिक है किन्तु बुन्देली लोक कवि सोच–सोच कर और बेधड़क कहता है। उसके यहाँ नींद, प्यास, प्रेम और भूख की अपनी व्याख्या है और वह आज भी सौ प्रतिशत लागू होती है – "अंग न देखे टूटी खाट, प्यास न देखे धोबी घाट। प्रेम ने देखे जात–कुजात, भूख न देखे जूठी भात।" यही बुन्देलखण्ड की जमीन पर सृजित लोकतंत्र का स्वरूप जिसका कोई सानी नहीं है। बुन्देली साहित्य में 'आरजा' का अपना अलग महत्व है। ज्योतिष सम्बन्धी समस्त लेखन इसके अंतर्गत आता है। 'सहदेव' ऐसे बुन्देली लोक कवि हैं जिनकी ज्योतिष सम्बन्धी वाणी से बुन्देली ग्राम्य जीवन काफी समृद्ध और लाभान्वित हुआ है। "एक पाख दो गैना, पिरजा मरै के सैना।" से वही ध्वनित होता है कि एक ही महीना में यदि अमावस्या को सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण की स्थिति निर्मित होती है तो महामारी और युद्ध का संकट सामने आता है। बुन्देली ज्योतिष ज्ञान के प्रणेता सहदेव की निम्नलिखित पंक्तियां काबिले–गौर हैं :–

मघा, प्रल अनुराधा रेवे, पुरखा पुनखरा जो शनि सेवे।
हा–हाहूल मचे चौखण्डा, फिर भी कांपे नर नौ खण्डा।।
कछुअक मानस कर मरें, कछुक मरें गह योग।
कछुअक आपड़े से मरे, भाश्वत हैं सहदेव।।

अर्थ स्पष्ट है कि मघा, मूल अनुराधा, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों का स्वामी पति शनि है तो समस्त भूभाग में युद्ध, रोग, भूचाल, हाहाकार और अकाल मौत का वातावरण निर्मित होता है। व्यवहारिक ज्योतिष का एक उदाहरण और देखिए – "कृष्ण असाढ़ी प्रतिपदा को अम्बर गरंत, छत्री–छत्री जूझिया निहचे काल परंत।" यानि आसाढ़ मास की कृष्ण प्रतिपदा को आकाश में गर्जन होता है तो निश्चित तौर पर अकाल और युद्ध की विभीषिका के लिए तैयार रहना चाहिए।

बुन्देली की कुछेक लोकोक्तियों एवं जनश्रुतियों के आधार पर यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि आज भी अनुभव और व्यावहारिकता जीवन के मूलाधार हैं। परंपरा की सहज स्वीकारोक्ति हम सब में होनी चाहिए। और विलुप्त तथा अंधकार के गर्त में पड़े लोक साहित्य की खोज और शोध की प्रक्रिया जारी रख कर हीं हम बुन्देली धरा का कुछ ऋण अदा कर सकेंगे।

– एम.एल.बी. छात्रावास अधीक्षक परिसर,
झांसी रोड, ग्वालियर (म.प्र.)

बुन्देली गजल

- गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

उनकौ राज उनई की रैयत, कीसें कैये
मन खों मार गम्म हम खैयत, कीसें कैये
बे कुठिया में गुर फोरत हैं, तुम जानत हौ –
साँची बात तुमई सें कैयत, कीसें कैये
कसक हिये की हिये में रै गई, किये सुनैये –
खेरी अपने करम खां दैयत, कीसें कैये
ऐंड़त मुररत लंपा घांई, देखौ तौ बे –
रै रै कें उनखों समझैयत, कीसें कैये
परौ बिवूचन में ना कैसउ सुन लो तुम गुप्तेश्वर कै रये –
काम तौ बिलुरे हमई बनैयत, कीसें कैये।

– ई.डी. २५, एम.पी.ई.बी. कॉलोनी, रामपुर,
जबलपुर (उ.प्र.)

बुन्देली महिलाओं का लोकपर्व - 'कार्तिक नहान'

- अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

वैष्णवी आभा से दीप्त लोकजीवन पर राम और कृष्ण का व्यापक प्रभाव हैं यहां के अधिकांश संस्कार राम–सीता तथा कृष्ण–राधा के जीवन प्रसंगों पर आधारित है। प्रत्येक परिवार में जन्मा बालक लोकगीतों की धुनों में 'राम' या 'नन्दलाल' है। वह कौशल्या या यशोदा की कोख में जन्मता सा लगता है। शिशु जन्म पर यहां अवध या ब्रज का सा उल्लास दिखता है। लोक मंगल के क्षणों में बुन्देली धरती पर ब्रज और अवध अवतरित हो जाता है।

इसी वैष्णव परम्परा में बुन्देली महिलाओं का लोकपर्व 'कार्तिक नहान' मन वांछित फल पाने की लालसा से मनाया जाता है। कृष्ण भक्ति से सराबोर और सांस्कृतिक अनुष्ठान जहाँ एक ओर आध्यात्म तथा धर्म से प्रेरित हैं, वहीं दूसरी ओर लोक कलाओं की साधना का अनुपम उदाहरण है। इसके अन्तर्गत कार्तिक माह में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक लोककला के विविध अंगों के साथ भक्ति का अविरल प्रवाह देखा जा सकता है।

बुन्देली लोक संस्कृति के सम्यक् अनुशीलन की दृष्टि से इस पर्व से जुड़े लोकगीतों, लोककथाओं, विविधलोक–कलाओं तथा अचार–विधान का विस्तृत अध्ययन स्वतन्त्र शोध का विषय है। इस आलेख में इस पर विहंगम प्रकाश डाला गया है। लगभग एक महीने पर्यन्त चलने वाला यह लोकपर्व बुन्देली महिलाओं के संयम, तप, कला–साधना तथा लोकरंजन का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है।

इस लोक पर्व में किसी गांव या मुहल्ले की महिलायें टोलियां बनाकर भाग लेती हैं। इन्हें 'कतकियारी' तथा टोली की प्रत्येक महिला को 'सखि' कहते हैं। बुन्देलखण्ड में ब्रह्म मुहूर्त में कतकियारियों के झुण्ड नंगे पैर प्रभाती गाते हुए हर गली में यत्र–तत्र देखे जा सकते हैं। इन कतकियारियों की कठोर आचार संहिता है। नित्य भूमि पर शयन, ब्रह्ममुहूर्त में सूर्योदय के लगभग दो–तीन घण्टे पूर्व जागरण बिना तेल या साबुन के स्नान करना होता है। केशों में कंघी, भोजन में नमक तथा पति समागम वर्जित है। यदि काई कतकियारी विशेष परिस्थितियों में पति संसर्ग कर लेती है तो उसे सखियों के समक्ष अपराध स्वीकार करना पड़ता है। कुछ सांकेतिक वाक्यों यथा 'कुत्ता छू गऔ' 'कुरा फूट गये' आदि कहने से इस दोष का परिमार्जन कर लिया जाता है। अपराधिनी की आत्म स्वीकृति के बाद सभी सखियां उस पर व्यंग्य बाण छोड़ने से नहीं चूकती हैं।

इस लोक पर्व का श्रीगणेश कार्तिक कृष्ण चतुर्थी (गणेश चौथ), जिसे करवा चौथ के नाम से जाना जाता है, के दिन से होता है। इसमें भाग लेने की इच्छुक महिलायें उस दिन एक वस्त्र गांठ बांधकर कार्तिक नहाने का संकल्प लेती है। यह गांठ अनुष्ठान पूर्व होने के बाद खोली जाती है। इस दिन गणेश व्रत रखा जाता है। जो महिलायें करवा चौथ का व्रत रखती हैं वे उसके साथ ही गणेश व्रत तथा गांठ बांधने का विधान करती हैं। जो महिलायें पूरे माह का व्रत विधान पूरा नहीं कर पाती हैं, वे संक्षेप में नहाती हैं। वे इच्छा नवमी (कार्तिक शुक्ल नवमी) को आंवले के वृक्ष के नीचे गांठ बांधकर संकल्प लेती हैं तथा शुक्ल पक्ष की दशमी से चतुर्दशी तक पचबिकियाँ मनाती हैं। इन तिथियों में उन्हें व्रताहार रखकर कतकियारियों की आचार संहिता का पालन करना अनिवार्य है।

कतकियारी महिलायें ब्रह्म मुहूर्त में किसी तालाब, नदी, कुएं या अन्य जलाशय पर जाकर समूहिक स्नान करती हैं। जहां यह सुविधायें नहीं है वहां घर पर स्नान करके कार्तिक–पूजा के निर्धारित स्थान पर आना होता है। कार्तिक पूजा का विशेष आचार विधान है। किसी मंदिर या देव चबूतरा पर एक छोटी चौकी, जिसे जनभाषा में 'चौतरिया' कहते हैं बनायी जाती है। उस पर नित्य सफेद वस्त्र बिछाकर रेत या मिट्टी से राधाकृष्ण, सूरज, चांद तथा बिरवा (तुलसी) के धूलि चित्र बनाये जाते हैं। तत्पश्चात् लोक गायन होता है।

भोर के सन्नाटे को चीरते हुए इन कतकियारियों की मधुरिम स्वरलहरी सर्वप्रथम भगवान कृष्ण का जागरण तथा आह्वान करती हैं। यथा –

उठो मेरे कृष्ण भये भुनसारे
गऊअन के बंध खोलो सकारे।
उठकें कन्हैया प्यारे मुकुट संवारे
सुघर राधिका दोहन ल्याये। उठो मेरे...
काहे की दोहन, काहे की लोई?
काहे की हर गारें खोई?
सोने की दोहन, पाटी की लोई
पीताम्बरा हर गारें खोई। उठो मेरे...

पूजा विधान के विभिन्न सोपानों से भरपूर यह लंबा गीत कई चरणों में पूरा होता है। उसके बाद दूसरी सखी तान छेड़ती है –

अब मन लागा, अब चित लागा
सेवरिया न चूकियो जसुदा के नन्दन आरती
जो मैं ऐसी जानती कि आहें आज कन्हाई
गैयन के गोबर मंगाउती, ढिंग दै आंगन लिपाउती
मुतियन चौक पुराउती, पटरी देती डराय। जो मैं...
सोने के कलश मंगाउती, जल तौ लेती भराय
पूजा की थारी लगाउती, आरती लेती उतार। जो मैं...
धो धो गेडन पिसाउती, कपड़न लेती छनाय।
छप्पन भोजन बनाउती, रुच रुच भोग लगाउती। जो मैं..

सोने के पलंग बिछाउती, उर हरि को लेती पोंड़ाय
हरि के चरन दबाउती, मन चाहत फल पाउती। जो मैं..

कृष्ण के आने की संभावना के साथ ही उनके लिए भवन बनाने को कारीगर बुलाने का गीत गाया जाता है –

गंग जमुन बारू रेवता में, बारू रेवता की
तबई की थप थप होय अहो राम जी
बनइयो श्री कृष्ण जू को बैठका बैंठका
रानी रुकमनी की दालान अहो राम जी।

कृष्ण के महल अधिष्ठापन के पश्चात् सखियां कातिक नहान के आचार विधान पर आधारित एक लोक गीत गाती है –

कहत राधिका सुनो कन्हैया, कातिक कैसे अन्हैये।
राधे दामोदर बन जइये। राधे...।
नित्य सबेरें भोरई उठके सखियन टेर लगइयें। राधे...।
तेल तिली से त्यागन करिये, कोरे तटन नहइयें। राधे...।
नौन तेल को त्यागन करिये, घिया गकरिया खइयें। राधे।
खाट पिड़ी कौ त्यागन करिये, भू पै सैन लगइयें। राधे।

इसके साथ ही सखियों की लोकरागिनी राधाकृष्ण के प्रसंगों को स्मरण करती है –

नेक परौ वो गिरधर जू को मैया
गिरधारी मोरे हिरदै बसत है।
सो उनई के हात लगै मोरी गइया। नेक पठै दो...।
इतनी सुन कै जसोदा मुस्कयाती
आऔ जाओ लाल लगा आऔ गैया। नेक पठै दो।

इन कोकिल कंठी स्वर लहरियों के पश्चात् लोक कथाओं का सिलसिला प्रारम्भ होता है। गणेश जी दस दिन के देवता विसरम्भो, तुलसी, बाल्मीकि, सत्यनारायण, रामचर्या आदि की कहानियां सखियां आपस में ही कहती सुनती है। इस बीच पूरब में सूरज की पौ फटते देखकर सखियां गाने लगती हैं –

उठौ सूरज देव कलाधारी
कश्यप जू के पुत्र धनुषधारी। उठौ...।
उठौ री सूरज जू की मैया, लाल को जगा देओ।
सारी दुनियां है अंधियारी। उठौ...।
उठौ री सूरज जू की मैया दहिया बिलोऔ
छारे खड़ी एक छछियारी। उठौ...।
उठौ रे पछीड़ा भैया मारग चलियें।
सिर पै गठरी है भारी। उठौ...।
आधी नगरी में बम्मन, बनियाँ आधी नगरी में प्यारी घरवारी। उठौ.

सूर्य जागरण का गीत पूरा होते ही गांव के पंडित जी आ जाते हैं। वे वहीं चौंतरियां पर विराजमान भगवान (धूल आलेखन) का पूजन विधि पूर्वक कराते हैं।

आचमन, पान–समर्पण दर्पण, झूला के बाद कातिक व्रत का महात्म्य सुनाते हैं फिर सभी सखियां भगवान की परिक्रमा करती हैं नित्यप्रति कोई एक सखी क्रम से भगवान को अपने घर ले जाकर जलाशय में विसर्जित कर देती है। यह क्रम दीपावली के पूर्व चतुर्दशी (नरक चौदस) तक चलता है। कतकियारियां उसी दिन मौन व्रत रखकर करई तुमरियां किसी जलाशय में विसर्जित कर देती हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि श्रीकृष्ण यमुना में कहीं छिप गये हैं। अगले दिन वे घाटों घाटों श्रीकृष्ण को खोजने का प्रयास सखियां करती हैं। कतकियारियां कृष्ण को ढूंढने विभिन्न नदी, तालाबों आदि पर जाती है, वहीं स्नान करती हैं। वहां सखी छेड़ने का लोकनाट्य होता है। इसके अन्तर्गत दो टोलियां बनती हैं – एक पुरुषों की तथा दूसरी कतकियारियों की। पुरुष गोप तथा सखा बनकर सखिया छेड़ने, मक्खन छीनकर खाने आदि का अभिनय करते हैं। सखियों की छेड़ाखानी की यह लोकनाट्य लीलायें अत्यन्त रोचक होती हैं। लोक नाट्य परम्परा भैया दूज तक चलती हैं उस दिन श्रीकृष्ण मिल जाते हैं। उसी दिन उसी चौकी पर राई दामोदर की स्थापना करके नवमीं तक पूजन का क्रम चलता है।

दसमी से चतुर्दशी तक पचबिकिया मनाते हैं। इन दिनों कतकियारियां व्रत रखती तथा फलाहार ही लेती हैं। चतुर्दशी के दिन भीतपाखे का डला चढ़ाते हैं इसके अन्तर्गत मकान के विभिन्न अंगों तथा खपरैल, दरबाजे, खिड़कियां, दीवालें आदि को व्यंजन पकवान के रूप में बनाते हैं। भगवान के आभूषणों के भी पकवान बनाये जाते हैं। चतुर्दशी के दिनमें विष्णु तुलसी के विवाह का आयोजन किया जाता है। इसमें धूमधाम से बैंडबाजों के साथ बारात निकाली जाती है। विवाह की डलिया के रूप में भीत पाखे का डला देते हैं। भीगी पलकों से दान दहेज के साथ तुलसी की विदा होती है। अनेक नि:संतान महिलायें कन्यादान का पुण्य प्राप्त करने के लिये तुलसी का विवाह का आयोजन करती है।

पूर्णिमा की रात्रि में कतकियारियां किसी तालाब, नदी, नहर या जलाशय पर एकत्र होती हैं। वे कागज की नाव बनाकर उस पर आटा के कुछ प्रज्ज्वलित दीपक रखकर उस नाव को जलाशय में प्रवाहित करती है। पूर्णिमा की चांदनी के उज्ज्वल प्रकाश में सैकड़ों–हजारों दीपकों का झिलमिल प्रकाश अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। पूर्णिमा को कतकियारियां निराहार व्रत रखती हैं। अगले दिन 'ग्वाल–चबैनी' (भींगे चना, लइया, भूंनी हुई मूंगफली आदि का मिश्रण) बांटकर वे अन्न ग्रहण करती हैं।

इस प्रकार कातिक नहान का लोक पर्व पूरा हो जाता है। महिलाओं में अधिक से अधिक संख्या में कातिक नहाने की ललक होती है। तप–साध्य तथा व्यय–साध्य होने के बाबजूद अनेक महिलायें ग्यारह तथा इक्कीस कातिक नहाने का संकल्प करती हैं। जिस वर्ष अधिमास पड़ता है उस वर्ष के कामिक नहान को विशेष महत्व दिया जाता है।

– मण्डपम्, राठ रोड, उरई

बुन्देलखण्ड की वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

- डॉ. अंजना अग्रवाल

महारानी लक्ष्मीबाई का नाम आज भी विश्व की उन वीरांगनाओं में गिना जाता है, जो शौर्य की जीती–जागती मिसाल के रूप में अमर हो गई हैं। २२ वर्ष से भी कम उम्र में अंग्रेजों के साथ सीधी लड़ाई लड़ते हुए लक्ष्मीबाई ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया था। भारत की आजादी की मशाल देकर उन्होंने अपने साहस, शौर्य और बलिदान से झांसी का नाम पूरे विश्व में ऊँचा कर दिया। उन्होंने अपने अदम्य साहस से यह सिद्ध कर दिया कि नारी कोमलांगी और करुणा की मूर्ति ही नहीं वरन समय पड़ने पर वह दुर्गा और रणचण्डी बनकर शत्रुओं के मुण्ड भी धरती पर बिछा सकती है।[१]

रानी लक्ष्मीबाई का जन्म कार्तिक बदी १४ सम्वत् १८९१ (१८३५) में हुआ था। पिता का नाम मोरोपन्त तथा माता का नाम भागीरथी। था पिता बिठूर में बाजीराव पेशवा–।। की सेवा में लगे हुये थे।[२]

आपका बाल्यकाल का नाम मनुबाई था। पेशवा बाजीराव–।। उन्हें अति प्यार से छबीली कहकर बुलाते थे। उनकी सैनिक दीक्षा नाना साहब की देख–रेख में हुयी। सन् १८५० में आपका विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव से हो गया और रानी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बन गई। १८५१ में उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ किन्तु ४ माह पश्चात् बालक का निधन हो गया। इसी दु:ख में गंगाधर राव सन् १८५३ में चल बसे। महारानी विधवा हो गई लेकिन वीर नारी का आत्म विश्वास न टूटा और वह संघर्ष से जूझने के लिये अधिक सजग हो गई।[३]

गंगाधर राव जी की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने आनन्दराव को उनका दत्तक पुत्र मानने से इन्कार कर दिया और झांसी खजाने को अपने अधिकार में ले लिया। अंग्रेजों ने झांसी के किले पर अपना झण्डा फहरा दिया। अंग्रेजों की इन अन्यायपूर्ण करतूतों से रानी लक्ष्मीबाई का हृदय विद्रोह कर उठा। उन्होंने साहस पूर्ण घोषणा कर दी –

''झांसी मेरी है, मैं इस पर अंग्रेजों का अधिकार नहीं होने दूंगी, चाहे मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें।''

रानी झांसी को अपने अधिकार में लेने के लिये गुपचुप तैयारियाँ करने लगी। ४ जून १८५७ में अन्य राज्यों के साथ–साथ झांसी में भी विद्रोह फैल गया। विद्रोही सैनिकों ने झांसी किले पर धावा बोल दिया और उस पर कब्जा कर लिया। रानी का किले पर फिर अधिकार हो गया। रानी ने राजगद्दी संभाली और जनता की भलाई के कार्यों में जुट गयीं। अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि ओरछा के दीवान नत्थे खां ने हजारों सैनिकों के साथ झांसी पर आक्रमण कर दिया। रानी ने उसे कड़ी टक्कर दी। वह पराजित होकर अंग्रेजों से जा मिला।[४]

सन् १८५७ में भारत में स्वाधीनता क्रांति का बीज प्रस्फुटित हुआ। अंग्रेजों के कमाण्डर सर ह्यूरोज ने अपनी सेना को सुसंगठित कर विद्रोह दबाने का प्रयत्न किया। अंग्रेज सेनापति सर ह्यूरोज झांसी का विद्रोह दबाने झांसी आ गया। २२ मार्च सन् १८५८ ई. को झांसी का ऐतिहासिक युद्ध आरम्भ हुआ। कुशल तोपची गुलाम गौस खां ने रानी के आदेशानुसार घनगर्जन करती तोपों से लक्ष्य साधकर ऐसे गोले फेंके कि पहली बार में ही अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गये। महारानी लक्ष्मीबाई ने सात दिन तक वीरतापूर्वक झांसी की सुरक्षा की और अपनी छोटी सशस्त्र सेना से अंग्रेजों का इतनी बहादुरी से मुकाबला किया और अंग्रेजों के छक्के छूट गये। वीरों के साथ झांसी की वीरमणियों ने अपनी वीरता और रणकुशलता का ऐसा परिचय दिया कि अंग्रेजों के होश–हवास उड़ गये। सर ह्यूरोज ने दूसरे दिन अपनी सेना को हमला करने का आदेश दिया। इस बार प्रसिद्ध तोपची गुलाम गौस खां ने किले की बुर्ज से भवानी शंकर तोप दाग दी जिससे अंग्रेजी सेना तितर–बितर हो गई, लेकिन फिर घमासान युद्ध हुआ और अंग्रेजी सेना भाग गई। राष्ट्र कवि स्व. घासीराम व्यास का कथन है –

बातन में कलकत्ता कियो अभि।
घातन में पटना छपरे की।।
लातन लूट लाहौर लई।
मदरास लई मदरास खरे की।।
व्यास कहै जिन बम्बई सूरत।
औध लई बिन औध करे की।।
हांसी नही पर सांची कहै।
यह झांसी भई उन्हें फांसी गरे की।।

महारानी ने खुले रूप में शत्रु का सामना किया और अनुपम वीरता का परिचय दिया।[५]

झांसी के युद्ध का आँखों देखा वर्णन पारसनीस ने ''रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र'' में इस प्रकार किया है – ''२५ तारीख से दोनों ओर से बराबर मुठभेड़ शुरू हुयी। अंग्रेजी तोपें दिन रात आग बरसा रही थीं। बड़ा भयंकर दृष्य था। पश्चिमी द्वार के तोपची ने अपनी तोप का मुंह घुमाया और अंग्रेजों पर गोले फेंकने लगा। तीसरे गोले से अंग्रेजों का कुशल तोपची मारा गया और तोप भी बेकार हो गई। उस बहादुर तोपची का नाम था – गुलाम गौस खां। २३ मार्च १८५८ से ३ अप्रैल १८५८ तक गहरा संग्राम हुआ, जिसमें रानी ने ह्यूरोज के छक्के छुड़ा दिये। इस युद्ध का

वर्णन डॉ. नी.स. वन्हाड़ पाण्डे ने इस प्रकार किया है — "रानी ने किसी को सोने का कड़ा, किसी को पोषाक उपहार में दिया। किसी को उसने अपने अमृत तुल्य स्मित से, तो किसी को अपने धीर गम्भीर वाणी से प्रोत्साहित किया। रानी ने सैनिकों की 'हर–हर महादेव, मारो फिरंगी को'' गर्जनाओं से आसमान गूंज उठा। ले. डिक और ले. मेक्लेजान सीढ़ियों पर चढ़कर गोरे सिपाहियों को आगे बढ़ो आदेश दे रहे थे। उन्हें रानी की गोलियों ने निशाना बनाया और झांसी पर आक्रमण करने वाले उन गोरों की लाशें नीचे बिछ गई। उनके पीछे से ले. वोनस और फाक्स ऊपर चढ़े। फिर से रानी के सैनिकों ने गोलियाँ चलाई। फिरंगी नीचे धराशायी हुये। तभी अंग्रेजी सीढ़ियाँ डगमगाने लगीं। गोरी फौज को पीछे लौटने का आदेश देने वाला विगुल बज उठा। पत्थरों–पतीरों की ओट में छिप–छिपकर गोरे सिपाही पीछे हटने लगे। मुख्य दरबाजे से अंग्रेजों को खदेड़ दिया गया, परन्तु घर के भेदियों वीर अली, अली बहादुर की साजिशों व दूल्हाजू के विश्वासघात के कारण अंग्रेजी फौज ओरछा गेट से नगर में प्रवेश कर गयी।[६]

अब सशस्त्र अंग्रेजों ने निहत्थी जनता को मौत के घाट उतारना प्रारमभ कर दिया। निरीह जनता का कत्लेआम देखकर रानी बौखला उठी और १५ चुने हुये सैनिकों के साथ किले के नीचे उतरकर अंग्रेजों पर टूट पड़ी। अंग्रेजों के मुण्ड कटने लगे, जो बचे वह भी घरों की ओट में छिपकर गोलियाँ चलाने लगे, लेकिन जब अपार अंग्रेज सैनिक शहर में प्रविष्ट हो गये तो सरदारों की सलाह से रानी ने दुर्ग को छोड़कर अन्य स्थानों से युद्ध करने की ठानी। १८५७ के निदक के अनुसार रानी ने अंग्रेजी सेना की घेराबन्दी तोड़कर कालपी जाने का निश्चय किया। लगभग ३०० चुने हुये सवार अपने साथ लिये। पैरों में पायजामा, बदन पर बख्तर, कमर में जम्बिया और तलवार, पीठ के पीछे रेशमी वस्त्र से बंधा हुआ दत्तक पुत्र दामोदर, इस तरह सजकर वह खानदानी घोड़े पर सवार हुई। गोलियों की बौछार से दूरस्थ सैनिकों को और समीप आने वाले को तलवार की घात से धराशायी कर वह वायु वेग से अंग्रेज फौज की घेराबन्दी तोड़कर निकल गई। रानी ने ४ अप्रैल ५८ को झांसी दुर्ग को छोड़ भाण्डेर के मार्ग से कालपी रवाना हुयी।[७]

अंग्रेजों से लड़ते–लड़ते रानी कालपी पहुँची। यहाँ पहुँचते–पहुँचते उनका घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा। पीछा करते हुए ह्यूरोज ने कालपी पर फिर हमला किया। लक्ष्मीबाई पूरी ताकत से सिंहनी की भांति शत्रु दल पर टूट पड़ी। रानी ने ग्वालियर के महाराज सिंधिया से मदद चाही किन्तु ग्वालियर के राजा मे उल्टा उन पर हमला बोल दिया। इस गद्दारी से रानी का मन आहत हो उठा और सिंधिया से लड़ाई करके ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। यहाँ भी ह्यूरोज आ पहुँचा। दो दिनों तक रानी लगातार युद्ध करती रही। आखिर अंग्रेजी सेना ने लक्ष्मीबाई को घेर लिया। अपने को घिरा हुआ देखकर रानी रणचण्डी की भांति तलवार चलाती हुयी घेरे को तोड़कर निकल गई। अंग्रेज अब भी उनके पीछे लगे रहे। रानी उस दिन लालकुर्ती वाले सैनिकों के साथ लाल रंग की पोशाक में थीं। अंग्रेजी सेना पूरी शक्ति से उनका पीछा करने लगी थी। लक्ष्मीबाई दोनों हाथों से संहार करती हुई बढ़ रही थी। एक अंग्रेज ने रानी का वार बचाकर अपनी संगीन की हूल रानी को मारी। रानी की छाती के नीचे गहरा घाव हो गया। रानी ने अपने एक ही वार से उस अंग्रेज की गर्दन उड़ा दी। रानी चारों ओर से घिरी थी। उनका घोड़ा भी नया था। सामने एक नाला आ गया। रानी के बहुत कोशिश करने पर भी घोड़ा आगे नहीं बढ़ा। तब तक अंग्रेज सैनिक रानी के निकट पहुँच गये। एक अंग्रेज सैनिक ने पीछे से रानी पर वार किया। इस वार से रानी के मस्तिष्क का दाहिना भाग कट गया और आंख बाहर निकल आई, इतने पर भी उन्होंने अपनी तलवार से उस अंग्रेज को काट डाला। रानी चाहती थी कि अंग्रेज उनके शरीर को छू न पायें वह अचेत हो रही थी। उनके साथी सिपाहियों ने घोड़े से उतारकर उन्हें गुल मुहम्मद के घोड़े पर लिटाया। वे खून से लथ–पथ रानी को बाबा गंगादास की कुटिया पर ले आये। बाबा ने रानी के मुंह में गंगाजल डाला, अचेत रानी को कुछ होश आया। उन्होंने "हर–हर महादेव" का उच्चारण किया अंत में "ॐ वासुदेवाय नमः" कहते हुए रानी ने अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार १८ जून १८५८ को रानी ने वीरगति प्राप्त की। बाबा गंगादास ने अपनी झोपड़ी में लगी लकड़ियों को निकालकर रानी की चिता बनाई और उसे अग्नि को समर्पित कर दिया। गुल मुहम्मद ने चिता की भस्म को समेटकर वहाँ ईंटों का एक चबूतरा बना दिया। ग्वालियर में आज भी उस स्थान पर लक्ष्मीबाई की समाधि है।

अपनी आत्मा और शरीर पर अनगिनत वार सहकर भी रानी ने अपनी अन्तिम सांस तक वीरतापूर्वक लड़ाई लड़ी। देश की स्वाधीनता के लिये युवावस्था में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। जब तक देश है, देश का स्वाभिमान और गौरव गरिमा है तब तक रानी का नाम अमर रहेगा।[८]

संदर्भ संकेत —

१. दैनिक राष्ट्रबोध — झांसी, १८–६–०३, पृ. १२

२. जिला विकास पुस्तिका २००२ — सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, जनपद झांसी, पृ.सं. ८

३. अशांत त्रिपाठी मोतीलाल — बुन्देलखण्ड का इतिहास, शारदा साहित्य कुटीर, झांसी पृ. ११८–११९

४. दैनिक राष्ट्रबोध — झांसी, १८–६–०३ पृ. १२

५. अशांत त्रिपाठी मोतीलाल — बुन्देलखण्ड का इतिहास, शारदा साहित्य कुटीर, झांसी, पृ. १२२–१२३

६. जिला विकास पुस्तिका २००२–सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, झांसी पृ. १२–१३

७. जिला विकास पुस्तिका २००२ — सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झांसी, पृ. १३

८. दैनिक राष्ट्रबोध — झांसी, १८–६–०३

— तहसील रिठौराकलाँ, जिला मुरैना (म.प्र.)

स्वास्थ्य प्रहरी बुन्देली लोकगीत

-डॉ. आर.बी. पटेल

बुन्देली लोकगीतों में सदियों से प्राचीन परम्परायें,कर्मकाण्ड और रीतिरिवाज पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते चले आ रहे हैं। बुन्देली ग्रामीण जन–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन परम्पराओं का अनुसरण करते हुए जीवन लक्ष्यों को हासिल करते आ रहे हैं। मानव जीवन का प्रथम लक्ष्य स्वस्थ जीवन जीने की कला का ज्ञान बुन्देली लोकगीतों में भरपूर मिलता है। बुन्देली कवियों ने आयुर्वेद के सरल नुस्खे गीतों के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इनमें जीवन शैली के सिद्धान्त, स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहना, बीमारियों से छुटकारा पाने हेतु घरेलू उपचार, आदि उद्देश्यों को गीतों के माध्यम से जनसाधारण को समझाया गया है। प्राचीन काल से हमारे पूर्वज बच्चों को अखाड़े (पहलवानी) की शिक्षा देते थे। वे शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में सात प्रकार के सुखों को महत्व देते थे। यथा –

पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख हो घर में माया।
तीसरा सुख कुलवन्ती नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।
पंचम सुख हो सुन्दर बासा, छठवें सुख हों सज्जन पासा।
सप्तम सुख हो मित्र घनेरे, ऐसे नर नहि जग बहुतेरे।

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये भोजन का नियमित व निश्चित समय निर्धारण किया गया है जिसका पालन करना चाहिए। यथा–

सूर्योदय, सूर्यास्त में भोजन कबहुँ न खाय।
जो मनुष्य भोजन करे, बुद्धि नष्ट हुई जाय।।
प्रतिदिन भोजन का समय, निश्चित कर जो खाय।
मिटे कब्जियत बल पड़ै, अरु जठराग्नि बढ़ाय।।

बुन्देली गीतों में वर्ष के बारह महीनों के लिये अलग–अलग चीजें खाने के लिये बताई गई हैं यदि इस स्वास्थ्य संबंधी सूत्र के अनुसार मनुष्य भोजन करता है तो वह निरोगी रहते हुये शतायु को पार कर सकता है यथा –

चैते मीठी चीमरी, बैसाख मीठौ मठा।
जेठ मीठी डोबरी, असाढ़ मीठे लटा।।
सावन मीठी खीर–खाँड़, भांदो भुंजे चना।
क्वांर मीठी कुदई, काकरी, ल्यांव कोरी टोर कै।।
कातिक मीठी कुदई, दही डारो मोर कै।
अगहन खाव जूनरी, भर्ता नींबू जोर कैं।
पूस मीठी खीचरी, गुर डारो फोर कै।
माघ मीठे जोड़ा बेर, फागुन होरा बालैं।।

मनुष्य को अपनी स्वाभाविक क्रियाओं को रोकना नहीं चाहिए जैसे – क्षुधा, प्यास, निद्रा, शौच, लघुशंका, और अपान वायु आदि। इनको रोकने से नाना प्रकार के रोग जन्म लेते हैं। जैसे प्यास रोकने से दिमाग में गर्मी, हृदय रोग, चर्म रोग आदि हो जाते हैं – यथा –

गर्मी बढ़े दिमाग में, हृदय रोग बढ़ जाय।
चर्म रोग खुजली अपच, जो नहि प्यास बुझाय।।

भूख रोकने से भी तरह–तरह की व्याधियों का जन्म होता है। निम्न गीत में इसके संकेत मिलते हैं यथा –

कान्ति हीनता, तिमिर अरु, चित्त बैचेन बनाय।
रक्त शक्ति का नाश हो, सिर में चक्कर आय।
झुंझलाहट पैदा करें, देवै रक्त जलाय।
नाशे चित्त एकाग्रता, क्षुधा समय नहिं खाय।।

अपान वायु रोकने से लकवा जैसी असाध्य बीमारी हो सकती है। जैसे–

लकवा, गस, सिरदर्द अरु, वायुशूल मन्दाग्नि।
तन भीतर फोड़ा करे, नष्ट होय जठराग्नि।।

बुन्देली गीतों में बीमारियों का वर्णन किया गया है। वहीं उनके उपचार भी सुझाये गये हैं। जैसे किसी भी प्रकार की खाँसी चलने पर उसको निम्न उपचार के द्वारा रोका जा सकता है –

हर्र बहेड़ा, आँवला, चित्रक लेय गिलोय।
सोंठ, मिर्च, पीपल सहित, बायबिरंगहु होय।।

इन छोटे छोटे स्वास्थ्य प्रेरक सूत्रों में सामान्य बीमारी से लेकर असाध्य रोगों तक का आयुर्वेदिक इलाज बताया गया है जैसे खूनी बबासीर होने पर निम्न उपचार करना चाहिए –

धूनी दीजै भाँग की, बबासीर नहिं होय।
जल में घोले फिटकरी, शौच समय नित धोय।।

मुख से रक्त आने पर हमें घबराने की कोई आवश्यकता नहीं बल्कि हमें निम्न ढंग से औषधियों का सेवन करना चाहिए –

दो आना भर लाख में, छोटी पीपर चार।
मिश्री तोला एक ले, सब महीन कर डार।
भोजनान्त नित फाँकिये, पौवा भर पय पाय।
या मधु के संग खाइये, देवे रोग मिटाय।।

यदि किसी व्यक्ति को अपच या कब्जियत की बीमारी हो जाती है तो उन्हें गुड़ सेवन की सलाह बुन्देली साहित्य में दी गई है। यथा–

जो भोजन के अन्त में, तोला भर गुड़ खाय।
अपच मिटे भोजन पचे, अरु कब्जियत नशाय।।

स्वास्थ्य प्रहरी की तरह हमारे बुन्देली लोकगीतों में मानव स्वास्थ्य से संबंधित समस्त पहलुओं का लाभकारी वर्जन किया गया है यदि मनुष्य अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहकर इन सूत्रों का अनुकरण करें तो वह स्वस्थ्य जीवन लाभ ले सकता है।

– शास. हाईस्कूल बमनौराकलाँ,
जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली काव्य में महिमा-मण्डित भारतवर्ष

- श्रीमती ब्रजलता मिश्र

भारत वर्ष के उत्कर्ष का वर्णन करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' में लिखा है –

'सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि–भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।।

आदिकाल से ही भारतवासियों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना विद्यमान रही है। वे सम्पूर्ण पृथ्वी को परिवार के समान मानकर सब के लिये मंगल कामना करते हैं –

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

अर्थात् सब सुखी और निरोगी हों। सब कल्याण को देखें। किसी को कभी कोई दुःख न हो। ऐसे ही अनेक कारणों से हम भारतवासी अपने देश भारतवर्ष की भारतमाता के रूप में सम्मान देते हैं भारतमाता का स्नेह हमारे रोम–रोम में रमा है। उसकी शक्ति हमें बल एवं गौरव प्रदान करती है। अतः कृतज्ञता एवं समर्पण के लिये हम भारतमाता की वन्दना करते हैं। देशभक्त एवं कवि उसके गीत गाते हैं। पं. वासुदेव गोस्वामी ने 'देवी–गीत' की शैली में रचित भारत की इस वन्दना में, भारतमाता के श्रृंगार में उन अलंकारों का उल्लेख किया है, जो स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय प्रतीक बने। श्री गोस्वामी जी के शब्दों में –

आदिभुअन जय भारत जननी बसुधा को सिंगार मौरी माय।

ऋषि–मुनियों ने सृष्टि–रचना में भारत भू का निर्माण सर्वप्रथम बतलाया है। अतः आदिभुवन यह भारतमाता सम्पूर्ण सुधा का श्रृंगार है। मानचित्र के अनुसार समुद्र इसका आसन और हिमालय मुकुट है। अशोक–स्तम्भ पर स्थित चार मुख वाला सिंह प्रतीक रूप में यहां चौकीदार बनकर पहरा देता है और चारों दिशाओं पर दृष्टि रखता है। इसकी ''सत्यमेव जयते'' की गूँज से अन्य देश आपस में झगड़े त्यागते हैं –

रत्नाकर आसन कर राजत, मुकुट हिमालय धार मौरी माय।
सिन्ध–सुअन जाकी चौकी बैठे, चार दिसा मुख चार मौरी माय।
सत्यमेव जयते पुनि गरजे, बरजै, सबकी द्वार मोरी माय।

दोनों ओर से समुद्र भारतमाता के चरणों को धोते हैं और भक्त–समूह की भाँति लहरें जय–घोष करती हैं। गंगा–यमुना आदि नदियाँ जल चढ़ाती हैं। भारत के दक्षिण में मलयगिरि चन्दन लाकर उसमें उत्तर के कश्मीर की केशर जब मिलती है, तब भारतमाता का पूजन होता है। यह राष्ट्रीय एकता का सेतु है, जो उत्तर दक्षिण को एकरस किये है –

सागर दोऊ चरन पखारें, लहर करै जयकार मोरी माय।
गंगा–जमुनादिक जल ढारै, देत सुगन्ध बयार मोरी माय।
मलयागिर चन्दन पद पूजत, केसर तिलक लिलार मोरी माय।

तिरंगे ध्वज के हरे, श्वेत, केशरिया रंग तथा अशोक चक्र समृद्धि, शान्ति, त्याग और बलिदान के प्रतीक हैं –

तीन रंग की धुजा–पताका, हरी, सेत, रतननार मोरी माय।
चक्र असोक लोक अवलोकत, सान्ति, अहिंसा, प्यार मोरी माय।

भारतमाता के आँगन में मानो स्वर्ग समाया है, जिसमें राष्ट्रीय पक्षी मोर विहार करता है। अनेक प्रकार की बोलियाँ बोलने वालों का यहाँ बाहुल्य है। किन्तु सब इसकी शोभा हैं –

मैया के अँगना नँदनवन फूलौ, मोरैं करत बिहार मोरी माय।
कीर, कपोत, हंस, चातक, पिक, पंछिन की भरमार मोरी माय।
वासुदेव की धन्न देवकी बन्दौ बारम्बार मोरी माय।

जिस प्रकार वासुदेव कृष्ण! की माता देवकी वन्दनीय रहीं है, उसी प्रकार हमारी भारतमाता भी बारम्बार वन्दनीय हैं। सबके प्रति शुभ कामनाओं वाला भारतवर्ष विश्व का सिरमौर है। गोस्वामी जी ने भारत की स्थिति का यही कारण बताया है। वे कहते हैं –

सबरी जगती कौ सुख जौ विचारत है।
देस–देसन में सो नामी–ग्रामी भारत है।।
अंगरेजन सें आजादी की जब हो भरी लड़ाई,
सत्त–अहिंसा के बल जीती, ताकी बड़ी बड़ाई।

सत्य–अहिंसा के बल पर पराधीन भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात् देश स्वतन्त्र हुआ। नवीन संविधान में अस्पृश्यता का अन्त हुआ। अनेकता में एकता भारतवर्ष की महती विशेषता रही –

हो सुतन्त्र गनतन्त्र गढ़ लओ, सबके मन कौ भाऔ,
छुआ–छूत कौ भूत भगा दऔ जन–जन गरैं लगाऔ।

इस देश में जब–जब भी मानव पर दानव द्वारा अत्याचार किया गया, तब–तब अत्याचारी पराजित हुआ। सदैव असत्य पर सत्य की विजय हुई है। रामायण–महाभारत आदि ग्रन्थ इसके साक्षी हैं–

जब–जब मानवता त्रासित भई, हिरदौ हिन्द पसीजौ,
याही तैं रामायन–भारत लखियत अँसुअन मींजौ।
पुरखेन की बा परम्परा कौं कभऊँ मिटन ना दीऔ,
अत्याचार करै जो कोऊ, तासें लोहा लीजो।

अपने पूर्वजों की परम्पराओं का निर्वाह करते हुए हमारे देश के नवयुवकों को इस बात का ध्यान रहे कि हमारे देश की एकता अक्षुण्ण रहे। श्री नारायण लाल भट्ट जी ने भी इसी बात पर बल दिया है कि हमारे पर्वत और नदियाँ विभाजित न हो जाएँ। श्री भट्ट जी के शब्दों में –

जे अपनी नदियां और घाटीं, देखौ काऊ खों जाएं न बांटीं।

गंगा–कावेरी के प्यारे। तुम रखियो अपनी परिपाटी।
कबहूं ना करियो पुरखन के सींचे खैत बिराने हो।

अपनी जन्मभूमि से जन्म–जन्मान्तरों का सम्बन्ध बताते हुए वे युवा–वर्ग को स्मरण दिलाते हैं कि इसी भारतमाता के आँगन में खेलकर तुम सब बड़े हुए हो। अतः आपसी विवादों में पड़कर तुम लोग इसकी रक्षा करना मत भूलना –

खेले हो वे तुम सब आंगन में, अपनी गुइँयन की बाँयन में।
भूल न जइयो अपनी दइया, आपुन की बातन–बातन में।
अपनी धरती के लाँनें कैसउँ न पीठ दिखाने हो।

देश के कर्णधारों को सचेत करते हुए वे कहते हैं कि तुम लोग स्वभावतः सीधे और सरल हो। अपने और पराये का भेद–भाव नहीं रखते। लेकिन शत्रु–देश की शतरंजी चाल को भी समझना सीखो। जिन शहीदों ने भारत भूमि की रक्षा में अपने प्राणों को बलिदान कर दिया, उनके ऋण को चुकाओ –

तुम हो पड़े–पड़ाए सुअना, भीतर–बाहर भेद कछू ना।
उड़ चलियो जुर–मिलकें झट्टई, बैरी की अब घात लगै ना।
जिन्ने प्रान दए माता खों, उनको ऋन लौटाने हो।

श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी ने भारतवासियों से अपेक्षा की है कि हम सबको मिलजुलकर इस स्वतन्त्र भारत की रक्षा करना है। यदि इसकी रक्षा में कोई भी कौर–कसर रही, तो ठीक नहीं। श्री मित्र जी के ही शब्दों में –

बिनती इतनी मित्र! 'मित्र' की सुन लइयो चित धरकै।
जा सुतन्त्र भारत की रच्छ्या करियो सब मिल–जुरकें।
जो कउँ बिगरी बात कितउँ फिर नइँयाँ कोऊ पुछैया।

स्वतन्त्र भारत की रक्षा हेतु शत्रुओं को परास्त करने के लिये श्री प्रभुदयाल गोस्वामी भारतीय सेना का उत्साह इस प्रकार बढ़ाते हैं–

स्वतन्त्रता की रखबे थाती, करकें अपनी चौड़ी छाती,
फौजें बैरी पछारन चलन लागीं।
भारतमाता के सपूत की पौरुष की ललकारें,
आजादी के दीवानन की सिंधुनाद हुंकारैं,
शत्रु दल के दलन खों दलन लागीं,
फौंजें बैरी पछारन चलन लागीं।

हमारी जन्मभूमि और कर्मभूमि भारतवर्ष हम सबको प्राणों से भी अधिक प्यारा है। अन्त में, मैं भी यही कहूँगी –

अपनो जो भारत देस हमें प्रानन सें प्यारौ।
महिमा अगर अपार है जाकी,
उपमा खोजत मति गई थाकी।
बरनत हारे सेस, हमें प्रानन सें प्यारौ।

– केशवकुल, ३५२, नानकगंज,
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

बुन्देली लघुकथा –

नेता जी घांई

– डॉ. सुश्री शरद सिंह

'खबरदार! कोनऊ नकल न करियो। जोन ने नकल करी ऊको फारम भरा दओ जाहे! कोनऊ चुटका–पुरचा न चलहे इते पे, समझे!' मास्साब जी कक्षा में घूमत भए परीक्षा दे रये मोड़ा–मोड़ियन खों हड़कात भए फिर रये ते।

मोड़ा–मोड़ियन मास्साब जी के डर से अपनो मूंड़ लो नई उठाओ। परचा खतम भओ सो मास्साब जी अपनो सीना ताने अपने संगवारन से कहन लगे, 'मोसे सबई डरात हैं। देख लेओ, नकल की तो दूर रही कोनउं चूं लो नईं कर पाओ! मोरे जैसो कड़क मास्टर इते कोऊ नइयां!'

सबई जने मास्साब जी की तारीफें करन लगे। मास्साब जी फूल कै दूना होत भए सकूल से बायरे निकरे। बे कछु कदम चले हुइएं के उनके आंगू एक लालबत्ती वारी गाड़ी रुकी। ऊ में से एक आदमी निकरो। वा आदमी मास्साब जी से बोलो, 'नेताजी नै कही है के उनके लड़का को अव्वल आने है... जे रओ ऊको रोल नंबर!'

'हें...हें...हें.. जे बी कोऊ कैबे की बात है! आप नेताजी से कै दइयो के कापियां आतई साथ खबर भिजा दी जाहे उनको मोड़ा जो कछु छोड़ आओ हुइए सो मोरे इते आके लिख देहो. .. काए से कै मोरी ईमानदारी सोई बची रई चाइये! नेता जी घांई!...हें...हें...हें...!' मास्साब जी हंसत भए बोले, संगे वा आदमी सोई अपनी बत्तीसी दिखान लगो।

– रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

बेलेंटायन डे के मानें

– डॉ. के.एल. पटेल 'मनोहर'

बीमारी आ गई बिदेसी, देखत लगै भदेसी।।
फिरत जबानी अंग उघारें, बनकें सभ्य मबेसी।
ऐसौ लगत देस में फिरसें, घुस आये परदेसी।
रीत सुदेशी की दुनियाँ में, नँगन नीति पिरबेसी।
इसको रोके कौन 'मनोहर', दम है किसमें ऐसी।।१।।
बेलेंटायन डे के मानें, ढंग से जेना जानें।।
लै लै के उपहार सोचते, जाबें कहाँ मनानें।
किसके कैसे भये देश में, दीबानी–दीबानें।।
लगी चुड़ैल बिदेसी सूँघन, देशी चाल भुलानें।
सबके सांमूं लगे 'मनोहर', खुलकें चोंच लड़ाने।।२।।
बेलेंटायन डे कब आबैं, उनसे मिलबे जावैं।।
चोरीं–चोरीं चुपकें चुपकें, जीभर प्रेम चुचावैं।
चूमाचाटी करें खुलासां, रीछन घांई दिखाबैं।।
खानदान की मरजादायें, बनी बनाई मिटाबैं।
देखत इनके ढंग 'मनोहर' स्याने मन शरमावैं।।५।।

– ३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

एक ऐतिहासिक कथा : लाल कंजलियां

- बीरेन्द्र बहादुर खरे

सावन प्रारम्भ हो चुका था, बादल कभी मूसलाधर बरसते थे तो सभी रिम झिम रिमझिम रिसते थे। बूढ़ा गोरखा गिरि अपने शरीर की सारी तपन मिटा रहा था। पहाड़ अपनी विशाल काया बादली पानी से खुश हो होकर धो रहा था उसके शरीर से निकले झरने धरती पर इठलाते बलखाते शोर मचाते वह रहे थे। धरती हरियाने लगी थी। पावस के सुहाने मौसम में अगर कोई उदास था तो वह था महोबा नगर का जन मानस। सावन माह में महोबा के छोटे से छोटे घरों और बड़े–बड़े महलों के आंगन में झूले पड़े रहते थे। पर आज वृक्ष और आंगन झूलों से रहित थे। न हीं कहीं कजरीं गाई जा रही थी न कहीं विरहा की तान उठ रही थी।

महोबा की जनता भयभीत थी। रक्षाबंधन के दिन कजलियों का पर्व बड़ी धूम से मनाया जाता था उस दिन कोरे मिट्टी के घड़ों में गेहूँ एवं जौ के पौधे उगाये जाते थे इन्हें जवारे कहा जाता था। नगर की बहू बेटियां इन घड़ों को शीश में रखकर समूह में देवी गीत गाते हुये नगर के बाहर लहराते हुये कीरत सागर सरोवर में विसर्जित करतीं थी। इन कजलियों को नगर निवासी एवं दूसरे को देते थे। यह पर्व राजा और प्रजा के पास आने का पर्व था। राजकुंमारियां भी सामान्य महिलाओं के साथ कजलियां सिराने (विसर्जन) करने जातीं थी।

महोबा में उस समय अपार भीड़ होती थी दूरस्दूर से लोग नगर में आते थे राजा की ओर से रहने खाने का पूरा प्रबंध होता था। दंगलों का आयोजन होता था।

पर इस वर्ष आल्हा ऊदल के देश निकाले के कारण और मलखान की मृत्यु ने उल्लास और उमंग पर पाला मार दिया। पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण का भय चन्देली प्रजा को हंसने नही दे रहा था। दिल्ली पति चौहान ने महोबा के चन्देल राजा (परिमर्ददेव) परमाल के राज्य के उत्तरी भाग सिरसा को जीत लिया था। अफवाह थी कि वह महोबा पर आक्रमण करने वाला है। कुछ लोगों ने तो कुलपहाड़ के आसपास चौहान की सैनिक टुकड़ी को भी देखा था। चन्देल सम्राट डरा हुआ था। राजा आल्हा ऊदल एवं मलखान के बिना अपने को बहुत कमजोर और असहाय समझ रहा था। उसे दिल्ली चौहान की सेना का सामना करने का साहस नहीं हो रहा था। उसने ऐलान कर दिया कि इस वर्ष कजलियों का पर्व धूम धाम से नहीं मनाया जायेगा। नागरिक सादा ढंग से किले के अन्दर के मदन सागर सरोवर में कजलियां विसर्जित करेंगे। मुनादी की चोट सबसे अधिक राजकुमारी चन्द्रावलि को लगी शत्रु के डर से अपनी परम्परा का पालन न करना उसे अपना अपमान लगा। उसे इस अदेश में कायरता दिखलाई पड़ी। वह रक्षाबंधन के दिन को याद करके तड़पने लगी। उसे आल्हा ऊदल एवं मलखान की याद आने लगी।

उसने अपने पिता राजा परमाल से कजली के पर्व का धूम धाम से मनाने एवं कजलियों को कीरत सागर में विसर्जित करने की अनुमति चाही। राजा राजकुमारी के तर्कों से सहमत नहीं हुआ। राजकन्या पिता के दरबार से तो चली आई पर माँ मल्हना देवी के सामने सिर पटककर रोने लगी। वह बोली माँ भाईयों को राखी ना बांध सकूंगी इस दुख को तो ईश्वरी विधान समझकर सहलूंगी। पर कजलियों को तो कीरत सागर में ही विसर्जित करूंगी वरना कजलियाँ विसर्जित ही नहीं करूंगी। मैं राज्य कन्या हूँ अपने ही राज्य में शत्रु के भय से पर्व ना मना सकूं यह अपमान मैं नहीं सह सकूंगी। और इस स्थिति के आने से पहले मर जाना पसंद करूंगी अगर महोबा में बीरता आल्हा और ऊदल तक ही सीमित थी तो उन्हें निकाला ही क्यों था मैं उन्हीं वीरों की बहिन हूँ। अगर दुश्मन मेरा अपमान करना चाहेगा तो मैं उससे निपटना जानती हूँ कि दुश्मन जीते जी मेरे शरीर पर हाथ नहीं लगा सकता है। मैं कजलियों को कीरत सागर में ही विसर्जित करूंगी यह मेरा हठ है।

राजकुमारी तो रोती चली गई पर रानी को चिन्ता में डाल गई। वे बेटी के हठ को जानती थीं वे अकेले मदन सागर के तट पर बने अपने महल के कक्ष में बैचेन सी टहलने लगीं। उनका मन भी सामने हिलोरें लेता हुआ मदन सागर की तरह उद्वेलित हो रहा था। कल की चिन्ता उनके मन को मथे जा रही थी। उन्होंने क्षण भर सोचा फिर ताली बजाई। बिना विलम्ब के एक दासी सामने आ गई रानी ने कहा 'फूला जा महाकवि जंगनिक को मेरा संदेश दे और कह कि मैंने उन्हें अविलम्ब याद किया है कुछ समय बाद दासी ने रानी जी को जंगनिक के आने की सूचना दी।

कवि जगनिक इकहरे बदन के लम्बे मुंह बाले कोमल पर दृढ़ निश्चय वाले नेक जवान थे। उनकी आंखों में निर्भीकता अधरों पर निश्चय एवं चेहरे में चतुरता झलक रही थी। जगनिक ने महारानी को जुहार किया और बोला "अन्नदाता इस सेवक को आपने कैसे याद किया सब कुशलता तो है न?

रानी ने कवि को सामने रखी चौकी पर बैठने को कहा और बोलीं कवि कुशल अब महोबा के भाग्य में कहां? चन्देल वंश और नगर की चिन्ता से मेरा चैन नष्ट हो गया है, चन्देल प्रजा आज किस भय में जी रही है यह तुम से छिपा नहीं है। सिरसा हाथ से निकल गया है गढ़ कुण्डार पर चौहान का अधिकार हो गया है। तुमने राजा की आज्ञा तो सुन ही ली है"

हाँ माता सतर्कता एवं व्यवहारिक दृष्टि से महाराज की आज्ञा उचित एवं दूरदर्शिता पूर्ण ही है। रानी ने कहा "हाँ

समझदारों एवं राजनीतिज्ञों की बात तो ठीक ही है पर राजकुमारी को कौन समझाये। वह तो इसे कायरता समझती है। वह परम्परा के अनुसार ही पर्व मनाना चाहती है। उसने प्रण किया है या तो वह कजलियां कीरत सागर में विसर्जित करेगी या फिर करेगी ही नहीं। वह भूखी रहकर प्राण देगी। वह रात दिन आल्हा ऊदर और मलखान को याद करके रोती रहती है।

जगनिक बोला "दुख होना तो स्वाभाविक है महारानी जी चन्द्रावली को वे तीनों अपनी सगी बहिन से भी अधिक चाहते थे। मलखान तो हम सबको अनाथ बना गये। चन्द्रावली की तो बात ही और है। पर माता कोई उपाय भी तो नहीं है। अगर कीरत सागर में कजलियां बिसर्जन की अनुमति मिल जाये और अफवाह सच निकली तो अनर्थ हो जायेगा। राजकुमारी संकट में पड़ जायेगी। रानी ने गहरी सांस ली और कहा "कवि तुम ठीक कहते हो क्या समय आ गया है? एक दिन था जब चन्देल वीरों की तलवारों और उनके नाम से भारत के राजपूत राजा भय से कांपने लगते थे। और आज चन्देल राजा राय पिथौरा के डर से अपने ही राज्य में अपने नगर से बाहर ही अपने पुत्री को भेजने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। कुछ सोचो जगनिक! कुछ सोचो, जिस से राजकुमारी को संतुष्ट किया जा सके। कवि बोला माता अगर आज्ञा हो तो एक बात कहूँ। क्यों न इस संकट की घड़ी में आल्हा ऊदल को मनाकर बुला लिया जाये। चन्देल सैनिक कायर नहीं हैं, उन्हें बनाफर वीरों का नेतृत्व चाहिये। रानी ने आह भरी और कहा "यह इतना आसान नहीं हैं। न तो राजा मानेंगे और न उनके सलाहकार उन्हें मानने देंगे। और फिर जिस तरह वे अपमानित होकर गये हैं उससे तो नहीं लगता है कि वे मान जायेंगे।

"पर महारानी जी प्रयास करने में हर्ज ही क्या है? वे अपने हैं कोई गैर तो नहीं हैं" कवि बोला। रानी ने कहा "कवि मैंने तुम्हें बुलाया तो इसीलिये था पर मन में राज्य मर्यादा का संकोच था। तुम चुपचाप मेरा संदेश लेकर कन्नौज चले जाओ। अगर तुम अपनी चतुराई से उन्हें मनाने में सफल हो गये तो चन्देल वंश तुम्हारा एहसान मानेगा। वैसे होनी तो होकर ही रहेगी पर हमें अपना प्रयास तो करना ही होगा। तुम इस यात्रा को गुप्त ही रखना।

पहला तारा आकाश में उदित हुआ और जगनिक अपने घोड़े पर सवार होकर गुप्त द्वार से नगर के बाहर आ गया। वह रात के संनाटे में कन्नौज की ओर चला उसने राजपथ छोड़ कर जंगली मार्ग पकड़ा। उसने बसौर की दुर्गम पहाड़ियों के बीच अवरोध देखा। पर अश्व बिजली की चमक की तरह उसे पार कर गया। चार पांच घंटे चलने के बाद बेतवा के किनारे उसने घोड़े को पानी पिलाया और कुछ पल विश्राम कर वह फिर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा। सुबह होते होते वह कन्नौज के नगर द्वार पर था। नगर का प्रवेश द्वार अभी बंद था। उसे द्वार की ओर बढ़ते देख द्वार पाल ने आवाज लगायी कौन है? जगनिक ने कहा 'मित्र' द्वारपाल ने द्वार ना खोल कर नगर के कोतवाल को सूचना दे दी। कुछ सवारों के साथ कोतवाल के आते ही नगर के प्रवेश द्वार फाटक खुल गये। जगनिक को घेर लिया गया और उसे महाराज जयचंद्र के सम्मुख दरवार लगने पर प्रस्तुत किया गया। आल्हा ने दरबार में जगनिक को सैनिकों से घिरे हुये देखा तो वह चौक पड़ा और बोला "जगनिक आप और यहाँ?" महाराज जयचंद्र ने जगनिक का नाम सुनते ही आल्हा की ओर देखा और सैनिकों को इशारा किया। राजा की आज्ञा से सैनिक जगनिक के पास से हट गये। जगनिक ने शीश झुकाकर जयचंद्र का अभिवादन किया।

जगनिक ने कहा "महाराज मैं नगर महोबा से आल्हा ऊदल को एक दुखद समाचार देने के लिए आया हूँ। मुझे यह बतलाते हुये दुख हो रहा है कि इनके भाई परमबीर मलखान अब इस दुनिया में नही है वे दिल्ली पति चौहान के सेनापति द्वारा सिरसा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गये हैं।

आल्हा ऊदल के साथ दरबार के सभी व्यक्ति इस आकस्मिक बज्रपात से जड़ हो गये। आल्हा एवं ऊदल से ना कुछ कहते बनता था ना रोते। वे जगनिक की ओर देखते रह गये उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। जयचंद्र ने दरवार समाप्त कर दिया उसने आल्हा एवं ऊदल को समझाया और जगनिक को अपने निवास में ले जाने के लिए कहा। आल्हा दुखी मन से जगनिक को घर ले आये।

वे घर पहुंचते ही फूट फूट कर रोने लगे। मलखान की मृत्यु की खबर सुनते ही आल्हा की मां अचेत सी हो गई। जगनिक रो रोकर मलखान की मृत्यु का वर्णन सुना रहे थे। मां बेटे रोरोकर सुन रहे थे। ऊदल की आखें क्रोध से लाल हो गई। बोला "जगनिक, चौहान के इस सेनापति का सिर शीघ्र ही धूल में लोटता दिखाई देगा। कन्नौज की सैना का पहला सैनिक ऊदल होगा जो दिल्ली के दुर्ग की पहली ईट गिरायेगा। जगनिक बोला "बीर श्रेष्ठ बात यहां तक ही नहीं है। सिरसा, मदनपुर, गढ़कुण्डार तो चन्देलों के हाथ से निकल ही गये हैं। अब तो अफवाह है कि दिल्ली की सेना महोबा की ओर आने वाली है। सावन के कुछ ही दिन रह गये हैं। पर्व का कहीं कोई उल्लास नजर नहीं आता है। आशंका और भय से नगर के द्वार बंद रहते है। सुबह थोड़ी देर के लिए द्वार खुलते हैं और बंद हो जाते हैं। सैनिकों को छोड़ नगर निवासियों को नगर से बाहर जाने की अनुमति नहीं है। राजाज्ञा से कजलियों का पर्व भी धूम से इस वर्ष नहीं मनाया जाएगा। राजा ने आज्ञा दी है कि कजलियां मदन सागर में ही विसर्जित की जाये, राजकुमारी ने राजाज्ञा के विरोध स्वरूप अन्न जल त्यागने की धमकी दे दी है राजकुमारी मरने को तैयार बैठी है। राजा कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते हैं मल्हना देवी ने कहलाया है कि चंदेलों की लाज और बहिन की जान तुम्हारे हाथ है।"

''और राजा परमाल ने क्या कहा'' ऊदल गरजा ''हमें महोबा से क्या मतलब! हम परमाल के चाकर नहीं है। हमें उनके दुर्भाग्य एवं दुख से कोई सरोकार नहीं है। हमने मलखान का बलिदान देकर उनके नमक का हक चुका दिया है। वे अपने दुर्भाग्य से स्वयं निपटें। महोबा में वीरों की क्या कमी है। उनके साले मामा माहिल तो है ही हम किस लायक है महाकवि'।

जगनिक बोला ''राजकुमार आपको सीख देने की हिम्मत मुझ में नहीं। मुझें राजा ने नही मल्हना देवी ने भेजा है और कहा है 'मैंने तुम्हें दूध पिलाया है। देश निकाला तुम्हें राजा ने दिया है माँ ने नहीं। आज तुम्हारी बहिन और माता की इज्जत खतरे में है। चंद्रावलि हटी है वह कजलियां कीरत सागर में ही विसर्जित करेगी अगर दिल्ली के सैनिकों द्वारा लांछित हुई तो क्या होगा? आल्हा और ऊदल ने कोई उत्तर नहीं दिया। मां अभी चुपचाप बैठी थी बोली – ''जगनिक बेटे बहिन को बेइज्जत होने दें तो होने दें'। माँ बेठी तो संकट में नहीं डाल सकती है चल मैं तेरे साथ चलती हूँ क्षत्राणी हूँ मरते दम तक बेटी की रक्षा करूंगी। माँ माँ होती है। पगलो! महोबा तो तुम्हें अभी भी याद करता है। धिक्कार है हमें जो हमारे जीते जी मातृभूमि का अपमान हो। मैं तुम्हें मजबूर नहीं करती हूँ। मेरे बेटे अपना मान अपमान लेकर बैठे रहे मैं तो इन मुसीबत में बेटी का साथ दूंगी।' आल्हा बोले ''बस मां वही होगा जो तुम चाहती हो।' महाकवि मां की इच्छा का पालन होगा। पर मुझे महाराज जयचंद्र की आज्ञा लेनी पड़ेगी। आप केवल मां, को जाकर भरोसा दे देना कि बहिन की रक्षा के लिये हम लोग पूर्णिमा तक वहाँ अवश्य होंगे।''

जगनिक उल्टे पैर महोबा आ गया। उसने रानी को पूरी बात बतला दी। पूर्णमा भी आ गई आल्हा के आने की गुप्त सूचना नहीं आई। रानी राजकुमारी को ऊँच नीच समझाकर हार गई पर वह न तो किसी को राखी बांध रही थी न ही खाना खा रही थी। कजलियां सजी रही और शाम हो गई। लोगों के चेहरे मुरझा गये। नगर की नारियां कजलियां सजाय रही पर कजलियों का विसर्जन नहीं हो सका। पुरानी परम्परायें टूट रही थी। लोग अनिष्ठ की आशंका से भयभीत हो रहे थे। कुछ राजकुमारी की जिद्द को कोस रहे थे तो कुछ राजा की भीरुता को। नगर में उस रात कोई सो न सका। दूसरे दिन हजारों आदमी महल के सामने खड़े थे। राजपुरोहित अनन्त एवं मुख्यामित्य शेषाद्रि आगे आये। उन्होंने कहा एक प्रहर बाद दुर्ग के विशाल कक्ष में जन सभा आमंत्रित की जा रही है। उसमें सभी जातियों के मुखियों, श्रेणियों के प्रधान एवं बयोबृद्ध नागरिक आमंत्रित हैं। राजकुमार एवं महारानी भी जन सभा में उपस्थित होगी।

एक प्रहर बाद विशाल कक्ष में सभा प्रारम्भ हुई। महामंत्री ने राजा की आज्ञा से बात प्रारम्भ की। ''प्रजा जनों राजा प्रजा का पिता एवं पालक होता है उसके हितों की रक्षा उसकी नैतिक जिम्मेवारी होती है कभी प्रजा के हित के लिये उसे प्रजा को पसंद न आने वाले निर्णय लेने पड़ते हैं। ऐसे ही एक निर्णय के कारण आज महोबा की प्रजा उदास एवं दुखी दिखलाई पड़ रही है। सबसे प्रबल विरोध तो राजकुमारी चंद्रावलि का है जो विगत तीन दिनों से अन्न जल त्यागे हुये हैं। मुझे राजाज्ञा हुई है कि मैं उन परिस्थितियों को स्पष्ट कर दूँ जिसके कारण आप लोगों को कीरत सागर में अपनी परम्परा का पालन करने से रोका जा रहा है। हमारे साम्राज्य के उत्तरी भाग में दिल्ली पति चौहान ने धोखे से अधिकार कर लिया है। वे हमारे सगे सम्बन्धी थे इसलिये हम उनकी ओर से निश्चिंत थे। इस आक्रमण से हम आवाक रह गये हैं अफवाह है कि सामंत खेत सिंह तो महोबा घेरने का इरादा कर रहा है। महोबा के बीर सैनिक उसका उचित सत्कार करेंगे। पर निरीह नागरिकों को मौत के मुंह में नहीं डाला जा सकता है। अगर राजा नागरिकों को कीतर सागर में मेला लगाने और कजलियों को विसर्जित करने की आज्ञा देता है तो उस भीड़ को सुरक्षा देना राज्य का नैतिक कर्त्तव्य होगा। शत्रुओं द्वारा अव्यवस्था फैलाने या आक्रमण होने की स्थिति में महोबा के सैनिक बच्चों स्त्रियों को न तो पूर्ण सुरक्षा दे पायेंगे और न ही शत्रु को उचित पाठ ही पढ़ा पायेंगे। यह भी सच है कि मेले में अधिक संख्या बच्चे और स्त्रियों की होती है। रणनीति कहती है कि नागरिकों को सुरक्षित रखकर ही युद्ध लड़ा जाये। मैं सोचता हूँ कि आप सब सम्राट की राय से सहमत होंगे।

''नहीं'', राजकुमारी जोश में खड़ी हो गई। चंदेल राजकुमारी शत्रु के डर से अपने ही घर में बंदी नहीं रह सकती है। हम शत्रु के डर से अपने दरबाजों से बाहर न जा सकें। इससे अच्छा है कि हम शत्रु से लड़कर मर जायें। मंत्री महोदय। आपने शत्रु को सीमा में ही क्यों नहीं रोका। आपने क्यों नहीं सिरसा के खोये राज्य को पाने का प्रयास किया। जब चौहान की विशाल वाहिनी महोबा घेर लेगी तो कहाँ छिपोगे गुखार पहाड़ को कन्दराओं में या मदन सारग के पानी में? जिस जनता में साहस नहीं उसे तो अपमानित होना ही है। मुझे लगता है कि महोबा की जनता को तो अपमानित होना ही है। लड़ते हुये मरने की आज्ञा तो महाराज से ही लेनी पड़ेगी पर आमरण अन्सन पर प्राण त्यागना तो मेरा अधिकार है। मैंने अपना निर्णय कर लिया है। आप अपना निर्णय करते रहें ये यह कहकर राजकुमारी बैठ गई।

अब महिल खड़ा हुआ बोला ''मुझे तो नगर निवासी शक की निगाह से देखते हैं पर आज वेशरम बन कर बोलने के लिये खड़ा हो गया हूँ। मुझे लगता है आप लोग भय का भूत बना रहे हैं। मुझे राजकुमारी की बात मानने में कोई खतरा नहीं दिखता है। कोई भी विवेकी राजा बरसात में विजय अभियान को नहीं निकला करता है। हो सकता है कि श्वेत सिंह या पज्जन राय की हरावल की २००–३०० सैनिकों की छोटी सी टुकड़ी इस नगर के आसपास हो या मेला देखने आई हो तब भी घबराने की कोई बात नहीं है। इस छोटी सी टुकड़ी में इतना साहस नहीं हो सकता है कि वह चन्देलों की राजधानी में घुसकर उनके सैनिकों से टकराने का जोखम उठाये और पराजित हो अपने

सम्राट को पराजय की अपकीर्ति दें। अगर महाराज ने मुझसे राय ली होती तो मैं कजलियों के मेले को स्थगित करने की सलाह न देता हमें जन भावना का आदर करना चाहिये और उनके मनोबल को नहीं गिरना चाहिए। आगे जैसी महाराज की मर्जी। यह कहकर वे चुपचाप बैठ गये।

सोच विचार के बाद राज्य परिषद ने निर्णय लिया कि कजलियां कीरत सागर में विसर्जित की जायेंगी। कजलियों के घट एक साथ ही चलेंगे। सबसे आगे सैनिकों की एक टुकड़ी होगी। वे कीरत सागर की ओर आने वाले कुल पहाड़ मार्ग एवं चरखारी मार्ग की रखवाली करेंगे। बीच में कजलियों के लिये कन्याओं एवं गायकों का समूह होगा, पीछे शस्त्रधारी नागरिक चलेंगे। कुछ सैनिक पहाड़ की चोटी पर रहेंगे संध्या तक कजलियां विसर्जित कर नागरिकों को वापिस हो जाना चाहिये।

देखते ही देखते कुछ समय बाद राज महल के सामने शीश पर जवारे रखे स्त्रियों का विशाल समूह एकत्र हो गया। कोई चंदेरी की साड़ी पहने थी तो कोई बनारसी लहंगा। देवी गीत गाये जा रहे थे। उदास और दुर्बल राजकुमारी महलों से निकल पालकी पर बैठी। जलूस गीत गाता हुआ नगर से बाहर निकल कीरत सागर के मैदान में पहुंच गया। राजकुमारी पालकी से उतरी और सरोवर के तट पर बने शिवालय में पूजा अर्चना के लिये गई। अचानक दूर से दक्षिण दिशा से घोड़ों के पैरों से उड़ती धूल दिखलाई दी और रायपिथौरा की जय का जयघोष सुनाई पड़ा। दक्षिण दिशा पर तैनात महोबा के सैनिक सतर्क हो गये। सशस्त्र नागरिकों ने व्यूह रचना कर जलूस को अपने घेरे में ले लिया। स्त्रियों का आनन्द तिरोहित हो गया वे घबड़ाने लगी। सैनिकों ने राजकुमारी को पालकी के अन्दर बैठने का आग्रह किया। राजकुमारी ने साहस नहीं खोया। वह स्त्रियों को साहस बंधा रही थी। थोड़ी ही देर में महोबा के सैनिकों और दिल्ली के सैनिकों की तलवारें टकराने लगी। अचानक उजर की ओर से शत्रु पक्ष का जयघोष सुनाई पड़ा। परिस्थिति भयंकर हो गई। महोबा की सैना दो ओर से घिरने लगी। महोबा के सैनिक जीजान से शत्रु पक्ष के सैनिकों को आगे बैठने से रोकने का प्रयास कर रहे थे। स्त्रियां घबराहट में डर कर यहां वहां भागने लगी। राजकुमारी पालकी से बाहर आ गई तीन दिन की भूखी–प्यासी राजकुमारी दृढ़ता की मूर्ति दिख रही थी। अचानक उत्तर की ओर से आती सैना की बाढ़ रुक गई। मेला में घूमते हुये गोरख पंथी साधुओं की जमात ने त्रिशूल बल्लम भालों और चमीटों से शत्रु सैना पर आक्रमण कर दिया।

इस नई आफत से चौहान सैनिक घबड़ा गये तभी मेले में घूम रहे दस नाथ साधू राजकुमारी की पालकी के समीप आ गये। उनमें से एक बुजुर्ग से सन्यासी ने घबड़ाई हुई स्त्रियों से कहा ''बेटियों घबराओं मत हम तुम्हारी रक्षा के लिये तैयार हैं। कोई भी शक्ति क्यों न हो तुम्हारे आनन्द में विघ्न नहीं डाल सकेगी। हम गोरखनाथ के शिष्यों ने धर्म पालन करने वालों की रक्षा को ही व्रत लिया है। शत्रु तुम्हारा बाल–बाँका भी नहीं कर सकेगा। बुजुर्ग सन्यासी ने तरुण सन्यासियों को राजकुमारी के पास रहने का आदेश दिया और कहा उद्वव और लाखन तुम यहीं रहो मैं साथियों के साथ जाकर अधर्मियों की खबर लेता हूँ। राजकुमारी ने उद्वव दास को देखा और चौक गई। जब उसने बुजुर्ग सन्यासी के साथ एक दूसरे सन्यासी को देखा तो वह जोर से आल्हा भइया कहकर रो पड़ी। उद्ववदास बोल पड़ा 'क्या किसी की याद आ गई बहिना! रक्षा बंधन है क्या बहिन के भाई खो गये हैं? राजकुमारी फूट फूट कर रो पड़ी ''हाँ मेरे सगे भाई से बढ़कर भाई खो गये हैं मैं किसी को राखी नहीं बांध पाई।

''ले बांध दे राखी मैं भी तो तेरे भाई जैसा हूँ।'' कहकर हँस पड़ा उद्ववदास और बोला ''चल कजलियां विसर्जन कर और इतनी जोर से गा कि तेरी आवाज में तलवारों की आवाजें गुम हो जायें। हम लोग इसलिये जिन्दा हैं कि तुम्हारी तानें न टूटनें पायें हाँ, कजलियां देना न भूल जाना। कीरत सागर बांध पर दोनों पक्ष के सैनिक घनघोर युद्ध कर रहे थे। सिपाहियों की लाशें गिर रही थी। पर शत्रु सैनिक सरोबर के पास नहीं आ पा रहे थे। सन्यासियों के पराक्रम के सामने दिल्ली के सैनिक नहीं टिक सके।

अब वे प्राण बचाकर भागना चाहते थे पर भागकर कहां जाते। वे सन्यासियों के हाथों मारे जाने लगे। देखते ही देखते शत्रु पक्ष का अंत हो गया। युद्ध समाप्त हो गया दिल्ली की सेना के सैनिक या तो मारे गये या घायल हो गये। कीरत सागर के बांध ा पर फिर से महिलायें कजलियां विसर्जित कर रही थीं और मस्त होकर गीत गा रही थी। उद्वव बोला ''ला कजलियां दे बहिन! आवाज सुनकर राजकुमारी फिर चौकी और बोल उठी ऊदल भइया'। चुप पगली। सन्यासी सबके भाई हैं और किसी के भी नहीं। जा भगवान तेरा भला करे। ऊदल ने प्यार से कहा।

संकट टल जाने एवं विजय की खुशी में नागरिक गाते बजाते नगर की ओर लौटे। सारे नगर में सन्यासियों की वीरता की चर्चा थी। नागरिक इसे ईश्वरी कृपा मान रहे थे कुछ इसे मनिया देव का प्रताप समझ रहे थे। राजकुमारी उदास थी। वह सीधे मां की गोद में गिरकर रोने लगी और बोली मां मेरी रक्षा करने वाले सन्यासियों में एक आल्हा और दूसरे ऊद्दल भइया से मिलते थे। मां आवाज भी ऊदल जैसी ही थी मां वे आल्हा और ऊदल भइया ही थे। उन्होंने मुझसे राखी भी बंधवाई थी।'' महारानी सब समझ गई उसने ठन्डी सांस ली और राजकुमारियों के सिर पर हाथ फेरने लगी। राजा परमाल ने भी सन्यासियों की चर्चा सुनी। उसने दूसरे दिन सन्यासियों का सम्मान करने के लिये उन्हें आमंत्रित करने के लिये सेनापति, पुरोहित एवं महामाल्य को भेजा। पर कीतर सागर के बांध पर सन्यासियों का कहीं पता नहीं लगा वहां तो थी धूनी की राख।

– कटरा बाजार पुराना नगर पालिका चौराहा
टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली भाषा के जोड़े वाले शब्द

- डॉ. डी.आर. वर्मा

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा बुन्देली कही जाती है। बुन्देली के कुछ विद्वान बोली को भाषा नहीं मानते परन्तु समस्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र की भाषा निश्चित रूप से बुन्देली है। इसके क्षेत्रीय रूप अनेक हैं। ब्रज, कन्नौजी, भदावरी भाषा मिश्रित बुन्देली है। यह भाषा एक सुविस्तृत क्षेत्र की लोक भाषा है। एक कहावत के अनुसार ''कोस कोस पै बदले पानी, चार कोस पै बानी।'' अर्थात् अपने किसी भी स्थान से मील दो मील चलने पर पानी में बदलाव मिलता है तथा चार कोस या आठ कोस पर भाषा में आंशिक परिवर्तन अवश्यमेव आ जाता है। बुन्देली भाषा के अनेक रूपों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है अपितु यह एक स्वाभाविकता है। यह सब भाषायें हिन्दी भाषा की उपभाषायें है। बुन्देली भाषा का नाम कहीं जातिगत आधार पर तो कहीं स्थान या देशगत आधार पर नामकरण हुआ है। जैसे जातिगत बुन्देली में लोधयाती, राठौरी, भदावरी, बनाफरी भाषी हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद आदि क्षेत्रों की भाषा की शुद्ध बोली भाषी क्षेत्र मानते हैं। बुन्देली भाषा बोल चाल की भाषा या जनभाषा से बनी है। जिसे लोक भाषा भी कहते हैं। बुन्देली की भाषा में जोड़ा करने वालों का अपना विशेष महत्व है। यह शब्दों के जोड़े दैनिक प्रयोग की भाषा में व्यवहार रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन जोड़ों के प्रयोग से भाषा में मौलिकता के साथ साथ अनूठी प्रभावोत्पादकता व मार्मिकता आ जाती है। उदाहरणार्थ बुन्देली भाषा के इन युग्म शब्दों का रसास्वादन लीजिये।

परस्पर विपरीत जोड़े –

बुन्देली भाषा के ऐसे दो शब्दों का जोड़ा जो आपस में विरोधी शब्दों से बना है। जैसे ओंदौ–सूदौ, दिन–रात, हरौ–लीलौ, अखरत–बूड़त, लरका–बिटिया, धूप–छांव, ऊरत–अथउत, आकाश–पाताल, तत–सीरौ, छम्मा–छैंयाँ, छोटौ–बड़ौ, आदि हजारों विरोधी शब्दों के युग्म शब्द हैं।

शब्द की पुनरुक्ति के जोड़े –

दो शब्दों का प्रयोग होता है परन्तु एक ही शब्द के दो वार प्रयुक्त करते हैं यथा चलत–चलत, डरी–डरी, घरी–घरी, परी–परी, खड़ौ–खड़ौ, परौ–परौ, मरो–मरो, भरो–भरो, अड़ो–अड़ो, कड़त–कड़त, खुटत–खुटत, जड़त–बड़त, पड़त पड़त, टंगी–टंगी, भगी–भगी, लगी–लगी आदि अगणित शब्दों के जोड़े हैं।

समानार्थी शब्दों या एक प्रकार के भाव वाले जोड़े – कुछ जोड़े वाले शब्दों में दोनों शब्द एक भाव या एक तरह के भाव लिये रहते हैं जिन्हें दैनिक जीवन में सभी प्रयोग करते देखे जाते हैं। जैसे आंदरौ–धूंधरौ, सरौ–फपूंड़ौ, लात–थपैया, कनवा–लूला, कन्टा–बूचा, खून–खरावा, दशरयें–दिवाई, पेड़–पौदा, लात–घूंसा, नाज–कनूका, खेत–खरयान, बाल–भुंटिया, ईंदन–कंडा, गोबर–कूरा, लकड़ी–फाटा, साग–भाजी, कूरा–कर्कट, उन्ना–लत्ता, पान–बीड़ी, दाहुन–मों, घैरा–घूंसा, खाट–पिड़ी, खाड़ी–खपरा, नोंन–तेल इत्यादि।

सार्थक व निरर्थक शब्दों का जौड़ा –

बुन्देली भाषा में कुछ शब्दों के ऐसे जोड़े व्यवहृत होते हैं जिनमें एक शब्द तो बहुत सार्थक होता है तथा दूसरा शब्द निरर्थक जुड़ा रहता हैं जैसे–न्योते–हकाई, भींजे–गांजें, पई–पावनों धौल–थपैया, माछी–कुची, काट–कूट, भूंज–भांज, नोंक–झोंक तिड़ी–विथार, काड़–मूस, सोंट–विसवार, वैर–वाव, देखा–परखी, फींच–कांच, लांच–घोंच, चीकनों–चांदनों, अफरा–तफरी, गोड़–गथना, झक्कू–पक्कू, ऊदम–धौरा अड़ी–पड़ी, आड़–टेड़, इत्यादि।

एक ही शब्द संज्ञा विशेषण के जोड़ों के शब्द –

पड़ो–पड़ाव, मरो–मराव, फरो–फराव, चरी–चराई, कटी–कटाई, ठड़ी–उड़ाई, उठो–उठाव, सनो–सनाव, खवो–खवाव, दिखी–दिखाई, सिली–सिलाई, भरी–भराई, दबे–दबाव, बुसी–बुसाई आदि।

लोकोक्ति परक जोड़े शब्द –

आंटौ–साटौ, साड़ौ–गाड़ौ, अत्तू–वत्तू, कैवे–सुनवे, दंद–फंद, ऊट–पटांग, अंट–शंट, नंगा–झोरी, हलके–पतरे, कुटे–मरे, रंत–भौर, खटा–खट, सोंज–मांज, इत्यादि बहुत शब्द हैं।

बुन्देली के ऐसे जोड़े वाले शब्दों के अतिरिक्त हजारों ऐसे मार्मिक शब्द हैं जो बड़े प्रभावशाली तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होते देखे जाते हैं यथा – चेंथरी, भतयान, कन्न, मुराटौ, नगनया, बवोचा, भुवरिया, उंचम, उसरेंट, खकेट, चहींट अठेटौ, अनरूवा, मुरैया, अत्त, सत्तरया, झुकाझुकौ, झकमकौ, सुजासुजौ, बवोचा, वसीट, भेंमला, दोंदरा, दमचौरौ, कुनवाई, तरयावन, तक्कभक्क, गुलगुला, चिरैयां, सुवा, ड्योढ़ी, ढिंगरे, मूंदी आदि। इसके अतिरिक्त लुक्क लुक्क, फुक्क फुक्क, छुक्क छुक्क, अक्क वक्क, चत्योर, कांखरी, रागें, टेंवनी, सुदयावै, पड़ादकेल, ऐंचकभेंचा, पाड़, चैंरिया, बंदरा, डूंड़ा, लम्पी, धौरी, मंजोला, नासक, दासौ, चुक्का, घूंघट, लाइन लूगर लांगूटौ, बदरौखौ, कोंदलौ, मरवाखौरौ, मौझामूसर आदि कितने ही गिनाये जा सकते हैं।

– ग्राम पोस्ट स्यावरी, झाँसी (उ.प्र.)

ओरछा छबि छटा

- पं. शिव सहाय दीक्षित

गणेश कुँअर रानी महाराज मधुकर शाह की,
लै आईं अवध राज सो ओरछा पधार दये।
राम जन्म भूमि श्री अयोध्या के नाथ हरि,
"राम राजा ओरछा" के नाम सों विख्यात भये।।
यवनासुर बावर ने करायौ विध्वंस मन्दिर कौ,
सन्तन देव–विग्रह सब सरजू में लुका लये।
बीतें कछुकाल श्री राम लला रानी सँग,
छोड़कें अयोध्या धाम ओड़छा में आ गये।।१।।

सरजू सरिस वेत्रवती नित्य ही पखारत पाँव,
मानहु मन्दाकिनी बहति भरे चाव सों।
सगवन कौसघन विपिन छाय रह्यौ चहूँ ओर,
ओड़छा में चित्रकूट मनु बसत बड़े भाव सों।।
राम के प्रताप सों शुभ धाम भयौ ओड़छा,
दर्शन हित नर–नारी नित आवत उछाह सों।
भये ओड़छा, अयोध्या अरु चित्रकूट एकमेक,
महिमा यह पाई है श्री राम के प्रभाव सों।।२।।

बाहुबल सों जीत कें महाराज रुद्र प्रताप नें,
स्थापना करी सशक्त ओड़छा के राज की।
मधुकर शाह राजा औ, रानी कुँअर गणेश ने,
ओरछा में थापी लाय मूरत रघुराज की।।
वीर सिंह देव ने इक्यासी मन स्वर्ण दियौ,
विश्रामघाट मथुरा, करी सेवा वृजराज की।
मन्दिर अरुमहल कूप सरवर निर्माण करे,
रक्षा करी धर्म की औ, हिन्दुअन की लाज की।।३।।

ओड़छा के केशव की बड़ाई कौन कीजिये,
अनेकन बिध छन्दन की छटा छिरकायी है।
कविता रूप वनिता कौ श्रृंगार कियौ सोलह विध,
ता में अलंकरण की अनोखी छवि छायी है।।
काव्य की कला के परखैया गुनैया वे,
नव रस सों सराबोर कविता रचायी है।
ओड़छा के राजा श्री वीर सिंह बुन्देला रहे,
तिनके दरबार की कवि शोभा बढ़ायी है।।४।।
जनम भूमि ओड़छा कौ नाम जस अमर कियौ,
बुन्देली सरस बोली में कविता रचायी है।
कवि प्रिया रसिक प्रिया औ, राम चन्द्रिका प्रभृति,
आठ ग्रन्थ कवि ने रच प्रतिभा दर्शायी है।।
केशव के गुनन कौ वरनन नहिं करत बने,
सूर और तुलसी सों होड़ उन लगाई है।
बोली धर्म देश जाति भाषा कौ मान रखो,
काव्य कला आँगन में शारदा नचायी है।।५।।

सोलह सौ अठारह शुभ सम्वत् श्री विक्रम कौ,
ताहू ने केशव कौ जनम जस पायौ है।
पितामह श्री कृष्णदत्त पिता श्री काशीनाथ,
ओड़छा नगर में बड़भागी सुत पायौ है।।
महाराज मधुकरशाह के राजगुरू काशी नाथ
केशव कौं ओड़छा में अध्ययन करायौ है।
प्रतिभा के धनी सब गुनन के गुनी रहे,
कवि केशव ने अनूठौ दीप कविता कौ जलायौ है।।६।।

विक्रमाजीत सिंह महाराज छोड़ ओरछा,
आय बसे टीकमगढ़ में रजधानी बनाई है।
पूरब में पयस्विनी दशार्ण बहे सीमा पै,
पश्चिम में सीमा सरित जामनी खिंचाई है।।
सो जाय मिली वेतवा सों ओड़छा के धाम में,
उत्तर में झाँसी क्षेत्र धाक निज जमाई है।
दक्षिण में महरौनी कौ क्षेत्र बड़ौ उपजाऊ,
राज्य ओड़छा की यह सीमा लखाई है।।७।।

महाराजा प्रताप सिंह वृषभान कुँअर रानी जू,
अयोध्या में कनक भवन मन्दिर बनवार्या है।
नेपाल के जनकपुर में जानकी महल रचो,
सिया जू के मायके में धर्म–ध्वज फहरायौ है।।
महेन्द्रगढ़ कोठी रच बाँधो महेन्द्र सागर कों,
महेन्द्र बाग उपवन सों टीकमगढ़ सुहायौ है।
वृन्दावन बाग और ताल मय जुगल निवास,
प्रताप सिंह महाराज कौ प्रताप लहरायौ हैं।।८।।

उत्तर में ओरछा तस दक्षिण में कुण्डेश्वर,
भगवान भूत भावन शिव शंकर विराजमान हैं।
वाणासुर पुत्री सो ऊषा के आराध्य शिव,
रक्षक हैं जगत के वे कल्याण के निधान हैं।।

पावन जमड़ार सरित शिव के पखारत पाँव,
भक्तन की भीर करत हर कौ गुण–गान हैं।
संस्कार सब प्रकार मिल पंडित पुजारी करें,
आशा करत पूरी सब कुण्डेश्वर भगवान है।।९।।

पूर्व राज्य ओरछा की रजधानी टीकमगढ,
संस्कार धर्म के सब ओर ही लखात हैं।
देवी और देवतन के मन्दिर हैं जहाँ तहाँ,
नारी नर श्रद्धा सों पूजें भाँत भाँत है।।
अहार जी पपौरा जी पुरातन जैन तीर्थ बड़े,
जैन बन्धु नित्य जहाँ दर्शनार्थ जात हैं।
उत्सव महोत्सव जहाँ तहाँ होत रहत,
सत्य औ अहिंसा के गीत गाये जात हैं।।१०।।

मुनि जन के चातुर्मास भक्ति और श्रद्धा सों,
जैन बन्धु कौ समाज उत्साह सों कराउत हैं।
सम्प्रदाय वर्ग–वाद छोड़ सब पाखण्डवाद,
भेदभाव भूल सब धर्म–पथ बताउत हैं।।
मुनि जन कौ संग मिलत लोग सब मिलत जुलत,
दूर दूर गाँवन सें जन हिलमिल कें आउत हैं।
धर्म प्राण जनता यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र की,
धार्मिक त्योहार पर्व प्रेम सों मनाउत है।।११।।

संस्कृति धर्म कौ धनी राज्य ओड़छा,
गाँव गाँव मठ मन्दिर पूर्व के निर्माण हैं।
ऊमरी और मड़खेरा के सूर्य मन्दिर देखत बने,
अहार जी पपौरा जी जैन तीर्थ महान है।।
देवी हनुमान शिव विष्णु के अनेक थल,
जहाँ तहाँ पूजित सब जन जन के प्राण हैं।
बड़े बड़े ताल बँधे पूर्व के चन्देलन के,
तिन सों सिंचाई होत क्षेत्र कृषि प्रधान हैं।।१२।।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र कौ हृदय क्षेत्र ओरछा,
ताकौ इतिहास कछु संक्षेप में बतायौ है।
जन जन कौ धर्म क्षेत्र सन्तन कौ कर्म क्षेत्र,
ओरछा महान कौ संक्षिप्त जस गायौ है।।
रीति–प्रीति बोल–चाल मान–पान पूरव कौ,
पुरखन ने धर्म कर्म आजु लों बचायौ है।
'शिव सहाय' हाथ जोड़ विनती करत जन जन सों,
संस्कृति बचाइयौ जौ विषम समय आयौ है।।१३।।

— से.नि. डिप्टी कलेक्टर
भैरव जी का मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव २००५ के कार्यक्रम

17 फरवरी 2005 गुरुवार	उद्घाटन, बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं कुश्ती (दंगल) प्रतियोगिता
18 फरवरी 2005 शुक्रवार	अश्वनृत्य प्रतियोगिता
19 फरवरी 2005 शनिवार	बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता स्कूली बच्चों के बुन्देली आधारित कार्यक्रम एवं बुन्देली पोषाक प्रतियोगिता
20 फरवरी 2005 रविवार	बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता बुन्देली नाटक प्रतियोगिता एवं कछयाई गायन, चमरयाई बैठक
21 फरवरी 2005 सोमवार	दिवारी (बरेदी नृत्य), दलदल घोड़ी नृत्य, रावला, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, गारी, बनरे, सैर प्रतियोगिता
22 फरवरी 2005 मंगलवार	ढिमरयाई, बहुरूपिया, कांडरा, कार्तिक गीत, गोटें, सोहरे, दादरे, बिलवारी, फाग, तथा आल्हा गायन प्रतियोगिता
23 फरवरी 2005 बुधवार	समापन समारोह, राई तथा बधइया नृत्य एवं अन्य प्रतियोगिताएं।

जौ तिल ठोड़ी पै पर जातौ और गजब कर जातौ
मृतलोक सें त्यागन करकें देव लोक मन भातौ।
इन्द्रपुरी में जाय कहुं तो कामदेव सरमातौ।
मुख की दुत दूनी बढ़ जाती, कवि उपमा न पातौ।
जाकें मिलतो मनभावन सें, नैन में नैंन मिलातौ।

निर्गुण कुबरी के सिर मारौ हमें स्याम है प्यारौ।
हम हैं उनके वे हैं हमरे, दुविधा नहीं विचारौ।
खोलो पलक नैन के दोऊ घट–घट श्याम निहारौ।
आठो याम बसत प्यारे जू, सुख से होत गुजारौ।

प्रस्तुति – भगवान दास सभापति, कुशवाहा समाज छतरपुर

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की साहित्यिक दृष्टियाँ

- कु. आभा सिंह

सृजनात्मक विनयशीलता के धनी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने वर्षों बुन्देलखण्ड के कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) में रहकर वहां के साहित्यिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक वैभव को सृजनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया। वे 'मधुकर' पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जागृत कर स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माण का वातावरण बनाते रहे। संघर्ष से जूझते हुए भी मानवता का संदेश देते रहे। चतुर्वेदी जी ने 'मधुकर' के संपादकीय में स्वयं लिखा है – 'पुरुषत्व दृढ़तापूर्वक दुखों का मुकाबला करने में है, न कि उनके सार्वजनिक प्रदर्शन में। मनुष्य इस संसार में संघर्ष करने के लिए उत्पन्न हुआ है और सात्विक आनंद देने तथा लेने के लिए। इसलिए वे ही अनुभूतियाँ लिपिबद्ध होनी चाहिए जो जीवन संग्राम में दूसरों को सहायक हों और करुण रस का प्रयोग भी अन्यायों तथा अत्याचारों का अंत करने के लिए ही होना चाहिए।'' चतुर्वेदी जी के कथन से स्पष्ट है कि वे व्यक्ति की प्रतिभा संघर्षशील चेतना से आनन्द की सृष्टि मानते हैं। सृष्टि से पूर्व सर्जक को अनुभूतियों के अनेक आयाम पार करने होते हैं। कुछ तो उसकी निजी जिंदगी को अत्यधिक झकझोरते हैं, पर, जब वह रचनात्मक धरातल पर सक्रिय होता है, तब, वही संघर्ष और वेदना असीम चेतना के साथ उसका सम्बल बन जाती है। उसका सात्विक भाव उद्वेलित होने लगता है। वह जीवन और जगत के मध्य पल्लवित तथा विकसित होने वाले आर्द्र प्रेम को तलाश करता है। उसके अन्तर्मन का प्रेमभाव व्यक्ति, प्रकृति और राष्ट्रीय–चेतना से स्निग्ध होकर विराट भाव को समेट लेना चाहता है। प्रेम की यही सात्विक अनुभूति उसकी सृष्टि को सौन्दर्य से जगमगा देती है। वह सुख ही नहीं दुख के क्षणों में भी जीवन मूल्य खोजता है। उसके लिए नैसर्गिक, सौन्दर्य भी तब तक सार्थक नहीं होता, जब तक जनसामान्य के पोषण का आधार नहीं बन जाता। अतएव चतुर्वेदी जी ने प्राकृतिक सौन्दर्य को राष्ट्रीय चिंतन का आधार बनाकर प्रस्तुत किया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बनारसीदास चतुर्वेदी की साहित्यिक साधना और कर्मपथ में संघर्ष तथा लोकमंगल की भावना प्रमुख थी। सान्दर्य से आकर्षण सहज मानव की प्रवृत्ति है। भिन्न–भिन्न आर्थिक व्यवस्था के लोग इसे अपनी दृष्टि से देखते और उसका सुख भोगते हैं। साहित्यकार की सौन्दर्य साधना में अखण्ड सौन्दर्य की चेतना विद्यमान होती है, इसलिए वह उसके दर्शन से अघाता नहीं है। चतुर्वेदी जी ने प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शन को पाठ्यक्रम में आवश्यक माना है। अपना प्रकृति प्रेम व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है – ''प्रकृति प्रेम हमारे लिए एक नवीन चीज है। अन्य लाखों भारतीय विद्यार्थियों की तरह हमारी शिक्षा भी अत्यन्त दोषपूर्ण रही। छह वर्ष हिन्दी और सात वर्ष अंग्रेजी हमने पढ़ी पर इन तेरह वर्षों में किसी अध्यापक ने हमें प्रकृति प्रेम का पाठ नहीं पढ़ाया। न किसी ने तैरना सिखाया। न वन–उपवन की सैर कराई, न वृक्ष जगत अथवा पशु–पक्षियां से परिचित कराया और न यही बतलाया कि संसार में अपने जीवन को सुखप्रद बनाने के लिए किस प्रकार छोटी–छोटी चीजों से आनन्द लिया जा सकता है।' प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की अनुभूति ने चतुर्वेदी जी के हृदय में बुन्देलखण्ड के प्रति इतना प्रेम भर दिया कि उन्होंने दार्जिलिंग जाने का कांग्रेस का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था। बुन्देलखण्ड में प्राकृतिक सौन्दर्य का अक्षय भण्डार है। प्रकृति की यह शस्य–श्यामल कमनीयता, नदियों का तरल रजत प्रवाह, वन्य–पशुओं का उन्मुक्त विहार असीम आनन्द उद्वेलित करता है। यहाँ आकर कल्पनाशक्ति को नव–स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है। यह अनुपम छवि वर्षों बनारसीदास को बांधे रखती है। उनकी संवेदना को संस्कारित करती है। उन्होंने लिखा है – ''बुन्देलखण्ड के हम अत्यन्त ऋणी हैं, क्योंकि इस प्रांत ने ही हमें प्रकृति प्रेम का पाठ पढ़ाया है। अपने प्रसाद से अथवा सौन्दर्य भावना से अविकसित रह जाने के कारण हमने कितने ही मनोरम दृश्यों से अपने को वंचित रखा।

नदियों के प्रति प्रेम हमारे मन में इसी प्रांत में आकर जागृत हुआ। माता जमडार की गोदी में तो हम नित्य प्रति खेलते रहे हैं, और जमनेर के प्रति भी न जाने कितनी बार अपनी भक्ति का प्रदर्शन कर चुके हैं।'' बुन्देलखण्ड की सरिता प्रवाह में उन्हें ममतामयी मां की थपकियाँ सुनाई देती थीं और आस्था की तन्मयता थी। उनके लिए नदियों का महत्व इसलिए भी है कि वे मानवीय–भावना की सहज श्रोत और उसके सरस प्रवाह की प्रतिमूर्ति थी। बुन्देलखण्ड की अनेकवर्णी प्रकृति का चित्रांकन चतुर्वेदी जी ने सर्वोत्तम–दृश्य नामक आलेख में किया है।

गंगा, बेतवा, चंबल और मंदाकिनी की परिसीमाओं को स्पर्श करने वाले बुन्देलखण्ड का अनूठा आध्यात्मिक महत्व है। इस क्षेत्र की उदारता और संस्कृति की महत्तम परम्पराएं अतीत से लेकर वर्तमान तक मनुष्य को गहरे रूप में प्रमाणित करती रही है। पर्वत–श्रृंखलाओं की हरित–आभा, पग पखारते निर्झर, तरल–रजत, धार से श्रृंगार करती नदियाँ और सघन वृक्षावलियों के अवगुंठन के बीच झिलमिलाती स्वर्ण–रश्मियों की आभा, श्रीराम की गहरी आसक्ति का कारण बन गयी थीं।

चतुर्वेदी जी के चिंतन का आधार राष्ट्रप्रेम था। निष्पक्ष पत्र

का संपादन और राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का उद्देश्य तथा अखण्ड भारत के स्वप्न संकल्प ने उनकी दृष्टि को नया क्षितिज दिया। वे समाज की दबी हलचलों को रागात्मक चेतना के साथ प्रस्तुत करते रहे। स्वाभाविक संवेदना को उद्वेलित करने का प्रयास किया। प्राकृतिक परिवेश और विशिष्ट संस्कारों की गति से निर्मित उज्ज्वल भारत की छवि का दिग्दर्शन कराते रहे हैं। जो भारतीय संस्कृति से संश्लिष्ट राष्ट्र के सौन्दर्य को प्रस्तुत किया। जहाँ बसने की कामना जनमानस को व्याकुल कर दे। यथा भारतवासी चित्रकूट को पवित्रतम स्थल मानते हैं। मन्दाकिनी से मातृत्व का रिश्ता है, स्फटिक शिला से आत्मीयता है, कामदगिरि में परिक्रमा का उल्लास है। यहाँ का एक–एक पत्थर त्याग, समर्पण और भ्रातृत्व प्रेम का साक्षी है। राजसुख कूप की संज्ञा पाता है। यहाँ भक्ति की सहज आत्मशक्ति का बोध है। जो भारत की दीर्घजीवी संस्कृति का मूलबिन्दु है। जिसकी प्रबल साधना से तुलसी की व्यापक दृष्टि ने सारी सृष्टि से ब्रह्म के दर्शन किये थे। प्रेम और सौन्दर्य की अनूठी छवि चित्रकूट दर्शन से मिलती है। चित्रकूट की प्राकृतिक संपदा और आध्यात्मिक महत्व पर मुग्ध होकर चतुर्वेदी जी ने लिखा है – ''पैंतालिस वर्ष तक रामायण का निरन्तर पारायण करने के बाद चित्रकूट के दर्शन करने का शुभ अवसर मिला था। भक्ति में जो असाधारण बल है उसका अनुमान हम उसी दिन कर सके।''

चतुर्वेदी जी ने 'मधुकर' पत्रिका में आंचलिक सौन्दर्य को अत्यधिक उभारा है। लोकजीवन की समस्याओं को रेखांकित किया है। उनकी पत्रकारिता में जीवन मूल्यों की सहज प्रतिष्ठा दृष्टिगत होती है। उनके प्रतीक और परिवेश में जीवन को नयी दृष्टि से देखने की चेतना विद्यमान है। आचरण संहिता में जनतंत्र की साझेदारी और जागरूकता का संकल्प हैं एक ओर उन्होंने बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य को सराहा है तो दूसरी ओर कश्मीर की सुषमा और दार्जिलिंग की आभा में पूँजीपतियों के समृद्धि के प्रत्यक्षीकरण से नकारा भी है। उनकी संवेदना में शोषित पीड़ित की व्यवस्था है और ऐश्वर्य सम्पन्न वर्ग के प्रति आक्रोश भी है। उनकी चिंतनधारा में लोकजीवन के प्रति गहरी आत्मीयता और अपने परिवेश से संश्लिष्टता है। काश्मीर, दार्जिलिंग आदि स्थानों के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अन्त में चतुर्वेदी जी ने लिखा है – ''इन सब प्राकृतिक दृश्यों का जिक्र करते हुए अपने मन में एक बात बार–बार खटकती है। वह यह कि इस प्रकार की सौन्दर्यानुभूति कितने कम भाइयों को प्राप्त है। इससे हमारा मजा किरकिरा हो जाता है और यह प्रतीत होने लगता है कि यह प्रकृति दर्शन बड़े आदमियों का चोचला है, जिनका पेट भरा हुआ हैं उनका मनोरंजन है और है साधनहीनों की पदाधीनता पर एक कठोर व्यंग्य। हमारी अन्तरात्मा हमें फटकारती है। 'जनाब! आपकी इन अठखेलियों का आधार है गरीबों का शोण।'

– भारत भवन, पड़ेरा, रीवा (म.प्र.)

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
INCOME & EXPENDITURE A/C FOR THE YEAR 2003-2004

EXPENDITURE	Rs.	Rs. (R)	INCOME	Rs.	Rs. (R)
Bundeli Utsav Expenses		608,948=00	Grant Received from		
Smarika Printing		44,000=00	Govt. of M.P.		
Other Activities		25,200=00	Smarika Bhivag		270,000=00
Plantation Expenses	9,730=00				
Agriculture Training	15,470=00				
Other Expensis		28,007=00	Intrest from Bank		355=00
Salary	9,600=00		Smarika Advertisement		231039=00
Audit Fees & Income Tax	3,500=00		Add Escess		
Photocopy & Typing	6,633=00		of Exp. Over Income Over		206081=00
Bank Commision	555=00				
Miscellanious Exp.	2,919=00				
Repairs (Chatrasal Mukarba)	4,800=00				
Depriciation Charges		1,320=00			
TOTAL Rs. :		7,07,475=00			7,07,475=00

Certificate from management
certicied that above income & expenditure is correct.

AUDIT REPORT
As per our reoprt on Banlance Sheet

SHOBHA LAL GUPTA — PRESIDENT

JITENDRA SINGH — SECRETARY

SAGAR DATED 18-7-04

R. AGRAWAL — CHARTEDED ACCOUNTANTS (SEAL)

बाँकी बनी बुन्देली बाँनी

समीक्षक - जगदीश प्रसाद रावत

इन दिनों बुन्देली पद्य में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। यह एक सुखद स्थिति हैं ऐसा नहीं है कि बुन्देली लोक भाषा में लेखक की कमी या लेखन की अल्पता या अल्पज्ञता रही हो लेकिन प्रकाशन की जरूर कमी महसूस की जाती रही है। लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रिंट मीडिया क्रांति ने प्रकाशन के भी सहजे सुलभ द्वार खोल दिए हैं। हां इतना अवश्य है कि बुन्देली गद्य और पद्य में समकालीन लेखन का अभाव है। समकालीन लेखक और समय के साथ कदम ताल करते हुए सृजन के बारे में बसंत के सम्पादकीय में विगत वर्ष चिंता और चिंतन के पहलुओं पर प्रकाश डाला गया था। जो एक शोध का विषय जन विमर्श के लिए एक महत्वपूर्ण सूत्र है।

हाल ही में बुन्देली पद्य की कृति 'बांकी बनी बुन्देली बॉनी' शंकर दयाल खरे 'शंकर' की डिमाई आकार में सौ पृष्ठीय, चित्रांश प्रकाशन, नौगांव ने प्रकाशित की है जिसमें कुल जमा चालीस कविताएं इस काव्य मंजूषा में समाहित हैं। चूंकि कवि सेवा निवृत्त प्रधानाध्यापक हैं इसलिए भाषा प्राध्यापकीय एवं एकेडेमिक है। अपनी बात में कवि स्वयं कहता है कि उसे बुन्देलखण्ड से बेहद लगाव है। यहाँ के रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, गणवेश, प्रकृति परिवेश से वह स्वत: स्फूर्त रूप से प्रभावित है। अत: उनकी इन कविताओं में नाज, काकुन, कुटकी, लठा, बसारा, कुदवा, समा, जुनई आदि, कनकउआ, लिसुआ, चौंरई, नोंरपा, नोंनियां, पोई (भजियां), करौंदा, मकोरा, बेर, मकुइयां, अंगीठा, झरपोटा, ऊमर आदि जंगली फल, किसरुआ, सुरका, गिजावरें, सिंगारे, कौंसे–कमल–गढ़ा आदि कंद मूल, मउआ, चना लटा, डुबरी, बेर, बिरचुन सतुआ घैंघो, मँगरी आदि खान–पान, गानौ–गुरिया, जैसे खुरमा दाँउनी, दसाँगुरौ, पैजना, बिछिया करदौनी आदि का वर्णन और शब्दों का जो विलुप्तप्राय हो गए, सार्थक प्रयोग किया गया है।

इन कविताओं का रचनाकाल सातवें दशक का है। लेकिन इनके विषय आज भी समकालीन, शाश्वत, चिरंतन और कालजयी होकर इनके काव्य को मृत्युंजय बनाते हैं।

कवि ने अपनी बात बुन्देली में ही लिखी यह स्तुत्य कार्य है। डॉ. बरसैंया की भूमिका बुन्देली के विकास में अवरुद्ध कारणों की पड़ताल करती है। राम रतन अवस्थी बुन्देली के अतीत के एहसास के बहाने बुन्देली को ब्रज से श्रेष्ठ निरूपित करते हैं और 'गुरीरी बुन्देली बानी' में डॉ. बी.एस. परमार बुन्देली बानी में अपनी बात कहकर मनोललित निबंध का स्वरूप साकार करते हैं। डॉ. परमार ने लेखक की रुचि में यह कहकर कि कवि के रोम–रोम में बुन्देलखण्ड बसा है, इस कृति और कृतिकार का समग्र आंकलन कर दिया। संकलन की रचनाएं कुछ प्रकृति जन्म एवं पर्यावरण से प्रेरित हैं जैसे जौ जल जीवन जानौ, प्रकृति हमारी मैया, ओ कजरारे बदरा प्यारे, पीरे पात झरे बिरछन के और ई कर कौ जौ नरदा। देशकाल और परिवेश से संबंधित हमाएं कैसे नोने गांव, वीर भूमि बुन्देलखण्ड जौ, देश हमाओ भौतइ नोंनो, ऐसे नोनों देश हमाओ, कैसे करो किसानी, नामी नगर बिजावर, आदि कविताएं हैं। वैराग्य रस से सराबोर रचनाएं चेतावनी (वैराग), जम के जबइ लिबउआ आने, कंउ जीते कंउ हारे, कलउ काल कलदानौ कैसो, सब खां राम बचावे आदि विरक्त काव्य की श्रेणी में आती है। जिनमें कवि अध्यात्म के अंतरित की उड़ान भरता है। भक्ति की शक्ति से अनुसक्ति तक कवि काल गाथा में वानी वंदना करता है। हरौ हमाई पीर की गुहार भरता है और तीर्थ यात्रा की भी तैयारी करते हुए कहता है कि बुढ़ापौ कां से आ गओ राम। लोककल्याण और नीति की बातें वह दहेज कौ दानौ, बोतल के मजनू, गुटका में व्यक्त करता है। दीवारी दीपन कौ त्योहार, और बुड़की, होरी के हुरियारे लिखकर वह उत्सव धर्मिता का धर्म भी निभाता है, ऐसौ लगत में वह खान–पान, आहार की पान को रेखांकित करता है। इतने पर कवि श्रृंगार रस राज को नहीं भूला वह गोरी धनिया में इस रीतिकालीन विजय पर भी अधिकार अपनी तूलिका की धार पैनी करता है। अन्य रचनाओं में सुतंत्रता की वर्ष गांठ, ज्ञान की ज्योत जराओ, कक्का राम दुलारे, सबसें बड़ौ रुपैया, पोटा, अंतरिक्ष कौ घर, ज्वानी उल्टी सूदी जोरत आदि रचनाएं हैं। कवि के पास कथ्य है, भाषा परिष्कृत और परिमार्जित है और पारंपरिक विषयवस्तु है। छांदिक दोष कम हैं।

अधिकतर कविताओं में शंकर दयाल खरे ने प्रेरित शिल्प चौंकड़िया का इस्तेमाल किया है। जिसमें इन्हें महारत हासिल है। अच्छा होता विविध छन्द विधानों का अगर प्रयोग करते। पारंपरिक प्राचीन विषयों के अलावा अगर समकालीन विषयों पर इनकी कलम चलती तो यह संकलन हटकर होता। आज वैश्विक, कल्पनावाद, उत्तर आधुनिकता, नारी मुक्ति आंदोलन, सर्वहारा, उपभोक्तवाद, वर्तमान गांव–देश की दशा और दिशा आदि ज्वलंत विषयों पर भी बुन्देली में लिखने की पर्याप्त संभावना हैं इन विषयों पर काव्य सृजन से अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद के द्वार खुलते हैं। वर्तमान परिवेश की समस्याओं और उनके समाधान पर भी लेखन का स्कोप कमतर नहीं हुआ है।

कृति : बांकी बनी बुन्देली बानी कवि :शंकर दयाल खरे 'शंकर' मूल्य : ५१ रुपये प्रकाशक : चित्रांश प्रकाशन नौगांव, जिला छतरपुर (म.प्र.)

– पारिजात, कमला कालोनी, छतरपुर (म.प्र.)

बसंत की बयारों-बहारों में बसा बसारी का बुन्देली उत्सव

- भरत श्रीवास्तव

बुन्देलखण्ड आर्थिक रूप से भले ही पिछड़ा हो गरीब हो परंतु कला और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत धनी है यह बात यहां के त्यौहारों, पर्वो, उत्सवों, समारोहों एवं विभिन्न शुभ अवसरों में साफ देखी जा सकती है। यहां के छोटे बड़े पर्वत कल कल बहती नदियां सुन्दर सघन वन झर झर बहते झरने जहां अपना प्राकृतिक सौन्दर्य बिखेरते हैं वहीं यहां के मेहनतकश सीधे सरल लोगों द्वारा बनाये गये हरे भरे खेत, देवी देवताओं के मंदिर कुये तालाब, बावरी, जहां लोगों को सुख सुविधायें और जीवन यापन का सरल अवसर देते हैं वहीं सबको सुकून और सुनिश्चितता प्रदान करते हैं। इसके साथ ही यहां का गीत संगीत सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परायें देते हैं जीवन को गति जीवन को सुसंगतता जीवन को आनंद और सार्थकता।

इसी सांस्कृतिक एवं उल्लास को कायम रखते उसको बढ़ावा देने तथा लोक कला संस्कृति एवं खेलों को दूर दूर तक पहुंचाने के उद्देश्य से अनेक स्थानों में कई तरह के उपाय उपक्रम चल रहे हैं। प्रयास हो रहे हैं बुन्देली कला, संस्कृति को देश के कोने कोने तक पहुंचाने में तथा इसके प्रति लोगों में सम्मान पैदा करने में ऐसा ही एक प्रयास एक उपाय बुन्देलखण्ड के ठेठ बुन्देली गांव बसारी में आज से नौ वर्ष पूर्व शुरू किया गया।

बसारी गांव उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में फैले बुन्देलखण्ड के मध्य में बसे छतरपुर जिले के मध्य में स्थित है। अर्थात् यदि छतरपुर जिले को बुन्देलखण्ड का दिल कहा जा सकता है तो बसारी गांव को बुन्देलखण्ड के दिल का टुकड़ा कहा जाना चाहिये और वास्तव में दूर गांव में दिल के टुकड़े की सभी बातें मौजूद हैं। बुन्देलखण्ड के यदि दर्शन करते हैं उसे देखता है जानता है, पहचानता है, तो बसारी में जाकर उसे देखा जाता और पहचाना जा सकता है। यहां की हर बात बुन्देली की झलक देती है।

बसंत तो सभी जगह का सुहाना लगता है। लेकिन बुन्देलखण्ड का बसंत तो कहना ही क्या? सोना और सुहागा उस पर बसारी गांव का बसंत तो देखते ही बनता है क्योंकि बसंत ऋतु में ही होता है यहां ''बुन्देली उत्सव'' हर बसंत की सुहावनी बहार लेकर आती है बसारी गांव में। इस वर्ष का भी बसंत बहारें लेकर आया है जब १७ फरवरी से २३ फरवरी तक एक सप्ताह का बुन्देली उत्सव आयोजित हो रहा है।

लगभग पिछले प्रत्येक बसंत पर आठ बुन्देली उत्सव इसी गांव में हो चुके हैं। जिन्होंने पूरे बुन्देलखण्ड को बसंती ढंग में रंग दिया था। इस उत्सव में बुन्देली लोक कला में भूले विसरे सभी आयाम जहां देखे जा सकते हैं वहीं प्रचलित कला विधाओं के प्रत्यक्ष दर्शन कर हर व्यक्ति विभोर हो जाता है। इसके साथ ही बुन्देलखण्ड के गांव गांव में खेले जाने वाले खेलों की प्रतियोगितायें भी होती हैं। बुन्देली बसंत भी बताये जाते हैं उनकी प्रतियोगिता में होती है। बुन्देल क्या पूरे देश के गांवों के अर्थव्यवस्था की धुरी बैलगाड़ी की रोमांचक दोड़ प्रतियोगिता भी होती है। और शादी विवाहों तथा उत्सवों में नृत्य करने वाले अश्व यात्री घोड़ों के अश्व नृत्य की बड़ी आकर्षक और रोमांचकारी प्रतियोगितायें भी होती है। बुन्देली कला साहित्य और संस्कृति की सच्ची सेवा करने वालों का सम्मान भी किया जाता है। और यह सब होता है एक सप्ताह तक। पिछले वर्ष भी इन्हीं दिनों यानी १७ फरवरी से २३ फरवरी तक बसारी ग्राम में आठवां बुन्देली उत्सव आयोजित किया गया। जिसका उद्घाटन दतिया के राजकुमार एवं विधायक श्री घनश्याम सिंह जू देव ने किया था। उद्घाटन के अवसर पर स्कूली बच्चों ने बसारी के स्टेडियम में रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे। जिनको देखकर दर्शक झूम उठे थे। यह उद्घाटन एवं उत्सव बसारी ग्राम में प्रवेश पर बने स्टेडियम में हुआ। यह स्टेडियम न केवल बसारी गांव की शान है वरन उन तमाम गांव का गौरव है। जो बुन्देली संस्कृति में रचे बसे हैं जो गांव होने के कारण सुविधाओं के अभाव में कुछ कर सकने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इनके लिये प्रेरणा देना वाला है यह स्टेडियम कि यदि किसी गांव के लोगों में दृढ़ इच्छा शक्ति हो, लगन हो, काम करने की तमन्ना हो तो कुछ भी किया जा सकता है जैसा कि बसारी ग्राम के लोगों ने किया। यद्यपि यह बसारी का सौभाग्य है कि उन्हें शंकर प्रताप सिंह जैसा कर्मठ लगनशील अपने गांव, अपनी माटी के लोगों को प्यार करने वाला व्यक्ति मिला हां यह सही है कि बसारी गांव को प्रदेश के नहीं देश के नक्शे में लाने का श्रेय इसी गांव के सपूत बुन्देली माटी के सपूत जिन्हें गांव वाले स्नेह व प्यार से मुन्नाराजा कहते हैं को जाता है लेकिन श्री मुन्नाराजा इस श्रेय को स्वीकारते नहीं हैं वे इसे इस गांव के लोगों की मेहनत परिश्रम का फल बताते हैं वे इस उत्सव के आयोजन का श्रेय उन तमाम लोगों को देते हैं जो अपनी मेहनत लगन एवं सहयोग से इस उत्सव प्रभावकारी कार्यक्रम को कार्यरूप देते हैं उसको प्रस्तुत करते हैं। मुन्नाराजा जैसे लोगो का व्यक्तित्व हर जगह है बस इन्हें जाग्रत करने उनको सहयोग देने की जरूरत है। यह बात स्वयं मुन्नाराजा भी कहते हैं कि यह सब मैं नहीं करता मुझसे मेरे अपने करवा लेते हैं।

गत वर्षों में बुन्देली उत्सवों के जहां गति आती रही वहीं पिछले वर्ष का बुन्देली उत्सव भी अपनी कई बाधाओं सीमाओं

और साधनों के अभावों के बावजूद भी अपने ध्येय में सफल रहा। तथा उसने अपनी जो परम्परा डाली थी जो कार्यक्रम शुरू किये थे उन सब का पूरी तरह से निर्वाह भी किया।

यह सही है कि इतना बड़ा आयोजन बिना धनराशि के बिना आर्थिक सहयोग के नहीं चल सकता। शासन का सहयोग तो इसमें बहुत ही आवश्यक है। लेकिन पिछले वर्ष के आयोजन में उसका अभाव रहा। वास्तव में यह बुन्देली उत्सव किसी भी प्रकार राजनैतिक नहीं है न ही किसी वर्ग विशेष, व्यक्ति विशेष का है। यह न किसी पार्टी का है न किसी नेता का है यह तो बुन्देलखण्ड का, बुन्देलखण्ड के एक एक व्यक्ति का हैं यह कार्यक्रम बुन्देली के विकास का उसके गौरव का इसकी आन बान व शान का है। फिर भी यदि कहीं कोई इसमें कुछ अन्य तरह की गंध पाने का प्रयास करता है या कुछ अन्य आरोपित करने का कुप्रयास करता है तो यह बुन्देली माटी के साथ न्याय नहीं करता। बहरहाल पिछले सात वर्षों की तरह आठवें वर्ष भी बुन्देली लोक कलाओं की विभिन्न विधाओं के सभी आयोजन हुये। सांस्कृतिक आयोजनों की शुरुआत स्कूली बच्चों के रंगारंग कार्यक्रम से हुयी। बसारी के स्टेडियम में बने बुन्देली रंगमंच में नन्हें नन्हें बुन्देली बच्चों द्वारा प्रस्तुत नृत्य प्रहसन नाटक गायन आदि ने दर्शकों का मन मोह लिया उस दिन उपस्थित विधायक ब्रजेन्द्र सिंह राठौर ने बच्चों के इन कार्यक्रमों की हृदय से और भूरि भूरि प्रशंसा की।

अपनी परम्परा के अनुसार बुन्देली उत्सव के मंच से नाटक प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ जिसमें प्रथम पुरस्कार खजुरहो के प्रबोध रंगमण्डल द्वारा प्रस्तुत नाटक 'भक्त गरीबदास' को दिया गया जबकि द्वितीय पुरुस्कार छतरपुर के तरुण जागृति मंच द्वारा प्रस्तुत नाटक 'राम नाम सत्य' को दिया गया। अन्य नाटक भी दर्शकों द्वारा सराहे गये।

उत्सव में धुबियाई कछियाई, चमरयाई आदि गायन की प्रतियोगितायें भी हुयी जिसमें देवी रजक गुदारा को धुवियाई गायन के प्रथम तथा श्रीपत निवास को द्वितीय स्थान मिला। दतिया की कछियाई पाटी को पहला तथा भवानीपुरा की कछियाई पार्टी को मिला इसी तरह चमरयाई में चतरा अहिरवार की पार्टी को पहला इनाम दिया गया।

जन नाट्य मंच छतरपुर द्वारा स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त द्वारा रचित 'मस्तानी' नाटक के मंचन को बहुत सराहना मिली।

बुन्देली उत्सव की परम्परा है साहित्यकारों के सम्मान की जिसके तहत अपने आठवें उत्सव में छतरपुर के डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया को राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान प्रदान किया गया।

उत्सव के चौथे दिन दंगल का आयोजन हुआ जिसमें नेपाल, दिल्ली, बनारस, देहरादून, कुरुक्षेत्र, मुरादाबाद, पीलीभीत आदि स्थानों से आये पहलवानों ने अपने जौहर दिखलाये यह दंगल देखने के लिये अपार जन समूह एकत्रित था। जिनमें बड़ी संख्या में महिलायें भी थी।

आठवें बुन्देली उत्सव के पांचवे दिन दिवारी, नृत्य, रावला, नृत्य दलदल घोड़ी आदि की मनमोहक प्रतियोगितायें हुयी। इसके साथ ही इसी उत्सव में बुन्देलखण्ड में भूलते जा रहे कहरवा लमटेरा, गारी बनरे फागे ख्याल सैर आदि गाय की प्रतियोगितायें भी आयोजित की गयी।

गत वर्ष के उत्सव का छठा दिन भी बड़ा आकर्षक और मनोरंजन से भरपूर रहा जिसमें ढिमरयाई, कार्तिक गीत, बहुरूपिया प्रदर्शन, गोटें, सोहरे, दादरे बिलवारी तथा आल्हा गायन की प्रतियोगितायें हुयीं। इसी दिन टीकमगढ़ के डॉ. काशी प्रसाद त्रिपाठी को दिवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान प्रदान किया गया। बुन्देली उत्सव की जान होता है राई नृत्य पिछले वर्ष हुये राई नृत्यों ने इस उत्सव में चार चांद लगाये जबकि पूरा स्टेडियम खचाखच भरा रहा। इसी तरह अश्व नृत्य की प्रतियोगिता में भी दूर दूर से दर्शक आये जिसमें करीब ५० घोड़ों ने अपने अनूठे रोमांचकारी कर्तब दिखाये और नैगुवां के प्रेमनारायण अवस्थी के घोड़े ने पहला स्थान पाकर ५१०० रुपये का इनाम जीता दूसरा स्थान सेला के कल्याण सिंह को मिला इन्हें ३१०० रुपये मिले तथा सुरा के धूप सिंह यादव तीसरे स्थान पर रहे और २१००=०० रुपये का इनाम जीता।

इस उत्सव का एक और मनोरंजक रोमांचकारी कार्यक्रम हुआ बैलगाड़ी दौड़ का। जिसमें १३ बैलगाड़ियों ने यह प्रतियोगिता जीत कर पहला स्थान पाया। जिन्हें एक सुसज्जित गाड़ी व २१०० रुपये मिले दूसरा स्थान नदया के चन्ना अहिरवार को २१०० का मिला तथा तीसरा ११०० रुपये का इनाम लुगासी के किसोरी लाल को मिला अच्छी बैल जोड़ी के लिये तथा सुसज्जित बैल गाड़ी को भी इनाम दिये गये।

आठवें बुन्देली उत्सव का समापन २३ फरवरी २००४ को सजे धजे बुन्देली मंच पर हुआ। जिसमें मुख्य अतिथि प्रदेश के पूर्व मुख्य मंत्री श्री दिग्विजय सिंह रहे। उन्होंने प्रतियोगिताओं के विजेताओं से पुरस्कार प्रदान किये इस अवसर पर उत्कृष्ट चयनित कार्यक्रम की प्रस्तुति भी हुयी तथा आकर्षक आतिशबाजी हुयी। मुख्य अतिथि दिग्विजय सिंह, अध्यक्षता कर रहे जिला कांग्रेस अध्यक्ष जगदीश शुक्ल तथा संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह ने अपने विचार प्रकट किये।

इस तरह अपनी सुगंध और अपनी छटा बिखेरता हुआ पिछले वर्ष का सप्ताह पर्यन्त चला आठवों बुन्देली उत्सव अपनी यादें छोड़ता सम्पन्न हुआ। और तब से पूरे साल भर तक अगले उत्सव की प्रतीक्षा लिये इस उत्सव से जुड़े लोग तथा उत्सव का आनंद उठाने को आतुर तमाम लोग उत्सुक हैं इस वर्ष के उत्सव को देखने के लिये।

— नल विभाग के सामने, छतरपुर (म.प्र.)

चिट्ठी मिली अपुन की —

बुन्देली बसन्त २००४ आद्योपान्त बड़ो मनोयोग से पढ़ी। आज जब हिन्दी की बड़ी बड़ी पत्रिकायें दम तोड़ रही हैं। आपके द्वारा बुन्देलखण्ड के सुदूर अंचल में अवस्थित ग्राम बसारी में इतनी विशाल—काय पत्रिका, बुन्देली—बसन्त' का प्रकाशन आपके उत्साह, लगन, परिश्रम, अध्यवसाय और अपनी माटी बुन्देल—बसुन्धरा के प्रति अप्रतिम प्रेम और श्रद्धा का प्रतीक है।

पत्रिका में बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति, लोक साहित्य और लोक जीवन के विविध रूप देखकर आनन्द मिला। इससे भी अधिक आनन्द मिला बसारी में आयोजित बुन्देली उत्सव के लोकरंग के अनेक चित्रदेखकर। आपने अपने संपादकीय में बहुत सही लिखा है कि महानगरों में वातानुकूलित ड्राइंग रूमों, में बैठकर नहीं, लोक संस्कृति के अध्ययन, मनन, चिन्तर और शोध का कार्य ग्रामीण स्तर पर ही होना चाहिए। और सचमुच बसारी में यह सब हो रहा है।

बुन्देली बसन्त के आगामी अंक बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्वरूप को बुन्देली—भाषा के काव्यालोक को यहाँ की पुरातात्वक धरोहरों को अपने कलेवर में समाहित करेंगे—ऐसी आशा है।

— डॉ. शंकर लाल शुक्ल
भाण्डेर, जिला दतिया (म.प्र.)

अति प्रसन्नता है कि आप बुन्देली—बसन्त का सम्पादन कर बुन्देली भाषा को समृद्धिवान बना रहे हैं। मैं आपके इस पावन—साहित्यिक आज्ञानुष्ठान में जयमान बनकर सहर्ष सहयोगी सदैव रहूँगा।

— डॉ. कन्हैयालाल 'कलश'
गुरसरांय, झांसी (उ.प्र.)

यह अंक भी सामग्री की दृष्टि से पिछले अंकों जैसा ही है। आप सम्पादन कला में पूर्ण निपुण हैं तभी तो पाठकों को इतनी सुन्दर सुरुचि पूर्ण और शोधपूर्ण सामग्री पढ़ने को मिल रही है। बधाई स्वीकारें।

— डॉ. नारायणदास गुप्त 'कमलेश'
आलमपुर, भिण्ड (म.प्र.)

'बुन्देली बसन्त' जब सें आओ है/ तब सें बुन्देलखण्ड पें साँसऊ बसंत छाओ है/ इये पढ़कें हिरदे में उमंग सी जगत है/ ई की एक एक लकीर हीरा जड़ी लगत है/ मोरो एक सुझाव है कि साल भर में बुन्देलखण्ड की संस्कृति—साहित्य से संबंधित हुए प्रकाशनों को विस्तार से एक दो पन्ना में दव जाये, जासें बुन्देली के प्रेमियन खों जो पता चलत राबे कि किते का हो रव और कौन किताब कां से निकरी या निकर रई।

— डॉ. लखन लाल खरे
कोलारस, शिवपुरी (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड के सामाजिक, राजनैतिक सांस्कृतिक साहित्यिक और कलात्मक कलेवर का शोध एवं प्रकाशन आसमान के तारे गिनने जैसा असंभव कार्य है। जिसे बुन्देली बसन्त द्वारा संभव किया जाना प्रतीत हो रहा है। बुन्देली बसन्त के उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ।

— हरगोविन्द तिवारी
शाहगढ़, जिला सागर (म.प्र.)

पत्रिका बुन्देली बसन्त दिन पै दिन साजी निकर रई। बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रखावे वाई, बड़ावै वाई उर प्रचार वाई जा बुन्देली बसन्त हर सालैं अगांउ बढ़ै, जा हमाई अभिलाषा है।

— डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'
गरौठा, झांसी (उ.प्र.)

मुझे पिछले अंकों के तरह वर्ष २००४ का बुन्देली बसन्त मिला प्रसन्नता है कि आपकी पत्रिका का स्तर दिनों दिन श्रेष्ठतम होता जा रहा है। सामग्री चयन सराहनीय है। कभी मामुलिया पढ़ी थी। लगता है उसका अभाव पूरा हो रहा है। शोध सामग्री बहुत उपयोगी लगी मैंने सभी अंक जिल्द कराकर रखे हैं। लखनऊ में अनेक विद्वानों से इसकी चर्चा हुयी। कुछ विद्वान आपके प्रकाशित चित्रों से बहुत प्रकाशित हुए। इस वर्ष आपका आयोजन देखने आयेंगे। स्मारिका का स्तर बनाये रखेंगे तो अपने बुन्देलखण्ड का बहुत भला होगा।

— आर०एन० यादव
अलीगंज, कपूरथला, लखनऊ (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त की सामग्री उपयोगी है। असल में बुन्देलखण्ड में विविध सामग्री की बहुत सम्भावनाएं हैं शोध की आवश्यकता है आप लोग बुन्देली बसन्त के माध्यम से एक सराहनीय कार्य कर रहे हैं। सभी को आशा बंधी हैं कृपया इसे नियमित बनाये रखें। यही अनुरोध है।

— डॉ. रामशंकर द्विवेदी
१२६०, नया रामनगर, उरई (उ.प्र.)

बुन्देली उत्सव २००५ के आयोजन हेतु

ग्राम बसारी में कार्य हेतु समितियां

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति—

श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री भारत कृष्णदेव सिंह बुन्देला
श्री पर्वत सिंह बुन्देला
श्री शारदा प्रसाद शुक्ला

स्वागत व्यवस्था हेतु समिति —

श्री रामसेवक अग्रवाल	डॉ. अवधकिशोर अवस्थी
श्री संतोष अग्रवाल	डॉ. मुराद अली
डॉ. जगदीश अरजरिया	श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री वृन्दावन रैकवार	श्री सिब्बा रैकवार
श्री कल्लू रैकवार	श्री तोता रैकवार (नत्थू)
श्री शिब्बू रैकवार (पुन्नू)	श्री रामस्वरूप रैकवार (दसुवा)

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वितरण हेतु समिति —

श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पम्मू) प्रभारी
श्री किशोरी लाल अग्रवाल
श्री धर्मेन्द्र खरे
श्री संजय खरे

मंचसज्जा व बैठकव्यवस्था समिति,

श्री शोभालाल गुप्ता	श्री अच्छेलाल यादव
श्री बारेलाल गड़रिया	श्री मुल्ली यादव
श्री लल्ली गड़रिया	श्री हीरा गड़रिया
श्री बलराम अहिरवार	श्री भागीरथ यादव
श्री पन्ना अहिरवार	श्री मन्नू गड़रिया
श्री जगदीश गड़रिया	श्री सुनील वर्मा
श्री विजय अहिरवार	श्री चन्द्रप्रकाश वर्मा
श्री संदीप खरे	

गेट व्यवस्था व झंडा बैनर समिति—

श्री महादेव यादव, प्रभारी	श्री रामस्वरूप रावत
श्री मुल्ली अहिरवार	श्री आशाराम अहिरवार
श्री राजू अहिरवार	श्री दीपेन्द्र अहिरवार
श्री देवराम अहिरवार	श्री पप्पू अहिरवार
श्री कन्छेदी कुशवाहा	श्री बाला अहिरवार

चाय—नाश्ता समिति
(जलपान व्यवस्था समिति) —

श्री सुरेश अग्रवाल (पप्पू) प्रभारी
श्री सुधीर अग्रवाल
श्री राजेश रैकवार
श्री संतोष रैकवार
श्री सुरेन्द्र रैकवार
श्री वृन्दावन रैकवार
श्री शिब्बा रैकवार
श्री रमेश रैकवार
श्री राकेश रैकवार
श्री रामस्वरूप रैकवार

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति —

श्री पर्वत सिंह
श्री संजय सिंह
श्री मन्नू यादव
श्री भज्जू यादव
श्री खुमान धोबी
श्री मुकेश साहू

बैलगाड़ी दौड़ व्यवस्था समिति—

श्री पर्वत सिंह बुन्देला प्रभारी
श्री संजय सिंह
श्री भुमानीदीन पटेल
श्री परसू कुशवाहा
श्री करंजुआ अहिरवार
श्री बन्दू यादव
श्री प्यारे लाल अहिरवार
श्री रजुआ अहिरवार
श्री शिवदीना अहिरवार
श्री सुकियां अहिरवार
श्री सरजू अहिरवार
श्री संतोष अहिरवार
श्री मथुरा प्रसाद पटेल

स्टेडियम कार्यालय प्रभारी —

श्री शारदा प्रसाद शुक्ला
श्री नवल किशोर अग्रवाल
श्री वृन्दावन राजपूत
श्री ग्याप्रसाद साहू

बैठक व्यवस्था स्टेडियम में —

श्री कन्हैया लाल यादव
श्री लखन लाल यादव
श्री सिराज अहमद
श्री मथुरा यादव
श्री जस्सू सोनी

श्री स्वामीदीन कुशवाहा
श्री अशोक जोशी
श्री भागीरथ यादव
श्री भागचन्द्र कुशवाहा
श्री विश्वनाथ कुशवाहा
श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
श्री खन्जू कुशवाहा
श्री छन्नू बसोर

अखाड़ा व्यवस्था समिति –
श्री मातादीन रैकवार
श्री रामस्वरूप पटेल
श्री सिराज अहमद
श्री अजय बालमीक
श्री कमलेश कोरी
श्री चिरौजी लाल कौंदर
श्री महादेव कौंदर

स्टेडियम की सुरक्षा व्यवस्था समिति–
श्री हीरा लाल पाल
श्री राम चौकीदार
श्री मातादीन अहिरवार
श्री द्वारिका अहिरवार
श्री टुड़ी कौंदर
श्री अमरा अहिरवार

मेला व्यवस्था समिति –
श्री बाबूलाल खरे प्रभारी
श्री कैलाश अग्रवाल
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री सरजू यादव
श्री अनारी लाल लोधी
श्री पुन्ना अहिरवार
श्री छोटा अहिरवार
श्री दरवारी अहिरवार
श्री रमेश अहिरवार
श्री पंचा कोंदर

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के तीन कमरों में) –
श्री लखन यादव, प्रभारी
श्री भागवत राजपूत
श्री राजू रैकवार
श्री गोपाल रैकवार
श्री मुकेश विश्वकर्मा

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के अन्य तीन कमरों में) –
श्री यूनुस 'इद्दूखां', प्रभारी
श्री परमानन्द यादव,
श्री कलन रैकवार
श्री सुखलाल अहिरवार
श्री देशराज अहिरवार
श्री रामकुमार यादव
श्री राकेश बाल्मीकि

आवास व्यवस्था समिति
(आर.आई.क्वार्टर में) –
श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
श्री जगदीश यादव
श्री कल्ला रैकवार
श्री रमेश अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. १ में) –
श्री प्रभु यादव, प्रभारी
श्री रतन यादव
श्री बिहारी लाल अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. २ में) –
श्री राजेश अग्रवाल, प्रभारी
श्री कल्लू रैकवार
श्री छिद्दी अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(नया कार्यालय भवन) –
श्री राजू काछी, प्रभारी
श्री विजय रैकवार
श्री भगवान दास अहिरवार

टेंट व्यवस्था समिति –
श्री अखिलेश्वर प्रसाद चौबे, प्रभारी
श्री राममिलन श्रीवास,
श्री सुरेश अहिरवार
श्री गज्जू अहिरवार

पंजीयन समिति –
श्री राममूर्ति नामदेव
श्री कृपाराम पटेल

चित्रकार (पेन्टर) समिति –
श्री प्रेम किशोर खरे
श्री रति राम पाठक
श्री धीरज सिंह परमार
श्री महेश अहिरवार
श्री राजू अहिरवार

□



स्वांग का एक मनमोहक चित्र



नवीनतम जानकारियों एवं तकनीकियों के लिए प्रदर्शनियाँ



मध्यप्रदेश के मालवांचल की लोकप्रिय प्रस्तुति गणगौर



राजस्थान का प्रशंसनीय कालवेलिया नृत्य



मथुरा वृन्दावन की कृष्ण भक्ति



बुन्देली की एक भावना प्रधान वधैया की प्रस्तुति

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिकता



हाराज छत्रसाल का स्मारक (मकबरा)



महाराज छत्रसाल द्वारा राज्य भ्रमण के दौरान
ग्राम बसारी में बैठने के स्थान पर उनकी विशाल मूर्ति की स्थापना

